# विचित्रवधूरहस्य

अर्थात्

बँगला के प्रसिद्ध लेखक

श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर लिखित

'बऊ ठाकुरानीर हाट' का

हिन्दी-अनुवाद

अनुवादक

श्रीजनार्दन झा

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

१९१२

प्रथम बार

मूल्य ॥।

# निवेदन

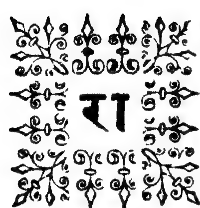
श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर की प्रभावशालिनी लेखनी से लिखा गया 'बऊ ठाकुरानीर हाट' नामक बँगला उपन्यास का हिन्दी-अनुवाद छपकर तैयार हो गया। हिन्दी में इसका नाम रक्खा गया है 'विचित्रवधूरहस्य'। रवीन्द्र बाबू के लिखे उपन्यासों की बँगला में बड़ी प्रतिष्ठा है। आशा है, हिन्दी वाले भी आपके इस सामाजिक उपन्यास को रुचि के साथ पढ़ेंगे और प्रसन्न होंगे।

प्रकाशक

---

# विचित्रवधू-रहस्य।

## पहला परिच्छेद।



न बहुत बीत गई है। गरमी का मौसम है। हवा इस तरह बन्द हो गई है कि पेड़ का एक पत्ता तक नहीं हिलता। यशोहर के महाराज प्रतापादित्य के ज्येष्ठ पुत्र युवराज उदयादित्य अपने सोने की कोठरी में हवादार खिड़की के पास बैठे हैं। उनके पास उनकी स्त्री सुरमा बैठी है।

सुरमा ने कहा—"क्या कीजिएगा। सह लीजिए। धीरज धर कर रहिए। किसी समय सुख का दिन आवेहीगा।"

उदयादित्य—"मैं और तरह का कोई सुख नहीं चाहता। मैं इतना ही चाहता हूँ कि यदि मैं यशोहर के राजभवन में जन्म लेकर युवराज न होता, उनका प्रथम पुत्र होकर उनके राज सिंहासन का, उनके सारे धन, सम्पत्ति, मान-मर्य्यादा, यश, प्रताप और महत्त्व का एक मात्र उत्तराधिकारी नहीं होता, बल्कि उनकी छोटी से भी छोटी प्रजा के घर जन्म लेता तो मैं अपने को बहुत सुखी मानता। कहो, कोई ऐसी तपस्या है जिसके करने से मेरे मन की बात पूरी हो?"

सुरमा ने अधिक अधीर होकर युवराज के दहने हाथ को अपने दोनों हाथों में लेकर दबा रक्खा और उनके मुँह की

ओर देख कर धीरे धीरे लम्बी साँस ली। युवराज की इच्छा पूरी करने के लिए वह प्राण तक दे सकती है किन्तु प्राण देकर भी वह उनकी इस इच्छा को पूरी नहीं कर सकती। यही उस को दुःख है।

युवराज ने कहा—"सुरमा, मैंने राजा के घर में जन्म तो लिया, पर मैं सुखी न हुआ। राजभवन के सभी लोग समझते हैं कि मैंने उत्तराधिकारी होकर जन्म ग्रहण किया है, सन्तान होकर नहीं। महाराज मेरे बचपन से ही मुझ पर कड़ी निगाह रखते हैं। मैं उनके यश और प्रतिष्ठा को स्थिर रख सकूँगा या नहीं, अपने वंश के महत्त्व की रक्षा कर सकूँगा या नहीं, राज्य का गुरुतर भार उठा सकूँगा या नहीं, उन्हें इन बातों का सदा सन्देह बना रहता है। मेरे हर एक काम को, मेरी चाल ढाल को वे परीक्षा की दृष्टि से देखा करते हैं, स्नेह की दृष्टि से नहीं। मेरे सम्बन्धी लोग, मन्त्री, दरबार के सभ्यगण और प्रजागण मेरे स्वभाव और कामों को देख कर मेरे भविष्य की गणना कर चुके। सबों ने सिर हिला कर कहा—"मेरे द्वारा इस कठिन राज्य की रक्षा न हो सकेगी। मैं मूर्ख हूँ। मैं भला बुरा कुछ नहीं समझता।" धीरे धीरे वे लोग मेरी अवज्ञा करने लगे। पिता मुझ पर अश्रद्धा करने लगे। उन्होंने एक दम मेरी आशा त्याग दी। अब तो वे भूल कर भी मेरा स्मरण नहीं करते; मेरी कुछ खोज ख़बर तक नहीं लेते।"

सुरमा की आँखों में आँसू भर आये। उसने जी मसोस कर कहा—"ओह! कोई कैसे सह सकता है?" सुरमा को बड़ा ही दुःख हुआ और कुछ क्रोध भी हुआ। उसने फिर कहा—"जो लोग आपको मूर्ख कहते हैं वही मूर्ख हैं।"

उदयादित्य ज़रा हँसे। उन्होंने सुरमा की ठोड़ी पर हाथ लगा और उसके रोमान्चित रक्तिमापूर्ण मुँह को हिला कर कहा—"नहीं सुरमा, सचमुच मुझे राज्यशासन की बुद्धि नहीं है। इस बात की कई बार परीक्षा हो चुकी है। मैं जब सोलह वर्ष का था तब महाराज ने काम सिखलाने के अभिप्राय से हुसेनखाली परगने का भार मेरे हाथ दिया था। छः महीने भी बीतने न पाये थे कि भारी गड़बड़ मच गई। ख़ज़ाना जितना चाहिए वसूल न हुआ। प्रजा आशीर्वाद देने लगी, पर देहात के मुलाज़िम मेरे विरुद्ध राजा के निकट रिपोर्ट करने लगे। राजदरबार के सब लोगों ने यही निश्चय किया कि युवराज जब प्रजागणों का इतना पक्ष लेते हैं तब जान पड़ता है उनसे राज्य का काम न हो सकेगा। तबसे महाराज मुझे और भी हेय समझने लगे। अब तो वे प्रायः मेरी ओर देखते तक नहीं। कहते हैं, वह कुलाङ्गार ठीक रायगढ़ के चचा वसन्तराय के सदृश होगा, सितार बजा कर नाचता फिरेगा और राज्य को रसातल पहुँचावेगा।

सुरमा ने फिर वही बात कही—"प्रियतम, सह लीजिए। धीरज धर कर रहिए। चाहे हज़ार बुरे हों, पर हैं तो बाप ही। आज कल राज्य-वृद्धि की एक मात्र दुराशा उनके सारे हृदय में छा रही है। स्नेह के लिए हृदय में जगह नहीं। जितनी ही उनकी आशा पूरी होगी उतना ही उनके स्नेह का राज्य बढ़ेगा।"

युवराज ने कहा—"सुरमा, तुम बुद्धिमती हो, दूरदर्शिनी हो, इसमें सन्देह नहीं; पर इस विषय में तुम भूलती हो। प्रथम तो आशा की अवधि नहीं, दूसरा यह कि पिता के राज्य की सीमा जितनी ही बढ़ेगी. जितना ही वे अधिक राज्य प्राप्त

करेंगे उतना ही उसके अरक्षित होने का भय उनके मन में बढ़ेगा। राज-काज जितना ही भारी होगा, वे उतना ही मुझको अयोग्य समझेंगे।"

सुरमा की समझ में कोई भूल न थी, पर तो भी उसने अपनी भूल मान ली। विश्वास बुद्धि को भी लाँघ कर पार हो जाता है, वह किसी तरह विश्वास करने लगी। मानो उदयादित्य की ही कही हुई बात ठीक है।

उदयादित्य आप ही आप बोलने लगे—"मैं यहाँ लोगों की कृपादृष्टि और अपमानसूचक दृष्टि न सह कर कभी कभी चुप चाप रायगढ़ के दादा साहब के पास जाने पाता; पिताजी मेरा कुछ विशेष अनुसन्धान नहीं करते, हाय! मेरे लिए यह कैसा अच्छा ज़माना पलटता। वहाँ भाँति भाँति के बाग़ देखने में आते, गाँव वालों के घर जाने पाता, दिन रात राजसी लिबास में नहीं रहना पड़ता, इनके सिवा जिस जगह दादाजी रहते हैं, उस जगह शोक विषाद का नाम नहीं, मानो वहाँ से दुःख शोक तीन सीमाओं के पार भाग जाते हैं। वे गाने बजाने के हर्ष से चारों दिशाओं को भरपूर किये रहते हैं। उनके आस पास चारों ओर आनन्द, उमङ्ग, मैत्री और शान्तियाँ छाये रहती हैं। वहाँ जाने ही से मैं भूल जाता हूँ कि मैं यशोहर का युवराज हूँ। एक बात और याद आई, वह क्या सहज भूल सकती है? जब मेरी उम्र अट्ठारह वर्ष की थी, जब मैं रायगढ़ में दादाजी के पास था, वसन्ती हवा बह रही थी, चारों ओर हरित कुञ्जवन की शोभा फैल रही थी, कोयल और पपीहे जहाँ तहाँ फूले हुए आम के पेड़ों पर बोल रहे थे, उस वसन्त ऋतु में, उसी कुञ्जवन में, मैंने रुक्मिणी को देखा।"

सुरमा बोल उठी—"यह बात मैं कई बार सुन चुकी हूँ।"

उदयादित्य—"एक बार और सुनो, कोई कोई बात जी में ऐसी भरी हुई है जो कभी कभी चित्त में बड़ी कड़ी चोट पहुँचाती है। यदि उन बातों को निकाल बाहर न करूँ तो उस चोट से कलेजा फट जाय। यह बात तुमसे कहने में अब भी लज्जा और कष्ट होता है, इस कारण तुम्हें बार बार कहता हूँ। जिस दिन लज्जा न होगी, कष्ट न होगा, उस दिन समझूँगा मेरे पाप का प्रायश्चित्त हो गया। उस दिन कुछ न कहूँगा।"

सुरमा—"प्राणनाथ! प्रायश्चित्त कैसा?" यदि आपने पाप किया तो वह पाप का दोष है, आपका नहीं। मैं क्या आप के हृदय को नहीं जानती। अन्तर्यामी भगवान क्या आपके पवित्र हृदय का भाव नहीं समझते हैं?

उदयादित्य कहने लगे—"रुक्मिणी मुझसे तीन वर्ष बड़ी थी। वह विधवा थी और अकेली थी। दादाजी की दया से वह रायगढ़ में सुख से समय बिता रही थी। याद नहीं है, पहले पहल किस चतुराई से फँसा कर वह मुझे ले गई। उस समय मेरे मन में मध्याह्न काल की लू चल रही थी, इतना प्रखर तेज़ कि भला बुरा कुछ भी नहीं दिखाई देता था। मानो उस समय मेरे लिए चारों ओर यह संसार तेजोमय भाप से ढका था। सारे शरीर का ख़ून दिमाग़ पर चढ़ आया था। भला बुरा कुछ नहीं जान पड़ता था। रास्ता, बेरास्ता, ऊँच, नीच, पूरब और पच्छिम सब मेरी आँखों के सामने एक आकार धारण किये थे। इसके पहले मेरे मन की ऐसी अवस्था कभी न हुई थी और न उसके बाद ही फिर कभी वैसी हुई। न मालूम, भगवान् ने किस मतलब से इस दुर्बल बुद्धि-हीन हृदय

को अयुक्त रीति से एक दिन के लिए उस तरह उत्तेजित कर दिया था, मानो एक ही पल में सारा जगत् इस दुर्बल हृदय को खींच कर कुमार्ग में ले गया। हा भगवन् ! मैंने क्या अपराध किया था जो उस पाप से एक ही घड़ी में तुमने मेरे जीवन की सारी स्वच्छता काली कर दी। क्षण भर में ही दिन को रात बना डाला। मानो मेरे हृदय की फुलवारी में खिले हुए मालती और जूही के फूल भी लज्जा से काले हो गये।"

उदयादित्य आगे कुछ न बोल सके, मुँह पीला पड़ गया, आँखें झँप गईं। मानो उनके सिर से पैर तक बिजली का तार दौड़ गया।

सुरमा ज़रा अनखा कर बोली—"आपको मेरे सिर की सौगन्द है, इस बात को अब आगे न बढ़ाइए।"

थोड़ी देर तक उदयादित्य चुप रहे। उसके बाद वे फिर कहने लगे—"क्या कहूँ, जब चित्त का वेग शान्त हुआ, जब सब पदार्थ पूर्ववत् दिखाई देने लगे, जब मैंने संसार को स्वप्न का एक दृश्य न मान कर प्रकृति का कार्य्य-स्थल माना तब मेरे मन की जो अवस्था हुई वह तुमसे क्या कहूँ। कहाँ से कहाँ आ गिरा ! सौ, हज़ार, लाख कोस दूर पाताल के घोर अन्धकार गढ़े में मानो पलक मारते मारते एक दम गिर गया। दादाजी मुझे बुला कर ले गये। उनके सामने मैं मुँह क्यों कर दिखलाता। सच पूँछो तो तभी से मुझे रायगढ़ छोड़ना पड़ा। परन्तु दादाजी बिना मुझसे मिले कब रह सकते हैं। मुझे बार बार बुलाते हैं, किन्तु मुझे इतना संकोच होता है कि मैं वहाँ किसी तरह जाना नहीं चाहता। दादाजी के बुलाने पर भी जब मैं उनके पास नहीं जाता तब वे स्वयम् मुझको और विभा

को देखने यहाँ आते हैं। उन्हें किसी तरह की ईर्ष्या नहीं, ग्लानि नहीं, कुछ नहीं। वे कभी मुझसे यह भी नहीं पूँछते कि रायगढ़ क्यों नहीं जाते? वे हम लोगों को देख कर बहुत ही प्रसन्न होते हैं। इसी से वे कभी कभी यहाँ आते हैं और दो एक दिन रह कर फिर चले जाते हैं।"

उदयादित्य ने मुसकुरा कर अपने विशाल नेत्रों में अत्यन्त-सरस कोमल प्रेम भर कर सुरमा के मुँह की ओर देखा।

सुरमा ने मन ही मन कहा—"देखूँ, अब की बार क्या बात निकलती है। उसने ज़रा सिर झुका लिया, उसका चित्त कुछ चञ्चल हो पड़ा। युवराज ने अपने दोनों हाथ उसके दोनों गालों पर रख कर बड़ी कोमलता से उसके नीचे की ओर झुके हुए मुँह को ऊपर उठाया और वे उसके बिलकुल ही पास जा बैठे। उन्होंने धीरे धीरे उसके माथे को अपने कन्धे पर स्थापित किया, तदनन्तर प्रेमालिङ्गनपूर्वक कहा—"उसके बाद क्या हुआ? यह मैं तुम्हारे मुँह से सुनना चाहता हूँ। प्यारी, तेरा यह बुद्धि से चमकता हुआ, यह शान्तिभाव से भरा हुआ, हास्यविकसित कोमल प्रेममय प्रसन्न मुँह कहाँ से उदित हुआ! मेरे उस गहरे अन्धकार का नाश होने की क्या आशा थी? मेरी ऊषा तुम्हीं हो, मेरी प्रभा तुम्हीं हो और आशा भी तुम्हीं हो। तुम न होती तो मैं उसी प्रकार घोर अन्धकार में पड़ा रहता। किस मन्त्रबल से तुमने बात की बात में मेरे उस अन्धकार को दूर कर दिया। युवराज ने बार बार सुरमा का मुँह चूम कर अपनी कृतज्ञता प्रकट की। सुरमा कुछ न बोली, उसकी आँखों में आनन्द के आँसू उमड़ आये। युवराज ने कहा—"इतने दिनों के बाद मैंने यथार्थ में अपने जीवन का सहारा पाया। तुम्हारे मुँह से सुना कि "मैं मूर्ख नहीं हूँ"

आज मैंने इस पर विश्वास किया। इसी को मैंने सच माना। आज मैंने तुमसे सीखा, बुद्धि अन्धकार मय छोटी गली की तरह टेढ़ी मेढ़ी संकीर्ण या ऊँची नीची नहीं है। यह राजमार्ग की तरह सीधी, समतल और ख़ूब लम्बी चौड़ी है। पहले मैं अपने ऊपर घृणा करता था, आपही अपनी अवज्ञा करता था, किसी काम के करने में मेरा उत्साह नहीं होता था। मैं सर्वदा साहसहीन कायर सा बना रहता था। मेरा मन जिसे सत्य मानता था, उसे संशयात्मिका बुद्धि असत्य कह कर मुझे भटकाती थी। मेरे साथ जो जिस तरह का व्यवहार करता था मैं उसे सह लेता था, ख़ुद भला बुरा विचारने का प्रयत्न नहीं करता था। इतने दिनों के बाद आज मैंने जाना कि मैं भी कुछ हूँ। मैं बिलकुल मिट्टी का पुतला ही नहीं हूँ। इतने दिन मानो मैं गढ़े में छिपा था। तुम मुझे बाहर कर प्रकाश में लाई हो। सुरमा, तुमने मुझे नवीन रूप में परिवर्तित किया है। अब मेरा मन जिसे अच्छा समझेगा उसे मैं अवश्य करूँगा। मेरा तुम पर अटल विश्वास है। जब तुम मुझे विश्वास दिलाती हो तब मैं अपने ऊपर निःशङ्कभाव से विश्वास क्यों न करूँ? तुम ने इस मक्खन से कोमल शरीर में इतना बल कहाँ पाया जो मुझे ऐसा बलिष्ठ बना डाला।"

सुरमा अपने असीम निर्भर भाव से स्वामी को दोनों भुजाओं से आवेष्ठित करके उनकी छाती से लिपट गई। वह सम्पूर्ण आत्मत्याग की दृष्टि से उनके मुँह की ओर देखने लगी। उसकी अनुराग भरी आँखों ने साफ़ साफ़ कह दिया—"मेरे और कोई नहीं, केवल तुम्हीं एक हो। इसी से सब कुछ है।"

बचपन से ही उदयादित्य अपने सम्बन्धियों से अपमानित होते आते हैं। इसीसे किसी किसी दिन गहरी निःशब्द रात में सुरमा के पास वही सैकड़ों बार की कही हुई अपनी गम-कहानी सुना कर अपने दिल का बोझ हलका करते हैं।

उदयादित्य ने कहा—"सुरमा, इस तरह से और कितने दिन चलेंगे? इधर राजदरबार में सभासद्गण मुझ पर एक प्रकार की विलक्षण कृपादृष्टि रखते हैं, उधर अन्दर हवेली में माँ तुम्हारी ख़बर लेती है। नौकर नौकरानी तक भी तुम्हारा कुछ सम्मान नहीं करतीं। मुझे किसी को कुछ कहने का साहस नहीं होता इसी से चुप हो रहता हूँ। सब सहे जाता हूँ। सुरमा, तुम्हारा स्वभाव कुछ उग्र है, पर तुम भी चुपचाप सब सह लिया करो। जब तुमको मैं सुख न दे सका, जब मेरे सम्बन्ध से तुमको केवल अपमान और कष्ट ही सहना पड़ा तब मेरे साथ तुम्हारा विवाह न होना ही अच्छा था।"

सुरमा—"प्राणनाथ, आप यह क्या कह रहे हैं। सुरमा के लिए यही समय उपयुक्त है। सुख के समय में आपकी कौन सी सेवा कर सकती? सुख के समय में सुरमा एक मात्र विलास की वस्तु थी, एक तरह का खिलौना था। इन सब दुःखों को पार करके मेरे मन में यह सुख जाग रहा है कि आप मुझे किसी तरह अपने दुःख का सहारा समझ रहे हैं। आपके लिए दुःख सहने में जो अतुल आनन्द है मैं उस आनन्द का उपभोग कर रही हूँ। यदि मुझे कुछ खेद है तो इतना ही कि मैं आपके समस्त कष्टों को अपने ऊपर क्यों नहीं ले सकी?"

युवराज कुछ देर तक सुरमा के मुँह की ओर देखते रहे; आख़िर बोले—"प्यारी, मैं अपने लिए कुछ परवा नहीं करता।

मेरे लिए सब सह्य हो गये हैं। मेरे लिए तुम क्यों कष्ट सहोगी? सच्ची स्त्री को पति के साथ जैसा बर्ताव रखना उचित है तुम वैसा ही मेरे साथ रखती हो, मुझे किसी तरह का कष्ट न हो। इसका ध्यान तुम्हारे मन में हमेशा बना रहता है। मेरे मन में जब किसी तरह का कोई खेद होता है तब तुम आश्वासन देकर मुझे ठिकाने लाती हो। पर मैं तुम्हारा स्वामी होकर तुम्हें अपमान या ग्लानि के दुःख से नहीं बचा सका, तुम्हें कोई सुख न दे सका। तुम्हारे पिता श्रीपुराधीश मेरे पिता की प्रधानता स्वीकार नहीं करते और न अपने को यशोहर के छत्र की छाया के अधीन समझते हैं, इससे पिताजी रुष्ट होकर उसके बदले तुम्हारी अवहेला करके ही अपने महत्त्व को रखना चाहते हैं। तुम्हारा कोई क्यों न अपमान करे, पर वे उस पर तनक भी ध्यान नहीं देते। वे समझते हैं कि उन्होंने जो तुम्हें पुत्रवधू बनाकर अपने घर में जगह दी है यही तुम्हारे लिए बहुत है। जब ये सब बातें बरदाश्त नहीं होतीं तब कभी कभी जी चाहता है कि सब छोड़ छाड़ कर सिर्फ़ तुम्हें अपने साथ लेकर कहीं चल दूँ। अब तक तो मैं कभी का चला गया होता, पर तुम्हीं ने मुझे रोक रक्खा है।"

रात बहुत चली गई। साँझ के तारागण कितने ही अस्त हो गये हैं और गम्भीर रात के कितने ही तारे उदित हुए हैं। क़िले के फाटक पर पहरेदारों के चलने की आहट कुछ कुछ सुनाई दे रही है। सारा संसार निद्रादेवी की गोद में विश्राम ले रहा है। शहर की रौशनी बिलकुल बुत गई है। सभी के घर का द्वार बन्द है। दो एक गीदड़ के सिवा प्रायः एक भी प्राणी बाहर घूमता दिखाई नहीं देता। उदयादित्य के सोने की

कोठरी का द्वार बन्द था। एकाएक बाहर से किसी ने किवाड़ खटखटाये, उदयादित्य ने झट जाकर द्वार खोला, देखा, विभा खड़ी है। पूछा—"क्या है विभा? क्या हुआ है? इस समय यहाँ क्यों आई हो?"

पाठकगण पहले ही जान चुके हैं, कि विभा उदयादित्य की बहन है।

विभा ने कहा—"जान पड़ता है, सर्वनाश हुआ! सुरमा और उदयादित्य एक साथ पूछने लगे—"क्यों, क्या हुआ? काँपती हुई विभा ने चुपके से कुछ कहा—"कहते कहते वह अपने को सँभाल न सकी, बीच ही में रोकर बोली—"भैया क्या होगा?"

उदयादित्य ने कहा—"रोओ मत। मैं अभी जाता हूँ।" विभा ने कहा, नहीं तुम मत जाओ।"

उदयादित्य—"क्यों, विभा?"

विभा—"तुम्हारे जाने का हाल मालूम हो जाने पर शायद पिता तुम्हारे ऊपर क्रोध करें?"

सुरमा ने कहा—"विभा, अभी क्या वह सोचने का समय है?"

उदयादित्य पोशाक पहन कर कमर में तलवार लटका कर जाने के लिए तैयार हो गये। विभा ने उनका हाथ पकड़ कर कहा—"भैया, तुम मत जाओ। किसी आदमी को भेज दो। मेरा जी घबराता है।"

उदयादित्य ने कहा—"घबराने की कोई बात नहीं है। अभी मेरे जाने में बाधा मत दो। अब वक्त नहीं है।" यह कह कर वे तुरन्त अपनी कोठरी से बाहर हो गये।

विभा ने सुरमा का हाथ पकड़ कर कहा—"भाभी, अगर पिताजी सुन पावें तब ?"

सुरमा ने कहा—"तब और क्या होगा ? हम लोगों पर उनका कुछ स्नेह भाव थोड़ा ही है। अगर कुछ है भी तो वह न रहेगा इतना ही न। इसके लिए कोई कहाँ तक डरे।"

विभा ने कहा—"नहीं भाभी, मुझे बड़ा डर लगता है। अगर किसी तरह का दण्ड ही दें ?"

सुरमा ने लम्बी साँस लेकर कहा—"मुझे पूरा विश्वास है, संसार में जिसका कोई रक्षक नहीं उसकी रक्षा भगवान् करते हैं। हे ईश्वर ! तुम अपने नाम को कलङ्कित न करो। तुम पर जो मेरा अटल विश्वास है, उसका भङ्ग न करो !"



# दूसरा परिच्छेद ।

मन्त्री ने कहा—"क्या वह काम करना उचित होगा ?"

प्रतापादित्य—"कौन काम ?"

मन्त्री—"कल जिसके लिए आज्ञा दी गई है।"

प्रतापादित्य ( क्रोध से ) कल क्या आज्ञा दी गई है ?"

मन्त्री—"चचा साहब के सम्बन्ध में।"

प्रतापादित्य और भी क्रुद्ध हो कर बोले—"चचा के सम्बन्ध में क्या ?"

मन्त्री—"महाराज ने आज्ञा दी थी,—"यशोहर आते समय जब वसन्तराय सिमलतली की चट्टी में ठहरें तब।

प्रतापादित्य ने भौं सिकोड़ कर कहा—"तब क्या ? बात को पूरी कर डालो।"

मन्त्री—"तब दो पठान जा कर——"

प्रतापादित्य—"हाँ।"

मन्त्री—"उन्हें मार डालें !"

प्रतापादित्य अत्यन्त रुष्ट होकर बोले—"सुनो दीवान, तुम एकाएक लड़के की तरह क्यों बात करते हो ? एक बात का उत्तर सुनने के लिए दस बात क्यों पूँछते हो ? काम की बात पूँछते क्या तुम्हें शरम मालूम होती है ? जान पड़ता है, राज-

काज में माना योग देने की अवस्था तुम्हारी बीत चली, अब चौथे पन की चिन्ता का समय आया है, इतने दिन तुम अपने पद-त्याग के लिए प्रार्थना क्यों नहीं करते थे?"

मन्त्री—"महाराज मेरे अभिप्राय को ख़ूब ग़ौर करके नहीं देखते?"

प्रताप०—"हम ख़ूब ग़ौर करके देखते हैं। हम तुम्हारे मतलब को बख़ूबी समझते हैं। अच्छा, हम एक बात पूँछते हैं। हम जो कोई काम करना चाहते हैं, क्या उसे तुम ज़बान पर भी नहीं ला सकते? तुमको हमारे उस काम पर विचार करना उचित था। जब हम वह काम करने चले हैं, तब तुमको समझना चाहिए, उसका कोई भारी सबब ज़रूर है, हमने धर्म अधर्म का भी विचार कर लिया है।"

मन्त्री—"महाराज, मैं तो——"

प्रताप०—"ठहरो, पहले हमारी सब बातों को भली भाँति सुन लो। हम जब इस काम पर—अर्थात् अपने चचा को मारने पर, उद्यत हुए हैं, तब तुम्हारी अपेक्षा हमने इस विषय में अवश्य बहुत सोच-विचार कर लिया है। तुम पाप की बात सोचते होगे, पर इस काम में पाप नहीं। यवन लोगों ने इस पवित्र भारत देश में आकर जो घोर अत्याचार आरम्भ कर दिया है, जिनके अत्याचार से हमारे देश का सनातनधर्म लुप्त होने पर है, राजपूत मुसलमान को लड़की देने लगे हैं, हिन्दुओं के आचार दिन दिन भ्रष्ट हो रहे हैं। हम इन म्लेच्छों को दूर भगा कर सनातनधर्म को पुनरुज्जीवित करेंगे।" हमारी इस प्रतिज्ञा के रक्षार्थ विशेष बल की आवश्यकता है। हम चाहते हैं, "समस्त वङ्गदेश के राजा महाराजा हमारी आज्ञा

के वशवर्ती होकर काम करें। जो लोग यवनों के मित्र हैं उन्हें विना यमपुर पहुँचाये मेरा यह उद्देश्य सिद्ध न होगा। चचा वसन्तराय मेरे पूज्य हैं किन्तु सच बोलने में पाप नहीं, वे हमारे वंश के कलङ्क हैं। उन्होंने अपने को म्लेच्छ का दास कह कर स्वीकार किया है। ऐसे लोगों के साथ प्रतापादित्य कोई सम्पर्क रखना नहीं चाहते। व्रण होने से लोग अपनी बाँह भी काट कर फेंक देते हैं। मेरी इच्छा है कि वंश के कलङ्क तथा वङ्गदेश के व्रणस्वरूप वसन्तराय को काट कर रायवंश की रक्षा करूँ और वङ्गदेश को भी बचाऊँ।"

मन्त्री ने कहा—"इस विषय में तो महाराज के साथ मेरा कोई मत भेद न था।"

प्रतापादित्य ने कहा—"हाँ, था। सच्ची बात कहो। अब भी है। देखो दीवान, जब तक मेरी राय के साथ तुम्हारी राय न मिले, तब तक बराबर तुम अपनी राय ज़ाहिर किया करो। यदि इतना साहस न हो तो तुम मन्त्रित्व के अधिकारी नहीं। यदि किसी तरह का सन्देह हो तो मुझसे कहो, मुझे विचारने का मौक़ा दो। तुम यह समझ रहे हो कि चचा को मारना सभी काल में पाप है। कहो, तुम्हारे मन में यही बात जमी हुई है न। सुनो, जब बाप के अनुरोध से परशुराम ने अपनी माँ को मार डाला था, तब धर्म के अनुरोध से क्या मैं अपने चचा को नहीं मार सकता हूँ?"

इस विषय में—अर्थात् धर्म-अधर्म के विषय में यथार्थ ही मन्त्री का कोई मतभेद न था। मन्त्री का ख़याल जहाँ तक पहुँचा था, राजा वहाँ तक नहीं पहुँच सके थे। मन्त्री भली भाँति जानता था कि उपस्थित विषय में यदि वह सङ्कोच दिख-

लावेगा तो उससे राजा तत्काल रुष्ट होंगे सही, किन्तु पीछे परिणाम की बात सोच कर मन ही मन प्रसन्न होंगे। ऐसा न करने से मंत्री के ऊपर किसी समय राजा का सन्देह उत्पन्न होना सम्भव था।

मन्त्री ने कहा—"मेरे कहने का मतलब यह था कि दिल्ली के बादशाह इस ख़बर को सुन कर नाराज़ होंगे।"

प्रतापादित्य मारे क्रोध के जल उठे। वे बोले—"हाँ, हाँ, नाराज़ होंगे! वे भले ही नाराज़ हों, नाराज़ होने का अधिकार सभी को है। दिल्लीपति हमारे ईश्वर नहीं हैं। उनके नाराज़ होने से ऐसे अनेक जीव हैं, जो डर से काँप उठेंगे। मानसिंह हैं, वीरबल हैं, हम लोगों के कुल-कमल वसन्तराय हैं और अब देख रहे हैं तुम भी हो; पर तुम लोग अपने ही बराबर सबको मत समझो।"

मन्त्री ने ज़रा हँस कर कहा—"जी हाँ, सूखे क्रोध मात्र से तो यह ताबेदार भी नहीं डरता, किन्तु उस क्रोध के साथ साथ यदि ढाल तलवार भी हो तब तो कुछ भय ज़रूर करना होगा। दिल्लीपति को रुष्ट करने के लिए कम से कम पचास हज़ार सेना का संग्रह तो पहले ज़रूर कर लेना चाहिए।

प्रतापादित्य इसका कोई ठीक उत्तर न दे सके, ज़रा ठहर कर बोले—"दीवान, दिल्लीश्वर का डर दिखला कर मुझे किसी काम में हतोत्साह करने की चेष्टा न करो। मैं उसमें अपनी अप्रतिष्ठा समझता हूँ।"

मन्त्री—"यह सुन कर प्रजायें क्या कहेंगी?"

प्रताप०—"सुनेगी तब तो।"

मन्त्री—"यह बात बहुत दिन तक छिपी न रहेगी। इस बात के फैलने से सारा वङ्गदेश आपका विरोधी हो जायगा। जिस अभिप्राय से आप यह काम करना चाहते हैं वह जड़ समेत नष्ट हो जायगा। आप अपने को जातिच्युत करेंगे और अनेक प्रकार की आपत्तियाँ अपने ऊपर उठावेंगे।"

प्रतापादित्य—"देखो, फिर तुमसे कहे देता हूँ। मैं जो काम करता हूँ उसे भली भाँति सोच कर करता हूँ। अतएव जब मैं किसी काम में प्रवृत्त होऊँ तब तुम झूठ मूठ कई तरह के भय दिखला कर मुझे निरुत्साह करने का प्रयत्न न करो। मैं बालक नहीं हूँ। पग पग में वाधा देने के लिए—मैंने तुमको अपनी ज़ञ्जीर बना कर नहीं रक्खा है।"

मन्त्री चुप हो रहे। उन पर राजा की दो विशेष आज्ञाय थीं। एक यह कि "जब तक मतभेद हो तब तक वे बराबर अपनी राय ज़ाहिर करेंगे। दूसरी, अपना विरुद्ध मत प्रकाश करके उन्हें किसी काम से हतोत्साह करने की चेष्टा न करें। मन्त्री आज तक इन दोनों बेमेल आज्ञाओं का सामञ्जस्य अच्छी तरह नहीं कर सके।"

मन्त्री ने कुछ देर के बाद फिर कहा—"महाराज, दिल्लीश्वर—!" प्रतापादित्य ने झिड़क कर कहा—"फिर दिल्लीश्वर? दीवान, दिन भर में तुम जितनी बार दिल्लीश्वर का नाम लेते हो उतनी बार यदि ईश्वर का नाम लेते तो उससे तुम्हारा परलोक सुधरता। जब तक मेरा यह काम पूरा न हो तब तक मेरे सामने दिल्लीश्वर का नाम मुँह पर मत लाओ। जब आज दुपहर बाद इस काम की तामील की ख़बर आ जाय तब तुम मेरे कान के पास दिल्लीश्वर का नाम जप कर अपने दिल का

हौसला पूरा कर लेना। तब तक अपने मन के आवेग को रोके रहो।"

मन्त्री फिर चुप हो रहे। दिल्लीश्वर का ज़िक्र छोड़ कर उन्होंने कहा—"महाराज, युवराज उदयादित्य—"

राजा ने कहा—"दिल्लीश्वर गये, प्रजायें गईं, अब उस क्षीण बालक की ही बात चला कर डर दिखलाना चाहते हो क्या?"

मन्त्री ने कहा—"महाराज, आप समझने में बड़ी भूल कर रहे हैं! प्रतापादित्य ने प्रकृतिस्थ होकर कहा—"तो क्या कह रहे थे कहो?"

मन्त्री ने कहा—"कल रात युवराज घोड़े पर सवार हो कर एकाएक न मालूम कहाँ गये जो अब तक भी नहीं लौटे हैं।" प्रतापादित्य रुष्ट हो कर बोले—वह किधर गया है?"

मन्त्री—"पूरब की ओर।"

प्रतापादित्य ने दाँत पर दाँत मसमसा कर कहा—"कब गया?"

मन्त्री ने कहा—"कल आधीरात के समय।"

प्रतापादित्य—श्रीपुर के ज़मीदार की लड़की क्या यहीं है?

मन्त्री—"जी हाँ।"

प्रतापादित्य—"वह अपने बाप के घर रहे इसी में बेहतरी है।"

मन्त्री ने इस बात का कुछ जवाब न दिया।

प्रतापादित्य ने कहा—"उदयादित्य किसी समय भी राजकुमार होने योग्य न था। बाल्य काल से ही प्रजाओं के

साथ हेल मेल रखने लगा! मेरी सन्तान ऐसी होगी यह कौन जानता था? सिंह के बच्चे को कोई सिंह थोड़े ही बनाता है। उसको सिंह बनने के लिए किसी की शिक्षा दरकार नहीं। तब बात यह है कि "नराणां मातुलक्रमः" जान पड़ता है उसने अपने मातृपक्ष का स्वभाव अवलम्बन किया है। उस पर फिर मैंने अभी श्रीपुर के घर में उसे ब्याह दिया है। इसीसे लड़का बेचारा एकबारगी नीचे गिर गया है। ईश्वर करे, जिसमें मेरे छोटे कुमार राज्य के उपयुक्त हों। जिससे मरने के वक्त मेरे मन में कोई चिन्ता न रह जाय। तो क्या वह अब तक भी नहीं लौटा है?"

मन्त्री—"नहीं।"

धरती पर पदप्रहार करके प्रतापादित्य ने कहा—"एक प्यादा उसके साथ क्यों नहीं गया?"

मन्त्री—"प्यादा जाने को तैयार था, किन्तु उन्होंने उसे जाने से रोक दिया।"

प्रतापादित्य—"वह छिप कर दूर ही दूर उसके साथ क्यों नहीं गया?"

मन्त्री—"यदि उनपर किसी तरह का कुछ सन्देह होता तब तो वह जाता।"

प्रताप०—"सन्देह क्यों नहीं हुआ? दीवान, तुम हमें समझाया चाहते हो कि उन लोगों ने बड़ा अच्छा काम किया? तुम वाहियात ऐसी वैसी बातें समझाने की कोशिश न करो। पहरेदारों ने अपने कर्तव्य में बड़ी असावधानी की है। उस समय फाटक पर कौन था उसे अभी बुला भेजो। पहरेदारों की इस असावधानी से यदि मेरा कोई उद्देश विफल हुआ तो

जान रक्खो मैं सर्वनाश करूँगा । तुम्हारे ऊपर भी भय की कुछ कम सम्भावना नहीं है । मेरे साथ तुम बराबर 'दलील करते आते हो । इस काम के लिए दूसरा कोई जवाबदेह नहीं । बिलकुल जवाबदेही तुम्हारे ऊपर है ।"

प्रतापादित्य ने पहरेदारों को बुलवा भेजा । कुछ देर गंभीर भाव धारण करके दीवान से पूँछा—"हाँ तुम दिल्लीश्वर की बात क्या कह रहे थे ?"

मन्त्री—"सुना है, आपके ऊपर दिल्लीश्वर के निकट नालिश दायर हुई है ।"

प्रतापा०—"किसने दायर की है ? तुम लोगों के युवराज उदयादित्य ने तो नहीं ?"

मन्त्री—"नहीं महाराज, मैं यह कैसे कह सकता हूँ कि किसने नालिश की है उसका अभी पता नहीं लगा है ।"

प्रतापादित्य—"जो कोई करे, उसके लिए अधिक चिन्ता न करो । दिल्लीश्वर के विचार करनेवाला मैं ही हूँ । मैं ही उनके दण्ड का उद्योग कर रहा हूँ । ओफ़, वे दोनों पठान अब तक भी वापस न आये ? उदयादित्य अब भी नहीं आया ? पहरेदार को जल्दी बुलाओ ।"



# तीसरा परिच्छेद ।

युवराज सुनसान रास्ते से घोड़े को सरपट दौड़ाते हुए बेख़ौफ़ चले जा रहे हैं । रात अँधेरी है, किन्तु सड़क बहुत बढ़िया, सीधी सादी और साफ़ है जहाँ डरने की कोई सम्भावना नहीं है । निःशब्द रात में घोड़े की टाप चारों ओर प्रतिध्वनित हो रही है । कहीं कहीं दो एक कुत्ते भूँकते हुए दिखाई देते हैं । दो एक गीदड़ रास्ते से हट कर पास की झाड़ी में भौंचक से खड़े हैं । प्रकाश की सामग्री में आकाश के तारे और सड़क की पार्श्ववर्ती वृक्षों पर जुगुनू की जमात है । शब्दों में झिल्लियों की अविरत झनकार सुनाई दे रही है । मार्ग में एक भी पथिक कहीं दिखाई नहीं देता । अस्थिचर्मावशेष एक वृद्ध भिखारी सड़क के किनारे पेड़ के नीचे सोया है । पाँच कोस रास्ता तै करके युवराज एक बड़े मैदान में उतर पड़े । घोड़े का वेग अपेक्षा कृत कुछ कम करना पड़ा । दिन में पानी बरस गया था । ज़मीन गीली हो जाने के कारण घोड़े के पाँव ज़मीन में धस जाते हैं । कई बार आगे के दोनों पाँवों पर भार देकर घोड़ा गिरने से बच जाता है । थक जाने से उसकी नाक फलक गई है । उसके मुँह से झाग बहा जा रहा है । उसका पेट जल्दी जल्दी साँस लेने के कारण फूल रहा है । पसीने से उसका सारा बदन तरबतर हो गया है । गरमी की बड़ी प्रबलता है । हवा का कहीं नाम नहीं । अब भी रास्ता बहुत कुछ बाक़ी रह गया है । कितने ही जलाशय, कितने ही खेत और कितने ही

मैदान और झाड़ियों को पार करके युवराज एक कच्ची सड़क पर आ पहुँचे। उन्होंने फिर घोड़े को तीर की तरह छोड़ा। वे उसके कन्धे को एक बार थपथपा कर और उत्साह देकर बोले—"सुग्रीव!" उसने चकित होकर अपने कान खड़े किए और मालिक की ओर एक बार गर्दन टेढ़ी करके देखा, उसके बाद वह ख़ूब ज़ोर से हिनहिना उठा और रास ढीली करके साँस ऊपर की ओर फेंकता हुआ दौड़ने लगा। वह इस तीव्रगति से दौड़ा जा रहा है कि उदयादित्य को रास्ते के पार्श्ववर्ती पेड़ बख़ूबी दिखाई नहीं देते। आकाश की ओर देखने से मालूम होता है जैसे ढेर के ढेर तारे आग की चिनगारियों की तरह बड़े वेग से उड़ रहे हैं। वही बन्द हवा अब आकाश में लहरा कर कान के पास सन् सन् करने लगी। जब तीन पहर रात बीत चुकी तब युवराज सिमलतली चट्टी के फाटक पर आ खड़े हुए। उनका घोड़ा उसी समय पछाड़ खाकर धरती पर लोट गया जो फिर उठा नहीं। युवराज ने झुक कर उसकी पीठ थपथपाई, उसका मुँह सीधा करके ऊपर उठाया और सुग्रीव कह कर उसे बार बार पुकारा पर वह ज़रा भी न हिला। तब युवराज ने लम्बी साँस लेकर ज़ोर से फाटक पर धक्का दिया। उनके बार बार धक्का देने पर भी चट्टी के अध्यक्ष ने फाटक न खोला। किसी ने खिड़की के पास से झाँक कर कहा—"तुम कौन हो, इतनी रात में बार बार क्यों फाटक को ढकेल रहे हो?" उसने देखा—एक हथियार बन्द युवा फाटक पर खड़ा है।

युवराज ने कहा—"एक बात दरख़ास्त करना है, फाटक खोलो।"

उसने कहा—"द्वार खोलने की क्या ज़रूरत है जो पूँछना हो, वहीं से पूँछ लो।"

युवराज ने कहा—"रायगढ़ के राजा वसन्तराय यहाँ हैं?"

उसने कहा—"सन्ध्या समय उनके आने की बात ठीक थी किन्तु अब तक वे नहीं आये। जान पड़ता है, किसी कारण से आज उनका आना नहीं हुआ।"

युवराज ने दो रुपये हाथ में लेकर कहा—"यह लो।"

उसने झट पट फाटक खोल कर दोनों रुपये ले लिये। तब युवराज ने उससे कहा "साहब, मैं एक बार तुम्हारी चट्टी की तहक़ीक़ात करूँगा, देखूँगा कौन कौन इस चट्टी में है?"

चट्टी के रक्षक ने सन्देह करके कहा—"नहीं महाशय, यह न हो सकेगा।"

उदयादित्य ने कहा—"मुझे मत रोको—मैं राजधानी का कर्मचारी हूँ। दो अपराधियों के खोज में आया हूँ।"

यही बात कह कर उन्होंने चट्टी में प्रवेश किया। चट्टी के प्रधान ने फिर किसी तरह की आपत्ति न की। उन्होंने सारी चट्टी छान डाली। न वसन्तराय को देखा, न उनके नौकरों को और न किसी पठान ही को देखा।

केवल दो युवती स्त्रियाँ सो रही थीं। वे चौंक कर जाग उठीं और बोलीं—"हटो कौन है? इस तरह क्यों ताक रहा है?"

चट्टी से बाहर निकल कर रास्ते पर खड़े हो युवराज सोचने लगे। उन्होंने एकबार अपने मन में कहा—"अच्छा

ही हुआ जो आज वे यहाँ नहीं आये। फिर सोचा, यदि इसके पूरब ओर किसी चट्टी में ठहरे हों और उनकी खोज में पठान वहाँ तक पहुँच गये हों!"

इसी तरह भाँति भाँति की बातें सोचते हुए वे धीरे धीरे आगे बढ़ चले। कुछ दूर आगे जाकर उन्होंने देखा, सामने एक घुड़सवार आ रहा है। जब वह बहुत पास आ गया तब युवराज ने पूँछा—"कौन है? तुम रतन तो नहीं?" वह तुरंत घोड़े से उतर कर और युवराज को प्रणाम करके बोला—"जी हाँ, आप इतनी रात में यहाँ कैसे आये?"

युवराज—"उसका कारण पीछे कहूँगा, पहले यह तो बतलाओ, दादाजी कहाँ हैं?"

रतन—"उनको तो आज इसी चट्टी में रहने की बात थी।"

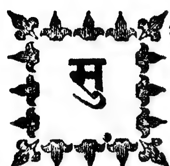
युवराज—"अयँ! यह क्या? वहाँ तो उनको नहीं देखा।"

उस व्यक्ति ने क्षुब्ध होकर कहा—"महाराज ने आज तीस नौकरों को साथ ले यशोहर की यात्रा की। मैं कामों में फँस जाने के कारण पीछे रह गया। इसी चट्टी में आज सन्ध्या समय उनसे मिलने की बात थी।"

उदयादित्य—"मुझे तुम अपना घोड़ा दो, मैं दादाजी की खोज में जाता हूँ तुम यहाँ से अब पैदल भी जा सकते हो!"



# चौथा परिच्छेद ।




नसान जगह में, सड़क के किनारे, पीपल के पेड़ के नीचे एक पालकी के भीतर वसन्तराय बैठे हैं। उनके साथी लोग न मालूम कहाँ चले गये हैं। सिर्फ़ एक पठान पालकी से ज़रा दूर हट कर बैठा है। रात इतनी अधिक हो गई है कि कहीं कोई शब्द सुनाई नहीं देता। वसन्तराय ने पूछा—"ख़ाँ साहब, तुम क्यों नहीं गये?" पठान ने कहा—"हुज़ूर, मैं कैसे जाता? आप ने हमारे धन, जन की रक्षा के हेतु अपने कुल नौकरों को भेज दिया है। मैं आपको इस भयानक रात में यहाँ अकेले छोड़ कर चल देता यह क्या मुनासिब था? आप मुझे इतना बड़ा स्वार्थी न समझें। किसी शायर ने कहा है—"जो मेरी बुराई करता है वह मेरे पास ऋणी है, दूसरे जन्म में उसे उस ऋण का परिशोध करना होगा और जो मेरी भलाई करता है उसके पास मैं ऋणी हूँ, उसका ऋण किसी समय में भी मैं न चुका सकूँगा।"

वसन्तराय ने मन ही मन कहा—"वाह वाह, यह आदमी तो बड़ा अच्छा मालूम होता है। कुछ देर के बाद उसने पालकी में से अपना सिर बाहर निकाल कर कहा—"ख़ाँ साहब, तुम बड़े अच्छे आदमी हो।"

ख़ाँ साहब ने झट सलाम किया। ख़ाँ साहब भी अपने को ऐसा ही समझते थे। वसन्तराय ने मशाल की रौशनी में

उस पठान का मुँह देख कर कहा—"तुम अच्छे ख़ानदान के आदमी जान पड़ते हो।"

पठान ने फिर सलाम करके कहा—"क्या कहना है, बड़े ताअ़ज्जुब की बात है! महाराज का ख़याल बहुत ठीक है।"

बसन्तराय ने कहा—"अब तुम्हारी क्या हालत है?"

पठान ने लम्बी साँस लेकर कहा—"हुजूर, हालत की बात न पूछिए, बहुत बुरी हालत है, बड़ी तकलीफ़ से वक्त़ कटता है, अब खेती बारी से ही गुज़ारा चलता है। किसी शायर ने कहा है—"हे विधाता! तुमने जो दूब (घास) को बहुत छोटा बनाया है इसमें तुम्हारी कोई कठोरता प्रकट नहीं होती, किन्तु पीपल का पेड़ उतना बड़ा बना कर तुम उसे आँधी में नीचे गिरा कर उस दूब के साथ बराबर करके धरती पर सुला देते हो, इससे तुम्हारे पाषाण हृदय की कठोरता अवश्य प्रकट होती है।"

बसन्तराय बड़े ही उल्लास के साथ बोल उठे—"वाह, वाह! शायर ने क्या ही अच्छा कहा है। ये दोनों बातें जो अभी तुमने कही हैं—लिख देनी होंगी।"

पठान ने मन ही मन सोचा—"मेरी तक़दीर अच्छी जान पड़ती है। यह बूढ़ा रईस तो बड़ा ही रसीला मालूम होता है। इसके द्वारा ग़रीबों का बहुत कुछ उपकार होता होगा।"

बसन्तराय ने अपने मन में कहा—"अहा, जो किसी वक्त़ बड़ा आदमी था आज उसकी ऐसी बुरी हालत! चञ्चला लक्ष्मी की यह बड़ी ही विचित्र लीला है। आख़िर उसने अधीर होकर पठान से कहा—"तुम्हारा बदन जैसा मज़बूत और

सुडौल है उससे तो तुम बड़ी आसानी से पलटन में भरती हो सकते हो।"

पठान तुरन्त बोल उठा—"हाँ हुज़ूर, क्यों नहीं हो सकता हूँ? मैं भी यही चाहता हूँ। मेरे बाप, दादे और परदादे सब तलवार हाथ में लेकर ही मरे हैं।

वसन्तराय ने हँसते हँसते कहा—

"यदि तुम मेरा कहना क़बूल करो तो तलवार हाथ में रख कर मरने का मनोरथ पूरा हो सकेगा। किन्तु वह तलवार कभी म्यान से बाहर निकालने की आवश्यकता न होगी। मैं अब बुड्ढा हुआ, प्रजागण सुख चैन से हैं। ईश्वर न करे कि कभी युद्ध करने की आवश्यकता हो, उम्र बीत ही गई है। मैंने तलवार को अपने हाथ से अलग कर दिया है। तलवार को अब हाथ में लेने की ज़रूरत क्या? तलवार के बदले अब एक और ही ने मेरा हाथ पकड़ा है। उन्होंने यह कह कर बगल में रक्खे हुए सितार के तारों पर दो एक बार अँगुली फेर दी।"

पठान ने सिर हिला कर कहा—"हुज़ूर बहुत ठीक कह रहे हैं। कहा है कि—तलवार से दुश्मन जीता जाता है, किन्तु सङ्गीत से शत्रु भी मित्र बन जाता है।"

वसन्तराय ने कहा—"ख़ाँ साहब, क्या कहा? सङ्गीत से शत्रु भी मित्र बन जाता है, क्या चमत्कार है?" चुप होकर कुछ देर विचारने लगे, जितना ही विचारने लगे मानो उतना ही अधिक वे क्षुब्ध होने लगे। कुछ देर बाद विचार करके बोले—"तलवार जो इतनी बड़ी भयानक चीज़ है, उससे शत्रु की शत्रुता का नाश नहीं होता। किस तरह कहूँगा कि नाश होता है? रोगी को मार कर रोग निवृत्त करना क्या

आरोग्य करना कहलावेगा? किन्तु सङ्गीत ऐसी मधुर चीज़ है जिससे शत्रु नाश न करके भी शत्रुत्व का नाश हो जाता है।"

वृद्ध वसन्तराय यहाँ तक उत्तेजित हो उठे कि पालकी मे पाँव बाहर निकाल कर बैठे। उन्होंने पठान को और नज़दीक में आने के लिए सङ्केत करके कहा—"ख़ाँ साहब, तलवार से दुश्मन जीता जाता है किन्तु सङ्गीत से शत्रु भी मित्र बन जाता है।

पठान, जी हाँ, हुज़ूर।"

वसन्तराय—तुम एक बार रायगढ़ आओ, मैं यशोहर से लौट आता हूँ तो तुम्हारा यथासाध्य उपकार करूँगा।"

पठान ने मारे ख़ुशी के फूल कर कहा—"आप चाहें तो क्या नहीं कर सकते।" उसने मन में कहा—"मैंने एक अच्छी चिड़िया फँसाई है।" प्रकट में कहा—"सरकार सितार तो बजाते होंगे।"

वसन्तराय—"हाँ," उन्होंने तुरन्त हाथ में सितार ले उँगली में मेजराव पहन कर विहाग गाना आरम्भ किया। बीच बीच में पठान सिर हिला कर कहने लगा—"वाह, वाह! क्या कहना है बहुत ख़ासी।" उत्तेजना के आधिक्य से पालकी में बैठना वसन्तराय के लिए असह्य हो उठा। वे पालकी से बाहर होकर सितार बजाने लगे। उस बजाने की झोंक में वे अपनी राजमर्यादा, गम्भीरता और आत्मगौरव आदि भूल गये। सितार बजाने के साथ साथ यों तान लेने लगे—"कैसे काटूँगी रैन सो पिया बिना।"

गान समाप्त होने पर पठान ने कहा—"वाह साहब, आप का गला भी क्या ही मीठा है।"

वसन्तराय—"गला तो मेरा उतना अच्छा नहीं है। तब बात यह है, निःशब्द रात में, और खुले मैदान में प्रायः सभी की आवाज़ मीठी जान पड़ती है। मैंने अपने गले को ख़ूब साधा है, पर तो भी लोग मेरे स्वर की कुछ ज़्यादा तारीफ़ नहीं करते। इससे क्या, विधाता ने जितने रोग रचे हैं, उस की एक न एक दवा भी ज़रूर बना रक्खी है। उसी तरह जितनी आवाज़ें हैं, सबका एक न एक सुननेवाला भी ज़रूर है। जिन्ह मेरा गाना अच्छा लगता है, ऐसे दो व्यक्ति अब भी हैं। यह न होता तो मैं इतने दिन इस गले की दुकानदारी को कब न समेट लिए होता। वे दोनों ग्राहक उतने समझदार नहीं हैं। उन्हें चीज़ की पहचान नहीं है। पर मेरे गान के प्रशंसा करने वाले वही दोनों हैं। मैंने बहुत दिनों से उन दोनों की जुदाई का दुःख सहा है, इसी से गाने बजाने में जी नहीं लगता। सच पूछो तो इसी से उनके पास दौड़ा जा रहा हूँ। वहाँ जाकर अच्छी तरह गा बजा कर जी का बोझ हलका करके फिर अपने घर लौट जाऊँगा।"

वृद्ध वसन्तराय की दोनों आँखें मारे स्नेह और ख़ुशी के चमकने लगीं। पठान ने मन में कहा—"आपका कुछ हौसला तो अभी पूरा हो चुका है, आपने गा बजा कर अपने दिल को बहला ही लिया है। रहा जी का बोझ, क्या उसे मैं यहीं हमेशा के लिए हलका कर दूँ?" तोबा, तोबा, ऐसा भी काम कोई करता है। काफ़िरों के मारने में सवाब है, पर वह सवाब मैंने इतना हासिल किया है कि आकबत के लिए अब ज़्यादा नहीं। इस वक़्त की सभी बातें जैसी बे तरतीब दिखाई दे रही हैं उससे तो इस काफ़िर को न मार कर अगर इससे अपना कोई काम निकाल लूँ इसी में बेहतरी है।"

वसन्तराय ज़्यादा देर चुप न रह सके । उन्होंने पठान के बिलकुल पास जाकर चुपके से कहा—"मैंने जिनके बारे में कहा था, उन्हें तुम जानते हो ?" वे दोनों मेरे पोता और पोती हैं । नौकरों के आने में विलम्ब होते देख उनके मन में चिन्ता हो आई । वे कुछ देर उसी सोच में डूबे रहे, फिर सितार ले कर गाने लगे ।

एक घुड़सवार ने सामने आकर कहा—"हा, अब मेरा जी ठिकाने लगा । दादाजी, आप इतनी रात में सड़क के किनारे बैठ कर किसको गाना सुना रहे हैं ?"

वसन्तराय ने चकित होकर तुरन्त अपने सितार को पालकी के ऊपर रख कर उदयादित्य का हाथ पकड़ घोड़े पर से नीचे उतारा और आलिङ्गन करके पूछा—"क्या हाल है ? तुम्हारे घर के सब लोग अच्छी तरह हैं न ?

उदयादित्य ने कहा—"हाँ, सब लोग अच्छी तरह हैं ।"

तब वसन्तराय ने हँसते हुए सितार उठा लिया और पाँव से ताल देते सिर हिलाते हुए फिर गान आरम्भ कर दिया ।

उदयादित्य ने पठान की ओर देख कर वसन्तराय के कान के पास मुँह ले जाकर पूछा—"यह यहाँ आपके पास कहाँ से आया ?"

वसन्तराय ने कहा—"ख़ाँ साहब बड़े अच्छे आदमी हैं । बड़े समझदार हैं । इनके साथ आजकी रात बड़ी ख़ुशी में कटी है ।"

उदयादित्य को देख कर वह पठान मन ही मन अधिक व्यग्र हो पड़ा । अब वह क्या करे, यह उसकी समझ में नहीं आता ।

उदयादित्य ने वसन्तराय से पूछा—"आप चट्टी में न जा कर यहाँ क्यों ठहरे?"

पठान अब चुप न रह सका, वह एकाएक बोल उठा—"हुजूर. कसूर माफ़ करें तो मैं एक अर्ज़ करूँ। हम महाराज प्रतापादित्य की प्रजा हैं, महाराज ने मुझे और मेरे भाई को आज्ञा दी है कि—"जब उनके चचा वसन्तराय यशोहर की ओर आने लगें तब उन्हें रास्ते में मार डालो।"

वसन्तराय चौंक कर बोले—"राम, राम।"

उदयादित्य—"हाँ. तब—"

पठान—"हम लोग कभी ऐसा काम नहीं करते। महाराज ने हम लोगों के उज़्र करने पर अनेक प्रकार का भय दिखलाया। तब लाचार होकर हम इस काम के लिए रवाना हुए। यहाँ रास्ते में इनसे भेंट हुई। मेरा भाई इनसे झूँठ मूठ यह कह कर कि मेरे गाँव में डाँका पड़ा है, इनके नौकरों को अपने साथ ले गया है और उस काम का भार मेरे ऊपर दे गया है। यद्यपि मेरे राजा साहब की आज्ञा इनका खून करके ही आने की है तथापि मुझसे ऐसा काम कभी नहीं हो सकता। कारण यह कि हमारे शायरों ने कहा है—"मालिक के हुक्म से सारी पृथ्वी को नाश कर डालो, पर ख़बरदार, स्वर्ग के एक कोने को भी न बिगाड़ो।" यह तावेदार हुज़ूर की ख़िदमत में हाज़िर है, महाराज का हुक्म बिना तामील किये यशोहर लौट जाने से हमारी जान न बचेगी। आप हमारी रक्षा न करेंगे तो हमारे बचने का और कोई उपाय नहीं।" यह कह कर वह उदयादित्य के सामने हाथ जोड़ कर खड़ा हुआ।

पठान की यह बात सुन कर वसन्तराय का तो होश उड़ गया। वे अवाक् हो चित्रवत् खड़े रहे। कुछ देर के बाद उन्हों

ने पठान से कहा—"मैं तुमको एक ख़त देता हूँ। तुम यहाँ से सीधे रायगढ़ चले जाओ। मैं यशोहर से लौट कर तुम्हारी जीविका का प्रबन्ध कर दूँगा।"

उदयादित्य—"दादाजी, ऐसी हालत में आप फिर यशोहर जाना चाहते हैं?"

वसन्तराय—"हाँ।"

उदयादित्य—"क्यों?"

वसन्तराय—"प्रताप मेरा कितना ही अपराध करे, पर है तो वह मेरा भतीजा ही। मैं अब अपने मरने जीने की परवा नहीं करता। क्योंकि मेरी नाव अब किनारे लग चुकी है। मेरे जीवन के अब इने गिने दिन बच रहे हैं। किन्तु इस पितृव्य-हत्या से प्रतापके जो यह लोक और परलोक दोनों बिगड़ेंगे, इसका मुझे अत्यन्त खेद हो रहा है। कौन जाने यह प्राण पखेरू किस दिन इस देह-पिञ्जर से उड़ जाय, इसलिए एक बार प्रताप से मिल कर मैं उसे भली भाँति समझा तो दूँ।"

यह कहते कहते वसन्तराय की आँखों में आँसू भर आये। उदयादित्य ने दोनों हाथों से अपने अश्रुपूर्ण नेत्र ढाँप लिये। इसी समय शोर गुल मचाते हुए वसन्तराय के नौकर वहाँ आ पहुँचे और सब एक स्वर से यों कहने लगे—"महाराज कहाँ हैं? महाराज कहाँ हैं?"

वसन्तराय—"इसी जगह हूँ, बाबू, और कहाँ जाऊँगा?"

वसन्तराय बड़ी आतुरता से उन नौकरों के बीच में खड़े होकर बोले—"हाँ, हाँ, ख़बरदार। तुम लोग ख़ाँ साहब को कुछ न कहो।"

पहला—"महाराज, आज हम लोगों के कष्ट की सीमा न रही। आज वह——"

दूसरा—"तुम ठहरो न। मैं सब बातें अच्छी तरह समझा कर कहता हूँ। वह दुष्ट पठान हम लोगों को बराबर सीधे ले जाकर आख़िर बाँई तरफ़ एक आम के बाग़ में——"

तीसरा—"अरे वह आम का बाग़ नहीं था वह तो बबूल का जङ्गल था।

चौथा—"वह बाँई ओर नहीं दहनी ओर था।"

दूसरा—"नहीं जी, वह बाँये हाँथ की तरफ़ था।"

चौथा—"तुम्हारी ही बात सही—वह बाँयें ही हाथ की तरफ़ था।"

दूसरा—"बाँयें हाथ की तरफ़ न होगा तो वह पोखर—"

उदयादित्य—"हाँ बाबू—वह बाँईं ओर ही जान पड़ता है, उसके बाद क्या हुआ सो कहो।"

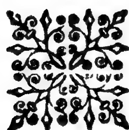
दूसरा—"जी हाँ, वह पठान उस बाँईं तरफ़ वाले आम के बाग़ के बीच से एक मैदान में ले गया। हम लोग उसके साथ कितने ही खेत, मैदान, बँसवाड़ी, जल और थल पार कर गये किन्तु गाँव का कहीं नाम निशान नहीं मिला। इसी तरह वह साला हम लोगों को तीन चार घंटे तक घुमा फिरा कर गाँव के आस पास से कहाँ भाग गया उसका पता नहीं।"

पहला—"उस बदमाश को देख कर मैं पहले ही समझ गया था।"

दूसरा—"मैंने भी समझा वह ऐसा ही कुछ होगा।"

तीसरा—"जब मैंने नज़दीक से उसे देखा तब मेरे मन में भी सन्देह हुआ।"

आख़िर एक एक कर सभी ने ज़ाहर किया कि वे लोग पहले ही जान चुके थे कि वह धोखा देकर उन लोगों को ले गया था।



# पाँचवाँ परिच्छेद ।

प्रतापादित्य ने कहा—"देखो दीवान, वे दोनों पठान अब तक नहीं आये ।"

मन्त्री ने धीरे से कहा—"महाराज इसमें तो मेरा कोई अपराध नहीं ।"

प्रतापादित्य ने झिड़क कर कहा—"इसमें अपराध की क्या बात है ? देरी होने का कोई कारण तो होगा । तुम क्या सोचते हो-यही पूँछता हूँ ।"

मन्त्री—"सिमलतली यहाँ से बहुत दूर है । जाने और काम सम्पन्न करके आने में विलम्ब होने की बात ही है ।"

प्रतापादित्य मन्त्री की बात से सन्तुष्ट न हुए । वे चाहते थे कि हम जो कुछ अनुमान कर रहे हैं मन्त्री भी वही अनुमान करे । किन्तु मन्त्री का ख़याल उस तरफ़ न गया ।

प्रतापादित्य ने कहा—"उदयादित्य कल रात में कहीं गया है न ?"

मन्त्री—"यह तो मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूँ ।"

प्रतापादित्य—"पहले ही निवेदन कर चुका हूँ, क्या ठीक वक़् पर तुमने कहा । किसी समय ख़बर दे दी, बस तुम्हारा काम पूरा हो गया । उदयादित्य तो पहले ऐसा न था । जान पड़ता है, श्रीपुर के ज़मीदार की लड़की ने उसे बुरी सलाह दी होगी । तुम क्या ख़याल करते हो ?

मन्त्री—"महाराज, यह मैं कैसे कहूँ ?"

प्रतापादित्य बोल उठे—"तुम्हारे मुँह से क्या मैं वेद-वाक्य सुना चाहता हूँ ? तुम इस विषय में क्या अनुमान करते हो सो कहो।"

मन्त्री—"आप महारानी साहिबा के द्वारा बहूजी की सभी बातें सुनते होंगे। इस विषय में आपही अनुमान कर सकते हैं। मैं किस तरह अनुमान करूँगा ?" इसी समय एक पठान कमरे में आ पहुँचा।

प्रतापादित्य ने पठान से पूँछा—"क्या हुआ ? काम पूरा करके आये ?"

पठान—हाँ महाराज, इतनी देर में काम पूरा हो गया होगा।"

प्रतापादित्य—"काम हुआ या नहीं यह क्या तुम्हें मालूम नहीं है ?"

पठान—"हाँ, हज़ूर, मालूम क्यों नहीं है। काम हो चुका है। इसमें सन्देह नहीं। सच बात यह है कि मैं उस वक़् वहाँ मौजूद न था।"

प्रतापादित्य—"तो तुम्हें क्योंकर मालूम हुआ कि काम हो गया ?"

पठान—"मैं आपकी आज्ञा के अनुसार उनके नौकर और सङ्गी साथियों को वहाँ से दूर हटा कर चला ही आ रहा हूँ। हुसेन ख़ाँ ने काम किया होगा।"

प्रतापादित्य—"अगर न किया हो ?"

पठान—"महाराज, मैं अपना सिर जामिन रखता हूँ।"

प्रतापादित्य—"अच्छा, यहाँ हाज़िर रहो, तुम्हारे भाई के लौट आने पर इनाम मिलेगा।"

पठान वहाँ से कुछ दूर हट कर दरवाज़े के पास पहरेदारों की सुपुर्दगी में रहा।

प्रतापादित्य ने बड़ी देर तक चुप रह कर मन्त्री से धीरे धीरे कहा—"यह बात प्रजा गणों पर ज़ाहिर न होने पावे।"

मन्त्री ने कहा—"महाराज, आप नाराज़ न हों तो अर्ज़ करूँ। यह बात ज़ाहिर हो हो गी।"

प्रतापादित्य—"तुमने कैसे जाना?"

मन्त्री—"इसके पहले आप अपने चचा के ऊपर विद्वेष प्रकट कर चुके हैं। अपनी लड़की के विवाहोत्सव में आपने वसन्तराय को नहीं बुलाया। वे बिना बुलाये स्वयम् आपके यहाँ आकर उपस्थित हुए थे। आज आपने एकाएक बिना किसी काम के उनको बुला भेजा। ऐसी हालत में प्रजा इस घटना का मूल आप ही को समझेगी।"

प्रतापादित्य ने रुष्ट हो कर कहा—"दीवान, तुम्हारा मतलब मेरी समझ में नहीं आता। जान पड़ता है, इस बात के प्रकाश होने ही में तुम्हें ख़ुशी है, मेरी बदनामी फैलने ही से तुम्हारा मन सन्तुष्ट होगा। अगर यह बात नहीं है तो तुम दिन रात क्यों कहा करते हो कि बात तो ज़ाहिर हो ही गी। ज़ाहिर होने की तो कोई वजह दिखाई नहीं देती। मालूम होता है, और किसी तरह ख़बर न फैलने की हालत में तुम स्वयम् दरवाज़े दरवाज़े जा कर इस बात को ज़ाहिर करते फिरोगे।"

मन्त्री—"महाराज, माफ़ कर । आप मेरी अपेक्षा स्वयम् सब बातों को विशेष रूप से समझते हैं। आपको सलाह देना हमारे सदृश अल्पज्ञ लोगों के लिए बिलकुल नादानी है। तब आप ही ने मुझ को चुन कर मन्त्री रक्खा है, इसी साहस पर अपनी अल्पबुद्धि के अनुसार जो उचित समझता हूँ बीच बीच में आपसे निवेदन करता हूँ। मेरे निवेदन से यदि आप रुष्ट होते हैं तो सेवक को इस मन्त्रित्व पद से अलग कर दें ।"

प्रतापादित्य ठिकाने पर आये। कभी कभी मन्त्री जब उन्हें दो एक कड़वी मीठी बातें सुना देता था तब प्रतापादित्य मन ही मन सन्तुष्ट होते थे।

प्रतापादित्य—"मैं सोच रहा हूँ, इन दोनों पठानों को मार डालने से उस बात के फैलने का कोई ख़ौफ़ न रहेगा।"

मन्त्री—"एक ख़ून का छिपाना तो कठिन है। तीन तीन ख़ून छिपा रखना सर्वथा असम्भव है। प्रजा जानेहीगी।" मन्त्री ने बराबर अपनी बात को जारी रक्खा।

प्रतापादित्य—"तब तो मैं मारे डर के घर छोड़ कर अभी भाग चला! प्रजागण जानेंहीगे, यशोहर रायगढ़ नहीं है। यहाँ प्रजाओं का राज्य नहीं है। यहाँ राजा के सिवा और कोई राजा नहीं। अतएव तुम मुझको प्रजाओं का भय मत दिखलाओ। अगर कोई प्रजा इस विषय में मेरे विरुद्ध कोई बात बोलेगी तो तपाये हुए लोहे से उसकी जीभ जला दूँगा।"

मन्त्री मन ही मन हँसा। उसने अपने मन में कहा—"प्रजा की जिह्वा का इतना भय है, तथापि आप अपने जी को तसल्ली देते हैं कि किसी प्रजा से आप नहीं डरते।"

प्रतापादित्य—"श्राद्धादि कार्य्य समाप्त हो जाने पर लोगों को साथ लेकर एकबार रायगढ़ जाना होगा। मेरे सिवा उस जगह के सिंहासन का उत्तराधिकारी और तो कोई नहीं दिखाई देता।"

इतने में वृद्ध वसन्तराय ने धीरे धीरे घर में प्रवेश किया। प्रतापादित्य चौंक कर पीछे हट गये। एकाएक उनके मन में हुआ कि शायद यह भूत बन कर यहाँ आया है। वे चुप हो रहे। एक बात भी न बोल सके। वसन्तराय ने प्रतापादित्य के पास जाकर, उनकी देह पर हाथ फेर कर, कोमल स्वर से कहा—"प्रताप, मेरा डर कैसा ? मैं तुम्हारा चचा वही वसन्तराय हूँ।"

उस पर भी यदि तुम्हें मेरा विश्वास न हो तो मैं वृद्ध हूँ, मैं तुम्हारी बुराई कर सकूँ ऐसा सामर्थ्य मुझमें नहीं।"

प्रतापादित्य को चेत हो आया। किन्तु कोई बात बना कर बोलने में वे बड़े ही अपटु थे। कुछ उत्तर न देकर चुप हो रहे। उनसे चचा को प्रणाम तक करते न बना। वसन्तराय ने फिर धीरे धीरे कहा—"प्रताप, कुछ भी तो बोलो, यदि दैववशात् ऐसा कोई काम तुमसे हो गया जिससे मुझे देख कर तुम्हें लज्जा और ग्लानि होती है तो उसके लिए चिन्ता न करो, मैं इन सब बातों का कभी ज़िक्र न करूँगा। आओ, एक बार तुम्हें गले से लगाऊँ। आज कितने दिनों में तुम्हें देखा है। तुम्हारे देखने के लिए मैं अब ज़्यादा दिनों तक थोड़े ही बैठा रहूँगा।"

इतनी देर के बाद प्रतापादित्य ने प्रणाम किया, और उठ कर चचा के साथ उचित व्यवहार किया। इस अरसे

में मन्त्री धीरे धीरे कमरे से बाहर हो गये। वसन्तराय मुस-कुरा कर और प्रतापादित्य के बदन पर हाथ रख कर बोले—"प्रताप, वसन्तराय बहुत दिन जी गया। समय हो गया है। अब भी मेरी बुलाहट क्यों नहीं आती इसे दैव जाने। किन्तु अब अधिक विलम्ब नहीं है।"

वसन्तराय कुछ देर चुप रहे। प्रतापादित्य ने उनके प्रश्न का कुछ उत्तर न दिया।

वसन्तराय ने फिर कहा—"सुनो प्रताप, मैं सब बात तुम से ख़ुलासा कहता हूँ। तुम जो मेरी हत्या करना चाहते हो, यह बात मेरे हृदय में दुःसह यन्त्रणा दे रही है। (यह कहते कहते उनकी आँखों में आँसू भर आये) तो भी मैं तुमसे ज़रा भी द्वेष भाव नहीं रखता। मैं तुमसे सिर्फ़ दो बातें कहने आया हूँ। एक तो यह कि तुम मेरी हत्या का पाप अपने ऊपर न लो। इसमें तुम्हारा लोक परलोक दोनों बिगड़ेंगे। दूसरे, यदि तुमने इतने दिन मेरी मृत्यु की प्रतीक्षा की तो कुछ दिन और करो। थोड़े दिन की बात है, इसके लिए क्यों अपना परलोक बिगाड़ते हो।"

इस पर भी प्रतापादित्य कुछ न बोले। वसन्तराय ने जब देखा कि प्रतापादित्य कुछ उत्तर नहीं देते, न अपने दोष को स्वीकार ही करते और पश्चात्ताप का भाव उनके चेहरे से कुछ लक्षित होता है तब उन्होंने प्रस्तुत बात को छोड़ कर दूसरी बात चलाई। उन्होंने कहा—"प्रताप, एक बार रायगढ़ चलो। तुम बहुत दिनों से रायगढ़ नहीं गये हो। अब वहाँ पहले से बहुत कुछ परिवर्तन हुआ है। सैनिकों ने तलवार छोड़ कर

अब हाथ में कुदाल ली है। जहाँ सेनाओं के रहने का घर था, वहाँ अब अतिथिशाला बनी है।"

इसी समय प्रतापादित्य ने दूर से देखा कि पठान भागने का उपक्रम कर रहा है। यह देख कर अब वे स्थिर न रह सके। उनके हृदय में जो देर से क्रोधाग्नि सुलग रही थी, वह एक बार ही प्रज्वलित हो उठी। उन्होंने वज्रस्वर से पहरेदार को पुकार कर कहा—"ख़बरदार, देखो, वह पठान भागने न पावे। उसे पकड़ रक्खो।" यह कह कर वे बड़ी फुर्ती से कमरे के बाहर आये। उन्होंने मन्त्री को बुला कर कहा—"राज-काज में तुम्हारी बड़ी ही लापरवाही देख रहा हूँ।"

मन्त्री ने धीरे से कहा—"महाराज, इस विषय में मेरा कोई क़सूर नहीं।"

प्रतापादित्य उच्च स्वर से बोले—"मैं किसी विषय का निर्धारण थोड़ा ही कर रहा हूँ। मैं कह रहा हूँ, राज-काज में तुम्हारी बड़ी ही लापरवाही देख रहा हूँ। मैंने उस दिन तुम्हें एक चिट्ठी रखने के लिए दी। तुमने उसे खो डाला।"

डेढ़ महीना पहले इस तरह की एक घटना और हुई थी किन्तु उस समय महाराज ने मन्त्री से उस चिट्ठी के लिए कुछ न कहा था।

"और एक दिन मैंने उमेशराय के पास तुमको जाने की आज्ञा दी थी; तुमने किसी दूसरे को भेज कर काम निकाल लिया। चुप रहो! दोष छिपाने के लिए झूठ मूठ बात बनाने की चेष्टा न करो। जो हो, मैंने तुमको सावधान कर दिया है। राज-काज में तुम्हारा ज़रा भी जी नहीं लगता।"

राजा ने पहरेदारों को बुलाया। गत रात्रि में उन लोगों का वेतन काट लिया गया था। इस समय उन लोगों को क़ैदख़ाने में जाने का हुक्म हुआ।

प्रतापादित्य ने अन्दर महल में रानी से जाकर कहा—"मैं अपने घर में बड़ा ही गोलमाल देख रहा हूँ। उदयादित्य तो पहले ऐसा नहीं था। अब तो वह अपनी इच्छा से जब चाहता है बाहर निकल जाता है; प्रजाओं का पक्ष लेता है; मेरे विरुद्ध काम करता है। इन सब बातों का क्या कारण है?"

रानी ने डर कर कहा—"महाराज, उसका कोई क़सूर नहीं! इन सब अनर्थों की जड़ यही बड़ी बहू है। मेरा बच्चा तो पहले ऐसा नहीं था। जिस दिन से श्रीपुर के घर में उस का व्याह हुआ उसी दिन से उदय कुछ और ही तरह का हो गया। कुछ समझ में नहीं आता।"

महाराज सुरमा को कड़ाई के साथ रखने की आज्ञा देकर बाहर गये। महारानी ने उदयादित्य को बुला भेजा। उदयादित्य के आने पर उनके मुँह की ओर देख कर बोली—"अहा, बच्चा मेरा कैसा दुबला काला हो गया है। व्याह के पहले मेरे बच्चे की रङ्गत कैसी थी! मानो तपाये सोने की तरह लाल थी। हा, किसने तुम्हारी ऐसी दशा की! बच्चा, बड़ी बहू तुम को जो कहे उस पर कान न दो! उसी की बात में पड़ कर तुम्हारी ऐसी दशा हुई है।"

सुरमा घूँघट डाले कुछ क़रीब ही चुपचाप खड़ी थी। रानी कहने लगी—"उसका छोटे कुल में जन्म है, वह क्या तेरे लायक़ है? वह तुझे अच्छी सलाह देने क्या जानने लगी। मैं सच कह रही हूँ वह तुझे कभी कच्छी सलाह नहीं देती होगी।

तेरी ख़राबी होने ही में वह सुख मानती है। हाय! महाराज ने ऐसी राक्षसी के साथ तुझे क्यों ब्याह दिया?" यह कह रानी ने आँसू बरसाना शुरू किया।

उदयादित्य के ऊँचे ललाट पर पसीने की बूँदें दिखाई देने लगीं। उनके मन की अधीरता कहीं प्रकट न हो, इसलिए उन्हों ने अपने विशाल नेत्रों को दूसरी ओर फेर लिया।

वहाँ एक पुरानी बुड्ढी नौकरानी बैठी थी। वह हाथ चमका चमका कहने लगी—"श्रीपुर की औरतें जादू जानती हैं। उन्हों ने ज़रूर बच्चे पर कुछ टोना किया है।" यह कह कर उदयादित्य के पास जाकर बोली—"बाबू, उसने तुम पर कुछ टोना किया है। इस लड़की को जो देख रहे हो, यह कुछ साधारण लड़कियों में नहीं है। श्रीपुर के घर की लड़की है। वे सब डायनें हैं। हाय, हाय, बच्चे की देह में कुछ न रहने दिया!" यह कह कर उसने सुरमा की ओर तीर की तरह एक कटाक्ष-पात किया और आँचल हाथों में लेकर दोनों सूखी आँखों को रगड़ते रगड़ते लाल कर डाला। यह देख कर महारानी का दुःख फिर एकबारगी उबल पड़ा। रनवास में जितनी वृद्धायें थीं क्रमशः सभी ने रोना आरम्भ कर दिया। रोने के मतलब से रानी के घर में आकर सब इकट्ठी हुईं। उदयादित्य ने कारुण्य की दृष्टि से सुरमा के मुँह की ओर देखा। सुरमा ने घूँघट के बीच से उसे देखा और वह आँखें पोंछ कर और कुछ न बोल कर धीरे धीरे अपने महल में चली गई।

सन्ध्या-समय रानी ने प्रतापादित्य से कहा—"आज मैंने उदय को सब बातें समझा कर कह दी हैं। मेरा बच्चा वैसा नहीं है। समझाने से समझ जाता है। आज उसकी आँखें खुली हैं।"

---

# छठा परिच्छेद ।

विभा का मुँह उदास देख कर सुरमा को बड़ा दुःख हुआ। उसने विभा को गले लगा कर कहा—"मेरी प्यारी विभा, आज तुम इतनी उदास क्यों हो ? तुम्हारे मन में जो दुःख होता है, वह तुम मुझसे क्यों नहीं कहती ?"

विभा ने धीरे धीरे कहा—"मेरे मन में जो दुःख होता है, वह क्या तुम नहीं जानतीं ?"

सुरमा—"तुमने बहुत दिनों से उन्हें ( पति को ) नहीं देखा है, तुम्हारा मन उदास क्यों कर न होगा ? तुम उनको आने के लिए एक चिट्ठी लिखो न ? मैं तुम्हारे भाई के द्वारा उस चिट्ठी को चुपचाप भेज देने का प्रबन्ध कर दूँगी।"

पाठक समझ ही गये होंगे कि विभा के स्वामी, चन्द्रद्वीप के राजा, रामचन्द्रराय, के सम्बन्ध में यह बात हो रही है।

विभा सिर नीचा करके कहने लगी—"यदि यहाँ उनका कोई आदर-सत्कार न करे, यदि उन्हें कोई बुलाना आवश्यक न समझे, तो उनका यहाँ न आना ही अच्छा है। यदि वे आप ही यहाँ आना चाहेंगे तो मैं उन्हें आने से रोक दूँगी। वे भी तो एक देश के राजा हैं। जहाँ उनका उचित आदर न होगा, वहाँ वे क्यों आवेंगे ? हम लोगों की अपेक्षा वे किस अंश में न्यून हैं, जो मेरे पिता उनका अपमान करेंगे।" यों कहते कहते विभा

का गला रुक गया। उसका मुँह मारे ग्लानि और क्रोध के लाल हो गया। उसकी आँखों से आँसू टपक पड़े। सुरमा ने विभा को अपनी छाती से लगा कर और उसकी आँखों के आँसू पोंछ कर कहा—"अच्छा, एक बात तुमसे पूँछती हूँ। अगर तू पुरुष होता तो क्या करती? निमन्त्रण-पत्र न पाने से क्या तुम कभी ससुराल न जाती?"

विभा—"नहीं, कभी नहीं जाती। यदि मैं पुरुष होती तो ऐसी ससुराल का स्वप्न में भी नाम न लेती। तुम्ही कहो, यदि उन्हें कोई आदरपूर्वक न बुलावेगा तो वे क्यों आवेंगे।"

विभा इस तरह अपने मन की बात खोल कर कभी नहीं बोलती थी, आज आवेग में आकर वह बहुत कुछ बोल गई। इतनी देर पीछे उसे अपने अनर्गल भाषण पर ध्यान गया। वह मन ही मन सोचने लगी, आज मैंने अपनी लाज को धो बहाया। न जाने आज मैंने क्या क्या बक डाला। मैं आज सङ्कोच की सीमा से बाहर हो गई। मुझे यह सब बोलना उचित न था।" क्रमशः उसके मन में ग्लानि और विषाद बढ़ने लगा। वह बाँह से अपने मुँह को छिपा कर सुरमा की गोद में सिर रख कर सो रही। सुरमा सिर झुका कर अपने कोमल हाथों से उसकी घनी चिकनी चिकुरराशि को सुरझाने लगी। कुछ समय यों ही बीत गया। दोनों में कोई कुछ नहीं बोलती। विभा की आँखों से आँसू टपक रहे हैं। सुरमा धीरे धीरे पोंछ रही है।

समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। उसको किसी के सुख-दुःख से कोई सम्बन्ध नहीं। देखते ही देखते साँझ हो गई। विभा धीरे धीरे उठ बैठी और आँखों के आँसू पोंछ

कर ज़रा हँसी । उस हँसी का अर्थ यही कि—"आज मैंने क्या ही लड़कपन किया है !" वह धीरे से मुँह फेर कर और हट कर भाग जाने का उद्योग करने लगी । सुरमा कुछ न कह कर उसका हाथ पकड़े रही । पहले की कोई बात न छेड़ कर सुरमा ने कहा—"विभा सुना है, दादाजी आये हैं ?"

विभा—"क्या दादाजी आये हैं ?"

सुरमा—"हाँ"

विभा ने बड़े आग्रह से पूछा—"कब आये ?"

सुरमा—"शायद आज सवेरे ।"

विभा—"अब तक भी वे हम लोगों को देखने न आये ?"

विभा के मन में कुछ ग्लानि हो आई । दादाजी की मिलनसारी के विषय में विभा बड़ी ही सावधान रहा करती है । इसका कारण यह कि, एक दिन वसन्तराय ने उदयादित्य के साथ बड़ी देर तक बातचीत करके विभा को तीन घड़ी तक भेंट के इन्तज़ार में रक्खा था । वे उसके साथ भेंट करने नहीं गये, इससे विभा के मन में ऐसा दुःख हुआ कि यद्यपि उस विषय में वह कुछ बोलती नहीं है तथापि प्रसन्न मुख से दादाजी के साथ बात नहीं करती है ।"

वसन्तराय ने घर में प्रवेश करने के साथ हँसते हँसते गाना आरम्भ किया ।

विभा गान सुन कर सिर नीचा करके हँसी । विभा को बड़ा ही हर्ष हुआ । इतना हर्ष हुआ कि उसका सँभालना कठिन हो पड़ा ।

सुरमा ने विभा का मुँह ऊपर उठा कर कहा—"दादाजी, विभा की हँसी देखने के लिए तो अब ओट में नहीं न जाना पड़ा ?"

वसन्तराय—"नहीं। विभा ने सोचा है एकदम बहुत न हँसने से यदि बुड्ढा न जाय तो कुछ ज़्यादा ही हँसूँ। उस डाकनी का मतलब मैं ख़ूब समझता हूँ। मेरे भगाने का यह उसका कपट कौशल है। किन्तु मैं जलदी टलने वाला नहीं। जब मैं आया हूँ तब भली भाँति उसे दग्ध करके ही जाऊँगा, फिर जितने दिन भेंट न होगी याद रहेगा।"

सुरमा ने हँस कर कहा—"यह देखिए दादाजी, विभा ने मेरे कान में कहा है कि यदि याद कराने ही का मतलब है तो जो इतने दिन दग्ध कर चुके हैं, याद रखने के लिए वही काफ़ी है। बार बार जलाने की क्या ज़रूरत ?"

यह बात सुन कर वसन्तराय को बड़ा ही विनोद हुआ। वे हँसने लगे।

विभा एकाएक बोल उठी, नहीं, मैंने कुछ नहीं कहा है। भाभी ने अपनी ओर से झूँठ बात बना कर कही है।"

सुरमा—"दादाजी, आपकी अभिलाषा तो पूरी हुई न ? आपने विभा की हँसी देखना चाहा सो देखा, मधुर वचन सुनने की लालसा थी वह भी सुना। अब देशान्तरगमन कीजिए।"

वसन्तराय—"नहीं, मैं अब न जाऊँगा। मेरे सिर में जितने पके बाल हैं, वे एक एक कर विभा से चुनवाऊँगा और जितने नये गीत मुझे याद हैं सब विभा को पहले सुना कर तब जाऊँगा।"

विभा चुप न रह सकी, वह हँस कर बोली—"दादा जी, तुम्हारे आधे सिर में तो बाल ही नहीं हैं।"

दादाजी का मनोरथ सफल हुआ। बहुत दिनों के बाद विभा से भेंट होने पर हज़ार बार पूँछने से भी कदाचित् विभा न बोलती थी। उसका यह एक विचित्र स्वभाव था, फिर जहाँ उसका एक बार मुँह खुला, तहाँ बुलाने की अपेक्षा उसका मुँह बन्द करने ही में अनेक प्रयत्न करने पड़ते थे। विशेष कर विभा का यह स्वभाव दादाजी के निकट पूर्णरूप से चरितार्थ होता था। वसन्तराय कहाँ तो पहले विभा की बोली सुनने ही के लिए लालायित थे, और कहाँ अब उसके प्रश्नों का उत्तर तक देने में ये हिचकते हैं। यह केवल वृद्धत्व का धर्म नहीं तो क्या है?

वसन्तराय अपने केशशून्य चिकने माथे पर हाथ फेर कर बोले—"वह ज़माना अब न रहा। जिस दिन वसन्तराय का माथा केशों से भरा था उस दिन इतना लंबा रास्ता पार करके तुम लोगों की ख़ुशामद करने की क्या ज़रूरत थी? तब तो एक बाल के पकने पर तुम्हारी ऐसी पाँच कामिनियाँ बाल चुनने के लिए उत्सुक होतीं थीं और चित्त की व्यग्रता से दस कच्चे बाल पके के भ्रम से उखाड़ डालती थीं।

विभा ने गम्भीरता से पूँछा—"अच्छा, दादाजी, जब तुम्हारे माथे पर ख़ूब बाल थे तब क्या तुम अब से देखने में अच्छे थे?"

इस विषय में विभा के मन में भारी सन्देह था।

वसन्तराय ने कहा—"इस विषय में अनेक मतभेद है। मेरी नतनी* और पोती मेरा गंजा सिर देख कर ही मोहित

* वङ्गदेश में नतनी और नानी से परिहास करने का व्यवहार है। अनुवादक

होती है । क्योंकि उन्हें मेरे काले बालों के दर्शन होने का अव-सर नहीं मिलता । मेरी नानी मेरे भौंरे से काले बाल देख कर मुग्ध होती हैं । उन्हें मेरा गंजा सिर देखना नसीब नहीं होता । जिन्होंने मेरे मस्तक की केशराशि की दोनों अवस्थायें देखी हैं, वे अब भी निर्णय नहीं कर सकते कि उन दोनों में कौन उत्तम है ।"

विभा मुसकुरा कर बोली—"आप जो कहिए, पर आप के जितने बाल अभी उड़ चुके हैं, उससे अधिक उड़ने पर आपका चेहरा ऐसा सुन्दर न रहेगा ।"

सुरमा—"दादाजी, श्वेत-कृष्ण की आलोचना पीछे होगी, पहले विभा का तो कोई उपाय कर दीजिए।"

विभा झट वसन्तराय के पास जाकर बैठी और बोली—"दादाजी, मैं आपके पके बालों को अभी चुन देती हूँ ।"

सुरमा—"मैं अभी कुछ कहने भी न पाया, तुम बीच ही में क्यों बाधक बन बैठीं ?"

विभा सुरमा की बात पर ध्यान न देकर वसन्तराय से कहने लगी—"सुनो दादाजी, तुम्हारा—"

सुरमा—"विभा, तुम मुझको कुछ कहने दोगी या नहीं, मैं इनसे क्या कह रही हूँ और तुम इनके पास जाकर——"

विभा—"सुनो दादाजी, तुम्हारे सिर में पके बालों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । इनको चुन डालने से तो सारा मस्तक करतल सा चिकना हो जायगा ।"

वसन्तराय—"विभा, यदि तू मुझे सुरमा की बात सुनने न देगी, यदि तू मुझे अपनी बातों में उलझा कर रिसवावेगी तो मैं अभी हिंडोल राग गाना आरम्भ कर दूँगा ।" यह कह कर उन्होंने सितार की सुन्दरी पर हाथ फेरना शुरू किया । विभा को हिंडोल राग से बड़ी चिढ़ थी ।

विभा—"हिंडोल राग गाओगे तो मैं अभी यहाँ से भाग जाऊँगी—यह कह कर वह वहाँ से बाहर चली गई ।"

विभा के चले जाने पर सुरमा ने कहा—"विभा मन ही मन चुपचाप जो कष्ट सहती है, उसे जान कर महाराज के हृदय में भी दया उपज आवेगी ।"

वसन्तराय—"अयँ, विभा को क्या कष्ट है ? यह पूछते हुए वसन्तराय बड़ी फुर्ती से उठ कर सुरमा के पास जा बैठे ।"

सुरमा—"वर्ष के भीतर दुलहाजी को एक बार भी बुलाना किसी को उचित नहीं जान पड़ता ।"

वसन्तराय—"तुम ठीक कहती हो ।"

सुरमा—"आप ही कहिए, इस प्रकार स्वामी का अपमान कौन स्त्री सह सकती है ? विभा बड़ी सुशीला है । इस कारण वह किसी से कुछ नहीं कहती । पर वह दिन रात सोच के मारे मरी जाती है और चुपचाप रोती है ।"

वसन्तराय—"अहा, वह सोच से मरी जाती है । चुपचाप रोती है ।"

सुरमा—"आज मेरे पास बैठ कर कितना रोती थी ।"

वसन्तराय—"ओफ़ ! विभा आज तुम्हारे पास बैठ कर रोती थी ?"

सुरमा—"हाँ।"

वसंन्तराय ने कहा—"अहा, उसे एक बार यहाँ बुला लाओ, मैं उसे देखूँगा।"

सुरमा विभा को पकड़ कर लाई। वसन्तराय ने विभा का हाथ पकड़ कर पूछा—"तू क्यों रोती है? तुझे जब जो तकलीफ़ हो वह मुझसे क्यों नहीं कहती? मैं उस दुःख के निवारण की यथासाध्य चेष्टा करूँगा। मैं अभी जाता हूँ; प्रताप से कह आता हूँ।"

विभा बोली—"दादाजी, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। मेरे विषय में पिताजी से कुछ न कहो। दादाजी, मैं पाँव पकड़ती हूँ। मत जाओ।"

वह कहती ही रह गई। वसन्तराय घर से बाहर हो गये। उन्होंने प्रतापादित्य से जाकर कहा—"तुमने अपने जामाता को बहुत दिनों से नहीं बुलाया है। इससे उनका बड़ा ही अपमान होता है। यशोहराधीश के जामाता को जितना सम्मान होना चाहिए उतना न हो तो इसमें तुम्हारी ही अप्रतिष्ठा है। इसमें कुछ बड़प्पन नहीं है।"

प्रतापादित्य ने उनकी बात में कुछ काट छाँट न की। आदमी के द्वारा पत्र चन्द्रद्वीप भेजने का हुक्म हुआ। वसन्त-राय अन्दर गये। उन्होंने विभा और सुरमा के पास पहुँच कर सितार बजाने की धूम मचा दी।

विभा ने लजा कर कहा—"दादाजी, क्या पिता के पास मेरी सब बातें कह डालीं?" वसन्तराय कुछ उत्तर न देकर गीत गाने लगे।

विभा ने सितार के तारों पर हाथ रख सितार की आवाज़ को बन्द करके फिर कहा—"क्या पिता के निकट मेरी बातें कह डालीं ?"

इसी समय उदायादित्य का छोटा भाई समरादित्य जो आठ वर्ष का था, घर में प्रवेश करके बोल उठा—"हाँ बहन ! दादाजी के साथ ख़ूब बात कर रही हो ! मैं जाकर माँ से कहो आता हूँ ।"

"आओ, आओ, भैया आओ." कह कर वसन्तराय ने उसे पकड़ लिया ।

राजसम्बन्धियों की यही धारणा थी कि वसन्तराय और सुरमा यही दोनों उदयादित्य को बहकाते हैं। इस कारण वसन्तराय के आते ही राजधानी के सब लोग सावधान हो जाते थे ।

समरादित्य ने वसन्तराय का हाथ छुड़ाने की बड़ी बड़ी चेष्टा की। वसन्तराय उसको सितार देकर, उसे कन्धे पर चढ़ा कर और चश्मा पहना कर कुछ ही देर में उसे ऐसा वश में कर लिया कि वह सारे दिन उनके पीछे पीछे घूमने लगा। समरादित्य ने उनका सितार बजा कर पाँच तार तोड़ डाले और उनकी उँगली से मेजराव निकाल कर ले लिया ।

——:*:——

# सातवाँ परिच्छेद ।

चन्द्रद्वीप के राजा रामचन्द्रराय अपने सजे हुए कमरे में बैठे हैं । कमरा अष्टकोण है । कपड़े से लपेटे हुए कितने ही झाड़ कड़ियों में लटक रहे हैं । ताखों पर गणेश की मूर्ति और श्रीकृष्ण की अनेक अवस्थाओं की अनेक मूर्तियाँ धरी हैं । ये सब मूर्तियाँ प्रसिद्ध चित्रकार वटकृष्ण कुम्हार के हाथ की बनी हुई हैं । नीचे फ़र्श बिछा है । उसके बीच में ज़रीदारी गद्दी बिछी है । उस पर मसनद के सहारे राजा रामचन्द्रराय बैठे हैं । मसनद के दोनों ओर दो तकिये धरे हैं । उन तकियों पर झालरें लगी हैं । कमरे की दीवालों में आमने सामने देशी आइने लटक रहे हैं । वे इतने ऊपर टँगे हैं कि उनमें मुँह देखने का सुभीता नहीं । फ़र्श के ऊपर दीवाल से भिड़े हुए जो बड़े बड़े आइने धरे हैं । उनमें शरीर का आकार बहुत बड़ा और चमकता हुआ सा दीख पड़ता है । राजा की बाँई ओर एक बहुत बड़ा नैचा और गुड़गुड़ी धरी है । उसके पास ही दीवान हरिशङ्कर बैठे हैं । राजा की दहनी ओर रमाई विदूषक और चश्मा लगाये सेना-पति फर्नान्डिज़ बैठे हैं ।

राजा ने कहा—"रमाई !"

रमाई—"( मुँह बना कर ) जी हुजूर ।"

रमाई का विकृत मुँह देख कर राजा हँसते हँसते लोट गये । मन्त्री राजा की अपेक्षा भी अधिक हँसे ।

फर्नान्डिज़ हाथों से ताली बजा कर मुसकुराने लगे। यह देख कर रमाई की छोटी छोटी आँखें मारे .खुशी के टिम-टिमाने लगीं।

राजा यह सोच कर हँसते हैं कि रमाई की बात में न हँसने से रसिकता में बट्टा लगेगा। मन्त्री यह सोच कर कि राजा के हँसने पर हँसना ही चाहिए, खूब ज़ोर से हँसते हैं। फर्नान्डिज़ हँसी का कारण कुछ नहीं जानता, पर वह समझता है सबब कुछ ज़रूर होगा, इसी से ताली बजाकर चुप रह जाता है। दरबार में ऐसा कोई आदमी नहीं जो रमाई की बात से न हँसे। जो न हँसता था, उसे वह बातों से रुला छोड़ता था। रमाई के पुराने गप्प सुन कर लोग मन से थोड़े ही हँसते थे। सभी लोग राजा के भय से और रमाई के परिहास के डर से कृत्रिम हँसी हँसते थे। पहरेदार तक हँसने से बाज़ न आते थे।

रमाई ने सोचा, यहाँ कुछ मसख़रापन करना चाहिए। उसने मुँह बना कर कहा—"सरकार, सुना है कि सेनापति महाशय के घर में चोर पैठा था।"

सेनापति यह सोच कर घबरा उठे कि रमाई कोई पुरानी गप्प छेड़ कर उनकी हँसी न उड़ावे। वे रमाई के परिहास से जितना ही डरते हैं उतना ही रमाई उनको भरे दरबार में बनाता है।

रमाई कैसी ही अश्लील से अश्लील बात क्यों न बोले, उसकी बात सुन कर राजा को बेहद .खुशी होती है। रमाई के आते ही राजा रामचन्द्रराय फर्नान्डिज़ को बुला भेजते थे। राजा के जीवन में आनन्द की प्रधान वस्तु यही दो थीं, एक

भेड़ों की लड़ाई और दूसरी रमाई के सामने फर्नान्डिज़ को बैठा कर मसख़रेपन की बातें सुनना। राजा के यहाँ सेनापति के बदन में तीर तलवार लगने की तो आशङ्का ही न थी। वे बेचारे लगातार हँसी के गोले खा कर ही बेचैन रहा करते थे।

पाठकगण क्षमा करें, हम रमाई की रसिकता की सभी बातों का उल्लेख नहीं कर सकता, क्योंकि उत्कट रसिकता में कई बातें अश्लील जान कर हठात् छोड़नी पड़ीं।

राजा ने आँखें मूँद कर रमाई से पूछा—"हाँ, उसके बाद।"

रमाई—"हुज़ूर अर्ज़ करता हूँ। (फर्नान्डिज़ कोट पहनने लगे) तीन चार दिन से सेनापति के घर में चोर रात को बराबर आमदरफ़ कर रहा था। साहब की गृहिणी ने साहब को जगाने की कितनी ही चेष्टायें कीं, पर उनकी नींद न टूटी, उन्होंने सोने में कुम्भकर्ण को भी जीत लिया।

राजा और मन्त्री हँसते हँसते लोट पोट हो गये। उन दोनों को हँसते देख सेनापति भी कृत्रिम हँसी हँसे। जब सेनापति अपनी स्त्री का ताना नहीं सह सके, तब उन्होंने हाथ जोड़ कर कहा—"क्षमा करो, मैं आज रात में ज़रूर चोर पकड़ूँगा।" दो घड़ी रात बीतने पर चोर उनके घर आ पहुँचा। सेनापति की गृहणी ने कहा—"देखो, देखो, वह चोर आया।" सेनापति ने कहा—"अभी चोर? घर में चिराग़ जल रहा है, चोर हम लोगों को देख कर आप ही भाग जायगा।" उन्होंने चोर को पुकार कर कहा—"आज तुम्हें न पकड़ूँगा। चिराग़ की रौशनी से सारा घर उजेला है। आज तुम बेखटके

भाग जाओगे । कल तुम आओ तो तुम्हारी हिम्मत देखूँ ? देखें, कल अँधेरे में तुम कैसे भाग जाओगे ?"

राजा ने ख़ूब ज़ोर से हँस कर कहा—"उसके बाद ।"

रमाई ने देखा—"राजा को अभी इन बातों से तृप्ति नहीं हुई है । वह फिर कहने लगा—"न मालूम चोर को किस कारण अधिक भय न हुआ । वह दूसरे दिन फिर रात में उनके घर आया । स्त्री ने सेनापति को जगाया । "उठो, उठो, सर्वनाश हुआ ।"

सेनापति ने कहा—"तुम क्यों नहीं उठतीं ?"

स्त्री—"मैं उठ कर क्या करूँगी ?"

साहब—"चिराग़ जलाओ । अँधेरे में कुछ दिखाई नहीं देता । साहब की बात से उसकी स्त्री बहुत नाराज़ हुई । वे उससे और अधिक क्रुद्ध हो बोले—"तुम्हारे ही कारण सर्वनाश हुआ । जब तुम चोर के आने की बात जानती ही थी तो पहले ही से तुमने रोशनी का प्रबन्ध क्यों नहीं कर रक्खा । जल्द चिराग़ जलाओ और बन्दूक़ लाओ ।" इतने में चोर ने अपना काम पूरा करके कुछ दूर हट कर कहा—"साहब, एक चिलम तम्बाकू मेहरबानी करके दीजिए । बड़ी मेहनत का काम किया है । साहब ने ख़ूब ज़ोर से डपट कर कहा—"ठहरो साले, मैं तुम्हें तम्बाकू पिलाता हूँ । ख़बरदार, मेरे पास आओगे तो इसी बन्दूक़ से तुम्हारा सिर उड़ा दूँगा ।" तम्बाकू पीकर चोर ने कहा—"घर में रोशनी कर देते तो विशेष उपकार होता । सेन्ध काट कर किधर से आया हूँ उस का पता नहीं लगता ।" सेनापति ने कहा—"साले डर गये । वहीं खड़े रहो, पास मत आओ ।" यह कह कर साहब ने झट

पट दिया जला दिया। चोर बड़े मज़े में सब चीज़ें लेकर चला गया। साहब ने घरवालों से कहा—"साले को आज ख़ूब ही छकाया है। साला एक दम ही डर कर भाग गया।"

राजा और मन्त्री हँसी न सँभाल सके। हँसते हँसते बेदम हो गये। फर्नान्डिज़ ठहर ठहर कर बीच बीच में "हीः हीः" करके टूटी हँसी हँसने लगे।

राजा ने कहा—"रमाई, तुमने सुना है न? मैं ससुराल जानेवाला हूँ।"

रमाई ने मुँह बना कर कहा—"असारं खलु संसारं सारं श्वशुरमन्दिरम्।" (हँसी। पहले राजा, तब मन्त्री, ततः पर सेनापति) (लंबी निसाँस फेंक कर) ससुर के मन्दिर में सभी सार—"भोजन, शयन, सम्मान, सभी सार पदार्थ। असार केवल एक स्त्री।"

राजा ने हँस कर कहा—"क्या तुम्हारी अर्धाङ्गिनी तुमसे राज़ी नहीं रहती?"

रमाई ने हाथ जोड़ कर कहा—"महाराज, उसे अर्धाङ्गिनी न कहें। तीन जन्म तपस्या करने पर भी शायद मैं उसके अर्धाङ्ग के बराबर न हो सकूँगा। मेरे सदृश पाँच व्यक्ति एकत्र होने पर भी उसके अर्धाङ्ग की समता न कर सकेंगे।" रमाई की बात सुन कर दरबार के सभी लोग हँस उठे। रमाई की बात का मर्म सब सहज ही में समझ गये। सिर्फ़ मन्त्री की समझ में न आया। इसीसे वे और लोगों की अपेक्षा अधिक हँसे।

राजा ने कहा—"मैंने सुना है, तुम्हारी ब्राह्मणी बड़ी ही सुशीला और गृहकृत्य में चतुरा है।"

रमाई—"मैं इस विषय में क्या अर्ज़ करूँ। मेरे घर में एक से एक बढ़ कर है। मैं क्षण भर भी घर में ठहरने नहीं पाता। तड़के ही ब्राह्मणी ऐसी फटकार बताती कि भागने का रास्ता नहीं सूझता। जब महाराज की ड्योढ़ी पर आता हूँ तब कहीं जी ठिकाने आता है।"

इस जगह प्रसंगवश रमाई की स्त्री का कुछ परिचय पाठकों से कह देना अनुचित न होगा। रमाई की स्त्री बहुत ही दुबली पतली थी। उसका शरीर दिनों दिन खिन्न होता ही जाता था। रमाई घर आ कर किसके पास बैठ कर अपने सुख दुःख की बात बोले—यह उसकी बुद्धि में न आता था। रमाई राजसभा में आकर भिन्न ही प्रकार के भाव से दाँत दिखाता है, और घरनी के पास आकर एक और ही प्रकार के भाव से दाँत पीस कर खड़ा होता है। किन्तु उसकी घरवाली का असली स्वभाव वर्णन करने से हास्यरस की जगह करुणरस प्रकट होगा। इसी से रमाई राजसभा में अपनी स्त्री को स्थूलाङ्गिनी और उग्रस्वभावा कह कर वर्णन करता है।

हास्य-लीला समाप्त होने पर राजा ने रमाई से कहा—"तुमको मेरे साथ चलना होगा। सेनापति को भी मैं अपने साथ ले चलूँगा।"

सेनापति चौंक उठे। उन्होंने समझा, रमाई यह इशारा पाकर फिर उन पर वाक्य-बाण छोड़ेगा। वे चश्मा उतार कर फिर उसे पहनने और कोट के बटन देखने लगे।"

रमाई—"सेनापति को जलसे की जगह जाने में कोई आपत्ति न होगी, क्योंकि वह लड़ाई का मैदान तो है नहीं।"

राजा ने यह सोच कर कि बात बड़े मज़े की निकली है। आग्रह के साथ रमाई से पूँछा—"क्यों ? सेनापति जलसे की जगह में जाना पसन्द करेंगे ?"

रमाई—"साहब की आँखों में दिन रात चश्मा लगा रहता है । सोते समय भी चश्मा उनकी आँखों पर चढ़ा ही रहता है । यदि चश्मा उनकी आँखों पर न रहे तो उन्हें अच्छा अच्छा सपना देखने में नहीं आता । सेनापति साहब को लड़ाई में भी जाने में कोई बाधा नहीं । भय उन्हें केवल इसी बात का बना रहता है कि काँच का चश्मा गोली लग कर कहीं फूठ न जाय । कहिए साहब, यही बात है न ?"

सेनापति ने सिटपिटा कर कहा—"हाँ, यही बात है ।"

सेनापति उठ कर खड़े हुए । उन्होंने महाराज से निवेदन किया—"हुक्म हो तो मैं घर जाऊँ ।"

राजा—"आपको हमारे साथ यशोहर चलना होगा । जल्द तैयार होकर आइए ।"

हमारी यात्रा का सब सामान ठीक करें । हमारे लिए चौसठ पतवार वाली नाव तैयार रहे ।

मन्त्री और सेनापति चले गये ।

राजा ने कहा—"रमाई, तुमने तो सब सुना ही होगा । उस मरतबा ससुराल में उन लोगों ने मुझे ख़ूब ही बनाया था ।"

रमाई—"जी हाँ, सुन चुका हूँ । महाराज के पीछे दुम लटका दी थी ।"

वह सुन कर राजा हँसे । उनकी दन्त-पंक्ति की शोभा बिजली की तरह चमक उठी सही, पर उनके मन में भारी चिन्ता छा गई । यह ख़बर रमाई को ज़ाहिर हो गई है यह जान कर उन्हें विशेष प्रसन्नता न हुई । और किसी के पास इस ख़बर के ज़ाहिर होने में उतनी हानि न थी ।" वे चुप चाप गुड़गुड़ी गुड़गुड़ाने लगे ।

रमाई ने कहा—"आपके एक साले ने मुझसे आकर कहा था कि कौतुकागार ( कोहबड़ ) में तुम्हारे राजा के एक लंबी पूँछ निकल आई थी । वे रामचन्द्र न होकर राम-दूत हनुमान् हैं ऐसा तो पहले नहीं जान पड़ा था ।" मैंने तुरन्त कहा—"पहले किस तरह जानते ? पहले तो कुछ था नहीं । तुम्हारे घर शादी करने आये हैं इसी से 'यस्मिन् देशे यदाचारः' का अवलम्बन किया है ।"

राजा इस उत्तर को सुन कर बड़े ही ख़ुश हुए । विचारा कि रमाई के द्वारा मेरा और मेरे पूर्वजों के मुँह उज्ज्वल हुए और प्रतापादित्य का आदित्य ( सूर्य्य ) एकबारगी चिर-काल के लिए राहु-ग्रस्त हुआ ।

राजा युद्ध-विग्रह का विषय तो कुछ जानते ही नहीं थे । इन्हीं सब छोटी मोटी घटनाओं को वे बड़ा भारी युद्ध-विग्रह की तरह सोचते थे । इतने दिनों तक उनके मन में धारणा थी कि उनका अपमानसूचक भारी पराजय हुआ है । यह कलङ्क की बात दिन रात उनके हृदय को सन्तप्त किये रहती थी और मारे लज्जा के वे धरती को दो खण्ड होकर कहने का अनुरोध करते थे । आज उनके मन में बड़ी तसल्ली हुई कि सेनाध्यक्ष

रमाई लड़ाई जीत कर आया है। तथापि उनके मन से लज्जा का बोझ एकदम दूर न हुआ।

राजा ने रमाई को कहा—"इस बार जा कर विजय प्राप्त करना होगा। अगर तुम्हारी जीत होगी तो तुमको अपनी अँगूठी इनाम दूँगा।"

रमाई ने कहा—"हज़ूर, जीत की चिन्ता क्या? रमाई को यदि अन्दर महल में ले जा सकें तो ख़ुद सास महारानी साहिबा को भर पेट मट्ठा पिला कर आ सकता हूँ।"

राजा ने कहा—"यह कौन बड़ी बात है? मैं तुमको मज़े में अन्दर ले जाऊँगा।"

रमाई—"आपके लिए क्या असाध्य है?"

राजा को भी ऐसा विश्वास था। वे क्या नहीं कर सकते थे?

आश्रित लोगों में यदि कोई प्रार्थना करता है "महाराज की जय हो, ताबेदार की ख़ाहिश पूरी करें।" महामहिम रामचन्द्र राय झट बोल उठते थे "हाँ, ज़रूर पूरी होगी।" जिसमें कोई यह न समझे कि ऐसा कुछ काम है, जो उनके द्वारा नहीं हो सकता। उन्होंने निश्चय किया, रमाई को प्रतापादित्य के अन्तः-पुर में ले जायँगे और महारानी साहिबा के मुँह पर उनकी नक़ल करावेंगे तब मेरा नाम राजा रामचन्द्रराय सच्चा होगा।" इतना बड़ा अच्छा काम यदि वे न कर सके, तो वे फिर राजा किस बात के।

चन्द्रद्वीप के राजा ने राममोहनमाल को बुला भेजा। राम-मोहनमाल पराक्रम में भीम के समान था। उसके शरीर की

लम्बाई पूरे साढ़े चार हाथ थी। सारे शरीर की गठन बड़ी ही मज़बूत और सुडौल थी। वह स्वर्गवासी राजा के समय का आदमी था। उसने रामचन्द्र को बचपन से गोदी खिलाया है। रमाई से सभी डरते हैं। रमाई किसी से डरता है तो वह यही राममोहन हैं। राममोहन रमाई को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखता था। रमाई उसकी घृणा दृष्टि से आप ही आप एक तरह शरमिन्दा हो पड़ता था। राममोहन की दृष्टि से बच कर ही वह रहना चाहता था। राममोहन आ खड़ा हुआ। राजा ने कहा—"मेरे साथ पचास आदमी जायँगे। राममोहन तुम उन लोगों के प्रधान होकर जाओगे।"

राममोहन ने कहा—"जो आज्ञा, क्या रमाई बाबू भी जायँगे ?" बिडालनेत्र, छोटे अवयव के रमाई बाबू, संकुचित हुए।



# आठवाँ परिच्छेद ।

यशोहर के राजभवन में आज कर्मचारी लोग बड़े व्यग्र हैं। आज दुलहाजी आवेंगे। तरह तरह की तैयारियाँ हो रही हैं। खाने पीने की चीज़ों का विशेष रूप से आयोजन हो रहा है। चन्द्रद्वीप का राजवंश यशोहर के आगे महज़ मामूली है—इस विषय में प्रतापादित्य के साथ महारानी का कोई मतभेद न था। तथापि जामाता आवेंगे इस ख़याल से उन्हें अत्यन्त उल्लास हो रहा है। भोर ही से उसने अपने हाथ से विभा का सिंगार करना आरम्भ किया है। विभा बड़ी कठिनाई में पड़ गई है। उसका कारण यह कि शृङ्गार के सम्बन्ध में बुढ़िया माता के साथ युवती बेटी का कितने विषयों में रुचिभेद है। किन्तु रुचिभेद होने से होता ही क्या है। विभा कुछ समझे, पर रानी उसे ज़रूर अच्छा समझती थीं। विभा के मन में यह धारणा थी कि, फिरोज़ी रङ्ग की तीन तीन पतली चूड़ियाँ पहनने से उस के गोरे गोरे कोमल हाथों में बड़ी शोभा देंगी। माँ ने उसको सोने की आठ आठ मोटी चूड़ियाँ और एक एक बड़े फाँद का हीराजटित आभूषण दोनों हाथों में पहना कर इतनी अधिक प्रसन्न हो उठीं कि चूड़ी की शोभा देखने के लिए राजभवन की समस्त बूढ़ी दासियों और विधवा फूफी प्रभृति को बुला भेजा।

विभा समझती है कि उसके छोटे सुकुमार मुँह में नथ किसी तरह नहीं फबती। परन्तु माँ उसको एक बड़ी नथ

पहना कर उसके मुँह पर एक बार दहनी ओर और एक बार बाईं ओर घुमा कर बड़ी उत्सुकता के साथ देखने लगी। इस में भी विभा कुछ न बोली, किन्तु माँ ने जिस ढङ्ग पर उसका बाल बाँध दिया है वह उसे एकबारगी ही नापसन्द है। वह चुपचाप सुरमा के पास जाकर अपने मन के पसन्द का बाल बँधवा आई। किन्तु उसे वह अपनी माँ की नज़र से बचा न सकी। रानी ने देखा, केवल बेढब बाल बाँधने के दोष से विभा की सारी शोभा मिट्टी में मिल गई है। उन्हें साफ़ देख पड़ी कि सुरमा ने डाह करके विभा की शोभा इस तरह से बाल बाँध कर ख़राब कर दी है। उन्होंने सुरमा के इस खोटे अभिप्राय पर विभा की आँखें खोलने की चेष्टा की। बड़ी देर तक बक कर जब वे स्थिर हुईं, कृतकार्य्य हुईं, तब उसके बालों को खोल कर फिर बाँध दिया। इस प्रकार विभा अपना जूड़ा, अपनी नथ, अपने चूड़ियाँ और अपने एक हृदय पूर्ण नवीन उत्साह का भार पहन कर बड़ी ही चञ्चल हो पड़ी है। वह समझ रही है कि इस दुरन्त हर्ष को वह किसी प्रकार अन्दर महल में छिपा कर नहीं रह सकती है। बिजली की तरह सहसा उसकी आँखों से और मुँह से आह्लाद की छटा हो पड़ती है। उसके मन में होता है, घर की दीवाल तक उसके शृङ्गार का उपहास करने को उद्यत हैं। युवराज उदयादित्य ने अन्दर महल में आकर गम्भीर प्रेमपूर्ण आनन्द के साथ विभायुक्त विकसित मुँह देखा। विभा का हर्ष देख उन के मन में इतना आनन्द हुआ कि मारे उल्लास के घर में जाकर उन्होंने स्नेहपूर्वक मधुर मृदु हँसी हँसते हुए सुरमा का मुँह चूमा।

सुरमा ने पूछा—"क्या ?"

उदयादित्य—"कुछ तो नहीं।"

इसी समय वसन्तराय बलपूर्वक विभा को खैंच कर घर में ले आये। उन्होंने ठुड्ढी पकड़ कर उसका मुँह ऊपर उठा कर कहा—"लो भाई, एक बार तुम अपनी विभा का मुख तो देख लो सुरमा अरी सुरमा एक बार यहाँ आकर देख जा!" आनन्द से गद्‌गद् होकर वृद्ध वसन्तराय हँसने लगे और उन्होंने विभा के मुँह की ओर देख कर कहा, "यदि उल्लास है तो पूरे तौर से ही हँसो न, मैं भी ज़रा देखूँ।"

यदि मेरी उम्र ढल न गई होती तो आज तुम्हारा यह सुन्दर मुँह देख कर इसी जगह अपनी जान न्यौछावर कर देता। हाय! हाय! मरने का वयस चला गया। जवानी के वक़्त घड़ी घड़ी मरता। बुढ़ापे में तो रोग न होने से मरण होता नहीं।"

प्रतापादित्य से जब उनके साले ने आकर पूछा—"दुलहा साहब को अगवानी करके लाने के लिए कौन गया है?" तब उन्होंने कहा, "मैं नहीं जानता!" आज सड़कों पर रौशनी तो ज़रूर करनी होगी? महाराज ने आँखें विस्फारित करके कहा, "ज़रूर ही करनी होगी? ऐसी कोई बात नहीं!" तब राजा के साले ने लजाते हुए कहा, "नौबत बैठेगी या नहीं?" उन सब बातों के विचारने का अभी मौक़ा नहीं है। सच बात तो यह है कि बाजा बजवा कर दामाद को घर लाना प्रतापादित्य का काम नहीं।

रामचन्द्रराय को बड़ी ही ग्लानि हुई है। उन्होंने अपने मन में निश्चय किया है कि जान बूझ कर ही हमारा अपमान

किया गया है। इसके पहले दो एक बार हमको अगवानी कर के ले जाने के लिए राजभवन से चकदह में लोग भेजे गये थे। इस बार चकदह पार होकर दो कोस आने पर बामनहाटी में दीवानजी उनके स्वागत के लिए आये हैं। अगर दीवानजी आये तो उनके साथ सौ दो सौ और लोग क्यों नहीं आये? सारे यशोहर में क्या पचास आदमी भी यहाँ आने के लिए नहीं मिले? राजा को लाने के लिए जो हाथी आया है वह रमाई के सदृश स्थूलकाय, दीवानजी उसकी अपेक्षा और भी अत्यधिक। रमाई ने दीवान से पूछा, "महाशय, मालूम होता है वह आपका छोटा भाई है? सज्जन दीवानजी ने कुछ विस्मित होकर उत्तर दिया, "नहीं, वह हाथी है।" राजा (रामचन्द्रराय) ने क्षुब्ध होकर दीवानजी से कहा—"तुम्हारे मन्त्री जिस हाथी पर चढ़ते हैं वह भी इसकी अपेक्षा बड़ा ही होगा।"

दीवानजी ने कहा—"बड़े हाथी जितने थे वे राजकीय कार्य के उद्देश से दूर भेजे गये हैं। यशोहर में अभी एक भी हाथी नहीं है।"

रामचन्द्रराय ने समझा, हमारा अपमान करने ही के लिए वे सब हाथी अन्यत्र भेज दिये गये हैं, नहीं तो भेजने का और कारण ही क्या था?"

राजा रामचन्द्रराय के नेत्र मारे क्रोध के लाल हो गये। वे आप ही आप बोल उठे, "प्रतापादित्य से मैं किस अंश में न्यून हूँ।"

रमाई—"उम्र में और सम्बन्ध में, नहीं तो और किस अंश में? आपने उसकी लड़की को ब्याहा, इसी से——"

राममोहन माल वहीं खड़ा था, उसे रमाई की बात सह्य न हुई। वह अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोला—"रमाई, तुम बहुत बढ़ कर बात बोलते चले जा रहे हो। ख़बरदार! महाराज प्रतापादित्य की कन्या हम लोगों की स्वामिनी हैं। उनके विषय में कोई बात अनुचित बोलोगे तो तुरन्त उसका फल पाओगे।"

राममोहन को क्रुद्ध देख कर रमाई ने विभा की बात छोड़ कर प्रतापादित्य की ओर लक्ष्य करके कहा, "ऐसे आदित्य बहुतेरे देखे हैं। मेरे महाराज भी इसे बख़ूबी जानते हैं। जो आदमी आदित्य को बिल्ली की तरह बग़ल में दबा कर रख सकता है, वह चन्द्रद्वीप के राजा के नौकरों में एक रमाई के सिवा दूसरा कौन है?"

राजा मुँह पर कपड़ा रख कर हँसने लगे। राममोहन क्रोध से अधीर हो हाथ जोड़ कर बोला—"महाराज, यह आपके ससुर को इस तरह अनुचित कहे, यह मैं नहीं सुन सकता। आपकी आज्ञा हो तो इस ख़ुशामदी कुत्ते का मुँह अभी बन्द कर दूँ।"

राजा ने कहा—"राममोहन, ज़रा तुम ठहर जाओ।"

राममोहन वहाँ से टल कर दूर चला गया।

रामचन्द्र ने उस दिन हज़ारों बार मनःकल्पित विवाद की आलोचना करके स्थिर किया कि प्रतापादित्य ने हमारा अपमान करने के लिए बहुत दिनों से बड़ी आयोजना की है। मारे ग्लानि के रामचन्द्र बहुत व्यग्र हो उठे। उन्होंने निश्चय किया है कि प्रतापादित्य के पास वे ऐसा स्वरूप धारण करेंगे जिसमें प्रतापादित्य जानेंगे कि उनके दामाद भी कुछ ऐसे वैसे नहीं हैं।"

जब प्रतापादित्य के साथ रामचन्द्रराय की मुलाक़ात हुई तब प्रतापादित्य बैठक में अपने मन्त्री के साथ बैठे थे। प्रतापादित्य को देखते ही रामचन्द्र ने सिर नवा कर धीरे धीरे उनके पास जाकर उनको प्रणाम किया।

प्रतापादित्य ने कुछ विशेष उल्लास या व्यग्रता का भाव प्रकाश न करके शान्त भाव से कहा—"आओ, अच्छे तो हो?"

रामचन्द्र ने धीरे से कहा—"हाँ।"

मन्त्री की ओर देख कर प्रतापादित्य ने कहा—"भाङ्गामाथी परगन के तहसीलदार के नाम से जो नालिश आई थी उसका क्या हुआ?"

मन्त्री ने एक बड़ा लम्बा काग़ज़ निकाल कर राजा के हाथ में दिया। राजा पढ़ने लगे। कुछ दूर तक जब पढ़ गये तब उन्होंने एक बार आँख उठा कर जामाता से पूछा—"पारसाल की तरह इस बार तुम लोगों के यहाँ बाढ़ तो नहीं आई?"

रामचन्द्र—"जी नहीं, आश्विन के महीने में एक बार जल-वृद्धि——"

प्रतापादित्य—"दीवान, इस पत्र की एक नक़ल ज़रूर अपने पास रख लेनी होगी।" यह कह कर फिर पढ़ने लगे। पढ़ना समाप्त करके जामाता से कहा—"जाओ, अन्दर जाओ।"

रामचन्द्र धीरे धीरे उठे। वे अपने मन में यही समझ रहे हैं कि प्रतापादित्य उनसे किसी अंश में बड़े नहीं।



# नवाँ परिच्छेद ।




म मोहन माल ने जब अन्तःपुर में प्रवेश करके विभा को प्रणाम करके कहा—"माँ, मैं तुम्हें एक बार देखने आया हूँ।" तब विभा के मन में बड़ा हर्ष हुआ। राममोहन को वह बहुत चाहती थी। घर के अनेक काम रहते भी राममोहन कभी कभी चन्द्रद्वीप से अकसर यशोहर आता था। कोई आवश्यक काम न रहने पर भी समय मिल जाने पर वह विभा को देखने आता था। राममोहन को देख कर विभा कुछ भी लज्जा नहीं करती थी। वृद्ध, बलिष्ठ, लम्बे डील का राममोहन जब "माँ" कह कर खड़ा होता था तब उसके हृदय में एक ऐसा विशुद्ध, निश्छल, अभिमानशून्य स्नेह का भाव उदय होता था कि विभा उसके सम्मुख अपने को बिलकुल बालिका समझती थी। विभा ने उससे कहा—"तुम इतने दिनों से क्यों नहीं आते थे?"

राममोहन, "सुनो माँ, पुत्र, कुपुत्र होता है, पर माता, कुमाता नहीं होती। तुमने कब मेरा स्मरण किया? मैंने यही मन में निश्चय किया कि माँ जब तक मुझे न बुलावेगी मैं न जाऊँगा। देखूँ तो, कब तक वह मेरा स्मरण करती है। पर क्या कहूँ, आपने एक बार भी तो मेरा स्मरण न किया!"

विभा बड़ी कठिनता में पड़ गई। उसने राममोहन को क्यों नहीं बुलाया, इसका वह कोई अच्छा जवाब न दे सकी।

विभा ने स्मरण न होने ही के कारण राममोहन को न बुलाया। यह बात नहीं है। न बुलाने का वह युक्तियुक्त कोई

कारण बतलाना चाहती है, पर उसे वह अच्छी तरह कह कर समझा नहीं सकती ।

विभा को चिन्तित देख राममोहन ने हँस कर कहा, "नहीं माँ, आप कुछ चिन्ता न करें, मैं समय नहीं पाता था, इसी से नहीं आता था ।"

विभा ने प्रसन्न होकर कहा—"मोहन बैठो, अपने देश का हाल कहो ।"

राममोहन बैठ कर चन्द्रद्वीप का वर्णन करने लगा । विभा गाल पर हाथ रख कर एकाग्र मन से सुनने लगी । चन्द्रद्वीप का वर्णन सुन कर विभा के मन में कैसे कैसे भावों का उदय होता था, यह दूसरा कोई कैसे समझ सकता है ? जब राम-मोहन ने बाढ़ आने की बात कही, गत वर्ष में उसका घर पानी में डूब गया था, सन्ध्या होने के पहले वह अपनी वृद्धा माँ को पीठ पर लेकर तैरता हुआ मन्दिर की छत पर चढ़ गया और वहीं उन दोनों ने सारी रात बिता डाली ।" यह सुन कर विभा का कोमल हृदय काँप उठा ।

चन्द्रद्वीप का वर्णन समाप्त होने पर राममोहन ने बड़े विनीत भाव से कहा—"माँ, मैं तुम्हारे लिए संखा चूड़ी लाया हूँ । तुम इसे पहनो, मैं देख कर अपने नयन को तृप्त करूँगा ।"

विभा ने अपने हाथों से सोने की दो दो चूड़ियाँ निकाल डालीं, और राममोहन की दी हुई संखा चूड़ी पहन कर वह हँसते हँसते माँ के पास आई और बोली—"माँ, मोहन ने तुम्हारी चूड़ी मेरे हाथों से निकलवा कर संखा चूड़ी पह-नाई है ।"

रानी ने इससे नाराज़ न होकर मुसकुरा कर कहा—"बेटी, क्या राममोहन आ गया? अच्छा किया, तुमने जो उसके हाथ की दी हुई चूड़ी पहन ली। देखने में बुरी तो नहीं लगती।"

राममोहन रानी के मुँह से इतनी बात सुन कर बहुत ख़ुश हुआ। मानो उसने इतने ही में अपनी कृतज्ञता का पूरा पुरस्कार पा लिया। रानी राममोहन को अपने महल में बुला कर ले गईं और उन्होंने उसे अपने सामने बैठा कर भोजन कराया। जब वह तृप्तिपूर्वक भोजन कर चुका, तब रानी ने बड़ी प्रसन्न होकर कहा—"मोहन, तुमने जो उस दफ़े गीत गाया था, वह गाओ तो।"

राममोहन विभा के मुँह की ओर देख कर गाने लगा।

गाते गाते राममोहन की आँखों में आँसू भर आये। रानी भी विभा का मुँह देख कर अपनी आँखों के आँसू नहीं रोक सकीं। राममोहन के उस गान से रानी को विजया का स्मरण हो आया। सूर्य्यास्त होने का समय आया। अड़ोस पड़ोस की झुण्ड की झुण्ड स्त्रियाँ जामाता देखने और सम्बन्धानुसार दुलहे के साथ परिहास करने के लिए अन्तःपुर में एकत्र होने लगीं। हर्ष, सङ्कोच और भय ये तीनों मिल कर विभा के मन में एक अपूर्व भाव उत्पन्न कर रहे हैं। न मालूम आज क्या होगा, इस अनिश्चित भाव से विभा का हृदय काँप रहा है। उसका मुँह और कान लाल हो गये हैं। उसके हाथ पैर शिथिल से हो रहे हैं। यह कष्ट है कि सुख—इसे कौन जाने?"

दुलहाजी अन्तःपुर में आकर विराजमान हैं। ठट्ठ की ठट्ठ स्त्रियाँ सौन्दर्य्य राशि की तरह जगमगाती हुई अन्तःपुर की शोभा बढ़ा रहीं हैं। उन लोगों के हृदय में आज आनन्द की

सीमा नहीं है। रमणीगण चारों ओर से दुलहाजी को घेर कर बैठी हैं। चारों ओर हँसी की धूम मच गई है। चारों ओर से दुलहे पर कोकिलकण्ठ का मृदु परिहास, कमलनाल सदृश कोमल बाहु का ताड़न और चम्पक पुष्पोपम उँगलियों के स्वच्छ नखों का आघात चलने लगा। चारों ओर से ललनायें चुटकियाँ भरने लगीं। रामचन्द्रराय चुपचाप भेड़ की तरह बैठे यह सब कुतूहल देख रहे थे। जब वे एक दम घबरा उठे तब एक युवती स्त्री उनका पक्ष अवलम्बन करके बैठी।

उस युवती के मुँह से ऐसी ऐसी कठोर और कड़ई बातें निकलने लगीं, ऐसे ऐसे अश्लील वाक्यों की वर्षा होने लगी, जिन्हें सुन कर गाँव की जितनी स्त्रियाँ आई थीं सबके सब चुप हो रहीं। उस मुखरा के मुँह के सामने चपला बहन भी मौन साध बैठी। विमला बहन घर से उठ कर चली गई। केवल विभूति की माँ ने उसे ख़ूब चुन चुन कर बातें सुनाईं। जब विभूति की माँ उसे धिक्कार रही थी, तब उस युवती ने उससे कहा—"तुम्हारा मुँह नहीं, यह एक झाड़ू है।" विभूति की माँ ने तुरन्त जवाब दिया—"तुम्हारा मुँह गलीज़ों की भरी मोरी ( नाली ) है। इतनी झाड़ू लगी तब भी वह साफ़ न हुई।" यह कह कर वह मारे गुस्से के लाल पीली होती हुई घर से चली गई। एक एक कर सब औरतें चली गईं, घर ख़ाली हो गया। रामचन्द्रराय की जान में जान आई।

तब वह युवती उस घर से निकल कर रानी के घर में गई। वहाँ रानी अपने नौकर-नौकरानियों को खिला पिला रही थी। राममोहन भी एक ओर बैठ कर खा रहा था। वह युवती, रानी के पास आकर और उनके मुँह की ओर अच्छी तरह

देख कर बोली—"यही निकषा माता ( राक्षसों की जननी ) है।" सुनने के साथ राममोहन चौंक उठा। युवती के मुँह की ओर देखा। वह तुरन्त भोजन छोड़ कर बाघ की तरह उछल उसके दोनों हाथ वज्रमुट्ठी से पकड़ कर वज्रस्वर से बोल उठा, "बामन, मैं तुम्हें पहचानता हूँ।" यह कह कर उन्होंने उसके माथे पर का कपड़ा उतार डाला, देखा, यह दूसरा कोई नहीं, वही रमाई ठाकुर हैं। राममोहन क्रोध से काँपने लगे। अपने देह पर की चादर हटा डाली। दोनों हाथों से खेल की तरह अनायास रमाई को ऊपर उठा लिया और कहा, "आज मेरे हाथ से तुम्हारा मरण लिखा है।" यह कह कर दो एक बार ऊपर ही ऊपर उसे घुमाया। रानी दौड़ कर आई और कहा, "राममोहन तुम क्या कर रहे हो ?"

रमाई ने अधीर होकर कहा—"दुहाई बाबूजी की, ब्रह्म-हत्या न करो।" चारों ओर से एक भारी हल्ला उठ खड़ा हुआ। तब राममोहन रमाई को नीचे पटक कर काँपते काँपते कहा—"अभागा कहीं का, तेरे मरने की और कोई जगह न थी ?"

रमाई ने कहा—"महाराज ने मुझे आज्ञा दी थी।" राम-मोहन "क्या कहा, नमकहराम ? फिर ऐसी बात ज़बान से निकालेगा तो इसी पत्थर पर तुम्हारा मुँह रगड़ दूँगा।" यह कह कर उसका गला दबा कर पकड़ा। रमाई चिल्ला उठा। तब राममोहन उस लघुकाय दुबले पतले रमाई को चादर में लपेट कर बस्ते की तरह हाथ में लटका कर झुलाते हुए अन्तः-पुर से बाहर हो गये।

थोड़ी ही देर में यह बात सर्वत्र फैल गई। रात आधी से भी अधिक बीत चुकी है। राजा के साले ने उसी समय यह

ख़बर प्रतापादित्य से जा सुनाई कि, दुलहाजी रमाई मसख़रे को औरत की शकल में भीतर महल में ले गये हैं। वहाँ उसने गाँव की स्त्रियों के साथ, यहाँ तक कि रानी के साथ भी, परिहास किया है।"

यह सुनते ही प्रतापादित्य का स्वरूप बड़ा ही भयङ्कर हो उठा। क्रोध से उनका हृदय जलने लगा। वह क्रोध में भर सिंह की तरह पलङ्ग से उठ बैठे। बोले, "लछमन सरदार ( डोम ) को बुलाओ।" लछमन हाज़िर हुआ। लछमन सरदार से कहा—"मैं आज रात में ही रामचन्द्रराय का कटा हुआ सिर देखना चाहता हूँ।"

उसने तुरन्त सलाम करके कहा—"जो हुक्म, उनके साले ने तुरन्त उनके पैरों पर गिर कर कहा, "महाराज, क्षमा कीजिए, एक बार विभा का स्मरण कीजिए। ऐसा काम न करें।" प्रतापादित्य ने फिर कड़क कर कहा—"आज रात में ही मैं रामचन्द्रराय का सिर चाहता हूँ।"

उनके साले ने उनका पाँव पकड़ कर कहा—"महाराज, आज वे थके माँदे अन्दर महल में सोये हैं। क्षमा करें, महाराज, क्षमा करें।" तब प्रतापादित्य ने कुछ देर मौन धारण करके कहा—"सुनो, लछमन, कल सबेरे जब रामचन्द्रराय अन्दर महल से बाहर निकलें तब उन्हें बे ख़ौफ़ क़तल् कर डालना, तुम्हारे ऊपर यह आज्ञा रही।" उनके साले ने जितनी देर की आशा कर रक्खी थी उसकी अपेक्षा कहीं अधिक उन्हें समय मिला। उन्होंने उसी समय चुपचाप आकर विभा के सोने की कोठरी का द्वार खटखटाया।

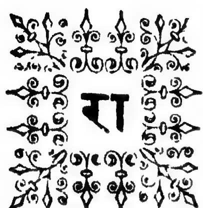
उस समय कुछ ही दूर पर आधी रात की नौबत बज रही थी। सन्नाटे की रात में उस नौबत की आवाज़ चाँदनी के और दक्खिनी हवा के साथ मिल कर अर्धनिद्रित अवस्था में हृदय के अभ्यन्तर सुख-स्वप्न की सृष्टि कर रही थी। विभा के शयनगृह के झरोखों की राह से चन्द्रमा की कोमल किरणें प्रवेश कर दुग्धफेननिभ शय्या को और भी उज्वल कर रही थीं। रामचन्द्रराय नींद में सोये हैं। विभा चुपचाप बैठी हुई गाल पर हाथ दिये मन ही मन सोच रही है। ज्योंही उसकी दृष्टि चाँदनी की ओर गई त्योंही उसकी आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े। खेद इस बात का है कि जैसा कुछ उसने मन में सोच रक्खा था, वैसा न हुआ। इस कारण वह विकल होकर रो रही है। वह बेचारी इतने दिनों से जिसके आने की बाट जोह रही थी, आज उसी के पास बैठ कर उसके साथ बात करने को तरस रही है।

रामचन्द्रराय ने बड़े गर्व से पलङ्ग पर नींद से सोने के सिवा विभा के साथ कुछ बात न की। प्रतापादित्य ने उनको अपमानित किया है, वे प्रतापादित्य के अपमान का बदला किस तरह लेंगे? विभा को अग्राह्य करके वे यह दिखाना चाहते हैं कि तुम यशोहर के प्रतापादित्य की बेटी हो, चन्द्रद्वीप के स्वामी राजा रामचन्द्रराय के आगे तुम्हारा क्या मोल है। यही सोच कर वे मुँह फेर कर सो रहे। अब तक उन्होंने करवट नहीं ली है। उनके मन में जो कुछ मान, अभिमान और क्रोध था वह सब विभा के ऊपर। विभा बैठी हुई इन सब बातों को मन ही मन सोच रही है। वह एक बार चाँदनी की ओर और एक बार स्वामी के मुँह की ओर निहारती है। ठहर ठहर कर उसका हृदय काँप उठता है। वह रुक रुक कर

साँस ले रही है। उसके मन में जो कष्ट हो रहा है वह अकथनीय है। हठात् एक बार रामचन्द्रराय की नींद टूट गई, उन्हों ने देखा, विभा चुप चाप बैठी रो रही है। सोकर जाग उठने की शान्त अवस्था में जब उनके मन में मान-अपमान का कुछ स्मरण न था, गहरी नींद लेने के बाद चित्त का सात्त्विक भाव कुछ देर के लिए पलट गया था, रोष का भाव मन से दूर चला गया था, तब एकाएक विभा के अश्रुपूर्ण नेत्र और करुणार्त कुम्हलाये हुए कमल सा कोमल मुखमण्डल देख कर उनके हृदय में एकाएक दया का सञ्चार हो आया। उन्होंने विभा का हाथ पकड़ कर कहा—"अयँ, तुम इस तरह क्यों रो रही हो?" विभा का सारा शरीर कण्टकित हो गया, वह कुछ उत्तर न दे सकी। वह सङ्कोच से सिमट कर चुपचाप बिछौने पर लेट रही। तब रामचन्द्रराय ने बैठ कर विभा के मस्तक को धीरे से उठा कर अपने घुटनों पर रक्खा और उसकी आँखों के आँसू पोंछ कर कुछ कहना चाहा। इसी समय किसी ने बाहर से किवाड़ में धक्का दिया। रामचन्द्रराय ने चौंक कर पूछा—"कौन है? बाहर से जवाब आया, "जल्दी किवाड़ खोलो।"



# दसवाँ परिच्छेद ।




मचन्द्रराय किवाड़ खोल कर बाहर आये। राजा के साले रमापति ने कहा—"रायजी, तुम अभी यहाँ से भागो, ज़रा भी देर न करो।"

आधी रात को एकाएक ऐसी भयानक बात सुन कर रामचन्द्रराय की मानो जान निकल गई। उनका मुँह सूख गया। उन्होंने लड़खड़ाती ज़बान से पूछा—"क्या हुआ?"

"क्या हुआ—कहने का समय नहीं है। तुम अभी यहाँ से चल दो।"

विभा पलङ्ग से उतर कर धीरे धीरे बाहर आई। उसने धीमे स्वर में पूछा—"मामा, क्या हुआ?"

रमापति—"वह बात तुम्हारे सुनने की नहीं है।"

विभा का माथा ठनक उठा। उसने एक बार वसन्तराय और एक बार उदयादित्य की बात सोची। फिर उसने धीरज धर कर पूछा—"कहो मामा, क्या हुआ?"

रमापति ने विभा के प्रश्न का कुछ जवाब न देकर रामचन्द्रराय से कहा—"व्यर्थ समय बीता जा रहा है। तुम इसी वक्त छिप कर भागने की तद्बीर करो।"

विभा के मन में सहसा एक भयङ्कर अशुभ की आशङ्का जाग उठी। मामा को वहाँ से जाने पर उद्यत देख विभा उनके

आगे जा रास्ता छेंक कर खड़ी हुई और बोली—"मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। क्या हुआ ? सच सच कहो।"

रमापति ने भयभीत दृष्टि से चारों ओर देख कर कहा—"विभा, बहुत शोर मत करो, चुप रहो, मैं तुमसे सभी बातें कहे देता हूँ।"

जब रमापति ने शुरू से अख़ीर तक सभी बातें कह सुनाईं, तब विभा ज़ोर से चीख मार कर रो उठी। रमापति ने झटपट उसका मुँह बन्द करके कहा—"चुप, चुप, देख सर्वनाश न कर।" विभा दम साध उछलते हुए कलेजे को हाथ से थाम कर वहीं बैठ गई।

रामचन्द्रराय अत्यन्त अधीर होकर बोले—"मैं इस समय क्या करूँ। भागने का कोई रास्ता हो तो बता दीजिए। मैं तो कुछ जानता नहीं।"

रमापति—"आज पहरेदार हवेली के चारों ओर बड़ी सावधानी से पहरा दे रहे हैं। मैं देख आता हूँ, यदि भागने का कोई रास्ता मिल गया तो मैं तुरन्त ख़बर दूँगा।" यह कह कर वे जाने लगे। विभा ने उन्हें रोक कर कहा—"मामा, तुम कहाँ जाते हो ? तुम हम लोगों के पास रहो। तुम चले जाओगे तो हम लोगों को किसका बल रहेगा ?"

रमापति—"विभा, क्या तुम बावली तो नहीं हो गई हो ? मैं तुम्हारे पास रह कर तुम लोगों का कोई उपकार नहीं कर सकूँगा। मैं एक बार चारों ओर की खोज-ख़बर लेकर तुरन्त लौट आता हूँ।"

विभा बड़ी फुर्ती से उठ खड़ी हुई। उसका सर्वाङ्ग भय से काँप रहा था। उसने रमापति से गिड़गिड़ा कर कहा—

"मामा, ज़रा देर के लिए ठहर जाओ। मैं एक बार भैया के पास से हो आती हूँ।" यह कह कर विभा हाँफती हुई उदयादित्य के सोने की कोठरी में गई।

तब चन्द्रमा पाण्डुवर्ण होकर अस्त होने पर था। चारों ओर धीरे धीरे अन्धकार अपना प्रभाव फैलाता जा रहा था। सभी लोग निद्रा देवी की गोद में विश्राम ले रहे थे। एक भी शब्द सुनाई नहीं देता था। रामचन्द्रराय ने अपने शयनागार के द्वार पर खड़े होकर देखा कि, हवेली के आमने सामने दोनों ओर की जितनी कोठरियाँ हैं, सब बन्द हैं। चन्द्रास्त होने के समय की छाया आँगन में दिखाई दे रही है। उसके एक भाग में चाँदनी का थोड़ा सा अंश अब भी बच रहा है। क्रमशः वह भी छिपी जा रही है। देखते ही देखते अन्धकार ने सम्पूर्ण संसार को अपने अधिकार में कर लिया।

अन्धकार पहले ज्योत्स्ना के भय से बाग़ के भीतर पेड़ों की आड़ में छिपा था, ज्यों ज्यों ज्योत्स्ना कृश होती गई त्यों त्यों वह पाँव फैलाने लगा। रामचन्द्रराय कल्पना करने लगे, चारों ओर के इस भयानक अन्धकार में न मालूम उनके लोहू की प्यासी किधर एक तीक्ष्ण छुरी चमचमा रही है? वे कभी दहनी, कभी बाँईं ओर, कभी सामने और कभी पीछे की ओर आँख फाड़ फाड़ कर देखते हैं, न मालूम किस घड़ी किधर से उन पर अस्त्र प्रहार हो। फिर वे यह सोच कर काँप उठते हैं, कदाचित् किसी कोने में कोई कपड़े से सारा बदन ढँप कर चुपचाप बैठा हो, कौन जाने घर के भीतर ही कोई हो? हो सकता है, चारपाई के नीचे छिप कर कोई मुझको मारने के हेतु बैठा हो? इस प्रकार की अनेक कल्पनायें उनके चित्त को चूर

कर रही हैं । उनके सारे शरीर से पसीना बह चला । एक बार उनके मन में यह आशङ्का उत्पन्न हुई, शायद रमापति ही कुछ कर बैठें । वे डर कर धीरे धीरे अपनी जगह से ज़रा दूर हट कर खड़े हुए । हवा की झोंक से अकस्मात् घर का चिराग़ बुझ गया । रामचन्द्रराय के जी में हुआ, शायद किसी ने चिराग़ बुता दिया है । उन्होंने अपने मन में दृढ़ निश्चय किया कि कोई आदमी ज़रूर घर में है ।" वे डर कर रमापति के पास खिसक कर बैठे । उन्होंने कम्पित स्वर से पुकारा—"मामा, मामा ने कहा—"क्या है ?"

रामचन्द्रराय ने मन में सोचा, इस समय यदि विभा यहाँ रहती तो अच्छा होता । मामा पर उनका पूरा विश्वास न था । विभा उदयादित्य के पास आते ही रो कर ज़मीन पर बेसुध हो गिर पड़ी । उसके मुँह से कोई बात न निकली । सुरमा ने उसे बैठा कर होश में लाने की चेष्टा की, पूछा—"विभा, क्या हुआ ?" विभा ने सुरमा के दोनों हाथ पकड़ लिये, पर वह कुछ कह न सकी । उदयादित्य ने स्नेहपूर्वक विभा के माथे पर हाथ रख कर पूछा—"कहो विभा, क्या हुआ ?" विभा ने उनके दोनों हाथ पकड़ कर कहा—"भैया, मेरे साथ चलो, मामा तुमसे सब हाल कहेंगे ।"

तीनों वहाँ से झट रवाना हो विभा के शयनगृह के द्वार पर जा पहुँचे । वहाँ रामचन्द्र अँधेरे में बैठे हैं । रमापति उनके पास खड़े हैं । उदयादित्य ने वहाँ पहुँचते ही पूछा—"मामा, क्या हुआ है ?" रमापति ने सब बातें उनसे कह सुनाईं । उदयादित्य ने अपने विशाल नयनों को विस्फारित करके सुरमा की ओर देख कर कहा—"मैं अभी पिताजी के पास जाता हूँ । मैं कदापि उन्हें ऐसा काम न करने दूँगा ।"

सुरमा—"क्या वे आपकी बात मानेंगे?"

यदि आप उचित समझें तो एक बार दादाजी को उनके पास भेजिए, शायद उनके जाने से कुछ उपकार हो।

युवराज ने कहा—"अच्छा।"

वसन्तराय उस वक़्त गहरी नींद सो रहे थे। जगाये जाने पर उदयादित्य को सामने देख कर उन्होंने सोचा, मालूम होता है भोर हुआ। तुरन्त भैरवी का तान लेना शुरू कर दिया।

उदयादित्य बोले—"दादाजी, हम लोगों के ऊपर भारी सङ्कट आ पड़ा है।" वसन्तराय का गान तुरन्त बन्द हो गया। वे डरते हुए उदयादित्य के पास आये और उन्होंने भयभीत होकर पूछा, "अयँ, सो क्या भाई, क्या हुआ है? कैसा सङ्कट?"

उदयादित्य ने सब कह सुनाया। वसन्तराय अपनी शय्या पर जा बैठे। उन्होंने उदयादित्य के मुँह की ओर देख कर और सिर हिला कर कहा—"नहीं, नहीं, यह कभी हो सकता है? यह कभी मुमकिन नहीं है?"

उदयादित्य—"अब समय नहीं है। आप एक बार पिताजी के पास जायँ।" वसन्तराय उठ खड़े हुए और धीरे धीरे जाने लगे। जाते जाते वे कई बार बोले—"भाई, यह क्या कभी होने वाला है। ऐसा भी कभी हुआ है?"

उन्होंने प्रतापादित्य की बैठक में जाते ही कहा—"प्रताप, यह मैंने क्या सुना है?" प्रतापादित्य अब तक भी अपने सोने की कोठरी में नहीं गये हैं। वे विचारालय में ही बैठे हैं। एक बार उनके मन में हुआ था कि लछमन सरदार को बुलावें। किन्तु यह संकल्प तुरन्त मन से दूर हो गया।

प्रतापादित्य कभी दो तरह की आज्ञा नहीं देते। जिस मुँह से हुक्म देना, उसी से मुँह से हुक्म लौटा लेना, यह कैसी बात है? हुक्म को लेकर लड़कों का खेल करना उनका काम नहीं। किन्तु विभा! विभा विधवा होगी। रामचन्द्रराय अगर अपनी इच्छा से आग में कूद पड़ता तब भी तो विभा विधवा होती। रामचन्द्रराय प्रतापादित्य के क्रोधाग्नि में जान बूझ कर कूद पड़ा है, उसका अनिवार्य्य फलस्वरूप वैधव्य विभा को भोगना ही होगा। इसमें प्रतापादित्य का क्या दोष? किन्तु इतनी बात भी उनके मन में न आई। बीच बीच में जब सारी घटनायें स्पष्ट-रूप से उनके मन में जाग उठती थीं तब वे एक दम अधीर हो उठते और सोचते थे कि रात कब बीतेगी?

ठीक ऐसे समय में वृद्ध वसन्तराय बड़े व्यग्र भाव से घर में प्रवेश करके प्रतापादित्य के दोनों हाथ पकड़ कर बोले—"प्रताप, यह मैंने क्या सुना है?"

प्रतापादित्य मारे क्रोध के जल उठे, बोले—"क्या सुना है?"

वसन्तराय ने कहा—"वह दो दिन का छोकड़ा अभी इन बातों का मर्म क्या जानने लगा। वह क्या तुम्हारे क्रोध के योग्य पात्र है?"

प्रतापादित्य—"क्या कहा? छोकड़ा है? वह बुड्ढे का कान काटता है। आग में हाथ देने से हाथ जल जाता है, क्या यह समझने की उम्र उसकी नहीं है? कहाँ का एक दरिद्र उजड्ड मूर्ख ब्राह्मण, जो मूर्ख लोगों के पास दाँत दिखलाने का रोज़गार करके खाता है। उसे स्त्री की शकल में रानी के साथ परिहास कराने के लिए लाया है। इतनी बड़ी बेढब बुद्धि का

जो संग्रह करेगा उसका परिणाम क्या होगा ? वह बुद्धि अब उसके दिमाग़ में न रहने पावेगी। खेद यही है, कि जब मस्तक में ऐसी बुद्धि संगृहीत होगी तब उसके शरीर के साथ मस्तक ही न रहेगा।" वे जितना ही ज़ोर से बोलने लगे उतना ही उनका शरीर क्रोध से काँपने लगा। उनकी प्रतिज्ञा और भी दृढ़ होने लगी। उनकी क्रोधाग्नि और भी भभक उठी।

बसन्तराय ने कहा—"वह अभी लड़का है, भला बुरा कुछ नहीं समझता।"

प्रतापादित्य आपे से बाहर हो उठे। बोले—"देखो, चचा साहब, यशोहर के रायवंश का किसमें मान है और किसमें अपमान है यह ज्ञान यदि तुम्हें रहता तो क्या इस वृद्ध अवस्था में तुम मुग़ल बादशाह की अधीनता स्वीकार कर जहाँ तहाँ बादशाह के कृपापात्र बन सिर उठाये फिरते हो, इससे प्रतापादित्य का सिर एकबारगी झुक पड़ा है। मुसलमानों के पैरों की धूर तुम भले ही सिर पर चढ़ाया करो, तुम्हारा यह यवनपद-दलित मस्तक धूल में लोटता, यह देखने का मनोरथ था, दैवदोष से उसमें बाधा हुई। आज मैंने तुमसे साफ़ कह दिया। परन्तु इतना कहने पर भी तुम नहीं समझोगे। आज रायवंश की कितनी बड़ी बेइज़्ज़ती हुई है। उस पर भी तुम रायवंश के अपमान करनेवाले के लिए क्षमा की भिक्षा माँगने आये हो। धिक्कार है तुम्हारी इस बुद्धि और विवेचना पर!"

बसन्तराय—"प्रताप, मैं समझता हूँ; तुमने जब एक बार अस्त्र उठाया है तब वह एक न एक के ऊपर पड़ेहीगा। मैं लक्ष्य से अलग हो पड़ा इसी के बदले एक दूसरा आदमी उस का लक्ष्य हुआ है। अच्छा प्रताप, तुम्हारे मन में यदि दया न

हो, तुम्हारा क्षुधित क्रोध यदि एक आदमी को ग्रास करना ही चाहे, तब मुझे ही कवलित करे। लो, तुम्हारे चचा का यह सिर है; ( यह कह कर वसन्तराय ने सिर नीचे कर दिया। ) इसे उतार कर यदि तुम्हारा क्रोध शान्त हो तो अभी इसे उतार लो। खञ्जर लाओ, इस माथे में अब एक भी काला बाल नहीं है, इस मुँह पर अब जवानी की ख़ूबसूरती नहीं है। उस बड़े दरबार के उपयुक्त मेरा सभी साज ठीक हो चुका है। ( वसन्तराय के मुँह में कुछ हँसी की झलक देख पड़ी ) किन्तु ख़ूब विचार करके देखो, प्रताप, विभा हम लोगों की दुध-मुँह बच्ची है। जब उसकी दोनों आँखों से आँसू की धारा बह चलेगी तब—" यह कहते कहते वसन्तराय का कण्ठरुद्ध हो गया वे ज़ोर से साँस खींच कर रो उठे—"प्रताप, मुझे अभी मार डालो, मेरे जीने में सुख नहीं, उस बालिका की आँखों में आँसू देखने के पहले ही मुझे मार डालो।"

प्रतापादित्य इतनी देर चुप थे। जब वसन्तराय की बात पूरी हुई तब वे धीरे धीरे उठ कर चले गये। समझा कि बात ज़ाहिर हो गई। नीचे जाकर पहरेदारों को बुला कर हुक्म दिया, राजभवन के पास वाली नहर अभी बड़े बड़े साखुओं के बोटों से बन्द कर देनी होगी। उसी नहर में रामचन्द्रराय का जहाज़ लगा है। उन्होंने पहरेदारों को सख़्त ताकीद कर दी जिसमें आज की रात महल से कोई बाहर न होने पावे।



## ग्यारहवाँ परिच्छेद।

वसन्तराय जब अन्तःपुर में लौट आये, तब उन को देख कर विभा रोने लगी। वसन्तराय उसके आँसू का निवारण नहीं कर सके, उन्होंने उदयादित्य का हाथ पकड़ कर कहा—"बच्चा, तुम इसका कोई उपाय कर दो।" रामचन्द्रराय एकदम अधीर हो उठे। तब उदयादित्य ने अपनी तलवार हाथ में ले ली और कहा—"आओ, मेरे साथ साथ आओ।" सब उनके साथ साथ चले। उदयादित्य ने कहा—"विभा, तू यहीं रह, तू मत आ।" विभा ने सिर हिलाया। रामचन्द्रराय ने कहा—"नहीं, विभा साथ ही साथ आवे।" उस निःशब्द रात में सभी पैर की आहट बचा बचा कर चलने लगे। रामचन्द्रराय के मन में होने लगा—जैसे भयानकता चारों ओर से उनको पकड़ने के लिए हाथ बढ़ा रही है। रामचन्द्रराय कभी सामने कभी पीछे कभी इधर उधर भयभीत हो कर देखने लगे। मामा के ऊपर रह रह कर उन्हें सन्देह उत्पन्न होने लगा। उदयादित्य ने देखा, हवेली से बाहर जाने का द्वार बन्द है।

विभा ने भय से काँपते हुए रुद्ध कण्ठ से कहा—"भैया, शायद सुरङ्ग की राह से बाहर जाने का दरवाज़ा खुला हो। वहीं चलो।" सबके सब उसी तरफ़ चले। घोर अन्धकार में टटोल टटोल कर सीढ़ी पर पाँव रखते हुए नीचे जाने लगे। रामचन्द्रराय ने मन में कहा—"इन सीढ़ियों से नीचे

जाने पर मालूम होता है फिर कोई ऊपर न आ सकेगा। जान पड़ता है वासुकी नाग का बिल यही है और पाताल में प्रवेश करने की सीढ़ियाँ यही हैं। सीढ़ियों को पार कर द्वार के निकट जा कर देखा दरवाज़ा बन्द है। फिर धीरे धीरे उसी रास्ते से सब लौट आये। हवेली से बाहर होने के जितने रास्ते हैं सब बन्द हैं। सब मिल कर हवेली के दरवाज़े दरवाज़े घूमे। हरेक द्वार पर दो तीन बार गये। सभी बाहर से बन्द थे।

जब विभा ने देखा, बाहर होने का कोई रास्ता नहीं है तब उसने आँसू पोंछ डाला और स्वामी का हाथ पकड़ कर अपने शयनागार में ले गई। द्वार के निकट खड़ी हो कर उसने अकम्पित स्वर से कहा—"देखूँ तो, इस घर से निकाल कर तुम्हें कौन ले जा सकता है? तुम जहाँ जाओगे, मैं तुम्हारे साथ जाऊँगी, देखूँगी मुझे कौन रोकता है।" उदयादित्य ने द्वार के निकट खड़े हो कर कहा—"मैं जब तक जीता रहूँगा कोई घर के भीतर पैर न रख सकेगा।" सुरमा कुछ न बोल कर स्वामी की बग़ल में जा कर खड़ी हुई। वृद्ध वसन्तराय सब के आगे आ कर खड़े हुए। मामा धीरे धीरे चले गये। किन्तु रामचन्द्रराय को यह सब प्रबन्ध पसन्द न आया। वे सोच रहे थे—"प्रतापादित्य जिस प्रचण्ड स्वभाव के मनुष्य हैं वे क्या नहीं कर सकते हैं। विभा और उदयादित्य बीच में पड़ कर कुछ कर सकेंगे ऐसा तो भरोसा नहीं होता। इस मकान से किसी तरह बाहर हो जाने ही पर प्राण बच सकता है।"

कुछ देर के बाद सुरमा ने कोमल स्वर में उदयादित्य से कहा—"हम लोगों के यहाँ खड़े रहने से कुछ उपकार होगा

यह जान नहीं पड़ता—"बल्कि इसका फल उलटा ही होना सम्भव है। महाराज के कर्तव्य में जितनी ही बाधा डाली जायगी उतना ही उनका सङ्कल्प और दृढ़तर होगा। आज रात में ही किसी तरह हवेली से इनके भागने का उपाय कर दीजिए।"

उदयादित्य कुछ देर तक चिन्तित भाव से सुरमा के मुँह की ओर देख कर बोले—"अच्छा, मैं जाता हूँ। बल प्रयोग करके देखूँ। शायद काम निकल जाय?"

सुरमा—"जाइए।"

उदयादित्य ने अपने ऊपर का कपड़ा उतार कर वहीं रख दिया। सुरमा कुछ दूर तक उनके साथ साथ गई। वह एकान्त स्थान में जाकर उदयादित्य के गले से लिपट गई। उदयादित्य सिर झुका कर बड़े प्रेम से उसका मुँह चूम कर तुरन्त वहाँ से आगे बढ़े। सुरमा लौट कर अपने शयनागार में आई। उस की आँखों से आँसू की धारा बह चली। वह हाथ जोड़ कर भगवती से प्रार्थना करने लगी—"हे देवि, यदि मैं सच्ची पतिव्रता हूँ तो इस बार मेरे स्वामी की महाराज के हाथ से रक्षा करो। मैंने जो आज उनको ऐसे सङ्कट में जाने दिया है, यह माँ केवल तुम्हारे ही भरोसे! यदि इस विपत्काल में तुम मेरे पति की रक्षा न करोगी, तो फिर संसार में तुम्हारा कोई विश्वास न करेगा।" सुरमा का गला भर आया। वह रोने लगी। उसने अँधेरे में बैठ कर मन ही मन कितनी ही बार माँ, माँ, कह कर पुकारा, पर उसके हृदय ने स्पष्ट कह दिया कि माँ ने तुम्हारी पुकार न सुनी। उसने जो मन ही मन उनके पैरों पर कुसुमाञ्जली चढ़ाई उसको उन्होंने ग्रहण न किया। उनके पैरों पर से

मानो वह नीचे गिर पड़ी । सुरमा ने करुणस्वर से रोकर कहा, "क्यों माँ ! मैंने क्या अपराध किया है ? इस प्रश्न का भी कुछ उत्तर न मिला । उस अन्धकार में सुरमा को जान पड़ा, जैसे चारों ओर प्रलय की मूर्ति नाच रही हो । उसकी आँखों के सामने विपद् ही विपद् दिखाई दे रही है । वह मारे भय के अपनी कोठरी में अकेली नहीं बैठ सकी । वहाँ से उठ कर विभा के शयनगृह में चली आई ।

वसन्तराय ने अधीर स्वर में कहा—"उदय अब तक भी लौट कर न आया । न मालूम क्या होनी है ?"

सुरमा ने दीवार के बल खड़ी होकर कहा—"विधाता को जो करना होगा वही होगा ।"

रामचन्द्रराय उस वक्त मन ही मन अपने पुराने नौकर राममोहन का सर्वनाश कर रहे थे । क्यों नहीं, उसी के कारण ये सब सङ्कट आ पड़े हैं । जिस जिस प्रकार से उसका दण्ड होना सम्भव था, मन ही मन उसका विधान कर रहे थे । बीच बीच में जब एकाध बार उन्हें होश हो आता है, सज़ा देने का अवसर हाथ न आवेगा तब यह सोच कर वे पछताते हैं, शायद ।

उदयादित्य तलवार के हाथ सदर दरवाज़े पर जाकर ज़ोर से किवाड़ में पैरों की ठोकर मार कर बोले—"कौन है ?"

बाहर से जवाब आया—"जी, मैं सीताराम ।"

युवराज ने कड़क कर कहा—"जल्दी द्वार खोलो ।"

उसने तुरन्त दरवाज़ा खोल दिया । उदयादित्य जब वहाँ से आगे बढ़ने को उद्यत हुए तब उसने हाथ जोड़ कर कहा—

"युवराज, माफ़ कीजिए, आज रात में हवेली से किसी को बाहर जाने का हुक्म नहीं है।"

युवराज ने कहा—"सीताराम, तो क्या तुम भी मेरे विरुद्ध अस्त्र धारण करोगे? अच्छा तो आओ।" यह कह कर उन्होंने म्यान से तलवार खैंच ली।

सीताराम ने हाथ जोड़ कर कहा—"नहीं युवराज साहब, मैं आपके विरुद्ध अस्त्र धारण नहीं कर सकता। आपने दो बार मेरे प्राण बचाये हैं।" यह कह कर उसने उनके पैरों की धूल सिर में लगाई।

युवराज—"तो तुम क्या चाहते हो? शीघ्र कहो, अब समय नहीं है।"

सीताराम—"जिस जीवन की रक्षा आपने दो बार की है, इस बार आप उसका विनाश न कीजिए, मेरा हथियार ज़ब्त कर लीजिए और मेरे हाथ पाँव ख़ूब कस कर बाँध दीजिए। नहीं तो महाराज के सामने कल मेरी रक्षा का कोई उपाय नहीं।"

युवराज ने उसका अस्त्र ले लिया और उसी के कपड़े से उसको ख़ूब कस कर बाँध दिया। वह उसी जगह पड़ा रहा। युवराज वहाँ से आगे बढ़े। कुछ दूर आगे साधारण उँचाई की एक दीवार थी। उस दीवाल में एक मात्र द्वार था, वह भी अभी बन्द है। हवेली से बाहर होने का वही एक प्रधान मार्ग था। युवराज द्वार में धक्का न देकर एक दम फाँद कर दीवार पर चढ़ गये। उन्होंने देखा, उस द्वार का रक्षक दीवार का सहारा ले कर मज़े में सो रहा है। वे बड़ी सावधानी से

नीचे उतर पड़े और उन्होंने बड़ी तेज़ी से उस पहरेदार के पास जा कर पहले उसका हथियार दूर फेंक दिया और उस असावधान पहरेदार को सिर से पैर तक ख़ूब कस कर बाँध दिया। उसके पास कुञ्जी थी। कुञ्जी लेकर उन्होंने दरवाज़ा खोला। इतनी देर बाद पहरेदार को होश हुआ, उसने विस्मित-स्वर में कहा—"युवराज यह क्या करते हो?"

युवराज ने कहा—"भीतर का रास्ता खोलता हूँ।"

पहरेदार ने कहा—"मैं कल महाराज के निकट क्या जवाब दूँगा?"

उदयादित्य ने कहा—"जवाब देना कि युवराज ने ज़बर-दस्ती हम लोगों को पराजित करके दर्वाज़ा खोल डाला। इससे तुम्हारी जान बच जायगी।"

उदयादित्य हवेली से बाहर होकर जिस घर में जामाता के साथी लोग थे पहले वहीं गये। उस घर में केवल राममोहन और रमाई सोया था और लोग खा-पीकर जहाज़ पर चले गये थे। युवराज ने धीरे धीरे राममोहन की देह पर हाथ रख कर जगाया। वह चौंक कर जाग उठा और अचम्भे में आकर कहा—"युवराज साहब! क्या है?"

युवराज ने कहा—"बाहर आओ।" राममोहन बाहर आया। युवराज ने राममोहन से सब हाल कहा।

तब राममोहन ने सिर पर चादर लपेट कर मज़बूती से लाठी पकड़ी और अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहा—"देखूँगा लछमन सर-दार कितना बड़ा आदमी है। युवराज, आप हमारे महाराज को एक बार सिर्फ़ मेरे पास ले आवें मैं अकेला इस लाठी से एक सौ मनुष्यों को भगा सकता हूँ।"

युवराज ने कहा—"यह मैं मानता हूँ, किन्तु यशोहर राजधानी में एक सौ से कहीं ज़ियादा आदमी हैं। तुम ज़बरदस्ती कुछ न कर सकोगे। कोई दूसरा उपाय सोचो।"

राममोहन ने कहा—"अच्छा, महाराज को एक बार मेरे पास ले आइए। मेरे पास जब आ कर वे खड़े होंगे तब मैं निश्चिन्त हो कर उपाय सोच सकूँगा।" उदयादित्य हवेली के अन्दर जा कर रामचन्द्र को बुला लाया। वे और उनके साथ सभी आये।

रामचन्द्रराय राममोहन को देखते ही क्रोध से प्रज्वलित हो कर बोले—"तुझको मैंने अभी मौकूफ़ कर दिया—तू दूर हो जा, तू पुराना आदमी है, तुझे इससे अधिक और क्या दण्ड दूँ? यदि मैं इस यात्रा में बच कर गया तो फिर तेरा मुँह न देखूँगा।" कहते ही कहते रामचन्द्र का गला रुक गया। असल में वे राममोहन को जी से चाहते थे।

राममोहन ने हाथ जोड़ कर कहा—"महाराज, मुझको मौकूफ़ करनेवाले आप कौन? मेरी यह नौकरी ईश्वर की दी हुई है। जिस दिन यमराज के यहाँ से बुलाहट होगी उसी दिन ईश्वर मेरी यह नौकरी छुड़ावेंगे। तुम मुझे रक्खो चाहे न रक्खो, मैं तुम्हारा नौकर हूँ।" यह कह कर वह रामचन्द्र के आगे आकर खड़ा हुआ।

उदयादित्य ने पूँछा—"राममोहन, क्या उपाय सोचा?"

राममोहन—"आपके श्रीचरण के आशीर्वाद से यह लाठी ही उपाय है और कलिका माता के चरण का भरोसा है।"

उदयादित्य ने सिर हिला कर कहा—"यह उपाय ठीक नहीं। अच्छा, राममोहन तुम्हारा जहाज़ किस तरफ़ है?"

राममोहन—"राजभवन की दक्खिन ओर वाली नहर में।"

उदयादित्य—"चलो, एक बार छत के ऊपर चलें।"

राममोहन की बुद्धि में एक उपाय आया। उसने कहा—"हाँ, ठीक बात, वहीं चलिए।"

सब कोई कोठे की छत पर चढ़े। छत से प्रायः दस हाथ नीचे नहर है। उसी नहर में रामचन्द्र का चौंसठ पतवारों का जहाज़ लगा हुआ है। राममोहन ने कहा—"मैं रामचन्द्रराय को अपनी पीठ पर बाँध कर छत पर से नहर में कूद पड़ूँगा"

वसन्तराय भयभीत होकर झट राममोहन को पकड़ कर बोल उठे—"नहीं, नहीं, यह कैसे होगा? राममोहन तुम ऐसा असम्भव काम न करो!"

विभा डर से चौंक कर बोली—"नहीं, मोहन, यह क्या कह रहे हो।" रामचन्द्र ने कहा—"नहीं, राममोहन, यह ठीक न होगा।"

तब उदयादित्य कोठे से नीचे उतर कर ख़ूब मोटी और बड़ी बड़ी कितनी ही चादरें एकत्र करके ले आये। राममोहन ने उन चादरों को ऐंठ कर और बीच बीच में गाँठ देकर एक बहुत बड़ी रस्सी बनाई। जिस तरफ़ जहाज़ था, उसने उस तरफ़ वाली छत के ऊपर के एक छोटे से पाये के साथ उस रस्सी का एक छोर ख़ूब मज़बूती से बाँधा। रस्सी नीचे लटकाई गई तो वह नाव के ऊपर तक जा पहुँची। राममोहन ने रामचन्द्रराय से कहा—"महाराज, आप मेरी पीठ को ख़ूब

ज़ोर से लिपट कर पकड़ें। मैं रस्सी के सहारे नीचे उतर पड़ूँगा। रामचन्द्रराय ने निरुपाय होकर राममोहन की इस बात को क़बूल कर लिया। राममोहन ने, वहाँ जितने लोग थे सब के पैर छूकर प्रणाम किया। आख़िर 'जय माँ काली' कह कर उसने रामचन्द्र को अपनी पीठ पर चढ़ा लिया। रामचन्द्रराय ने आँखें मूँद कर ख़ूब ज़ोर से राममोहन की पीठ पकड़ी। चलते समय राममोहन ने विभा की ओर देख कर कहा—"माँ, मैं अब जाता हूँ, तुम्हारी इस सन्तान के रहते तुम्हें क्या डर है?"

राममोहन ने दोनों हाथों से ख़ूब कस कर रस्सी पकड़ी। विभा पाये पर भार देकर और छाती को पत्थर करके खड़ी रही। वृद्ध वसन्तराय का शरीर भय से काँपने लगा। वे आँखें मूँद दुर्गादेवी का स्मरण करने लगे। राममोहन रस्सी के सहारे जब नीचे तक पहुँच गया, तब उसने दाँतों से रस्सी को ख़ूब कस कर पकड़ा और रामचन्द्र को पीठ पर से उतार दोनों हाथों से उनकी बाहें पकड़ कर बड़ी सावधानी से नाव पर खड़ा कर दिया। पीछे वह आप भी नाव पर कूद पड़ा। रामचन्द्र नाव पर पाँव रखते ही बेहोश हो गये। उधर विभा भी एक लम्बी साँस ले मूर्छित हो गिर पड़ी। वसन्तराय आँखें खोल कर बोल उठे—"अरे यह क्या हुआ?" उदयादित्य विभा को उसी बेहोशी की हालत में उठा कर नीचे महल में ले गये। सुरमा ने उदयादित्य का हाथ पकड़ कर कहा—"अब आपने अपने लिए कौन सा उपाय सोचा है?"

उदयादित्य—"तुम मेरे लिए कुछ चिन्ता न करो।"

इधर मल्लाह रामचन्द्रराय को नाव पर सवार कर बड़े वेग से नाव को ले चले। कुछ दूर जा कर नाव एकाएक अटक गई। बड़े बड़े सखुए के शहतीरों से नहर का मुँह बन्द था। इसी समय पहरेदारों ने दूर से देखा—"जहाज़ भागा जा रहा है।" उन्होंने पत्थर चलाना आरम्भ किया, पर एक भी पत्थर वहाँ तक न पहुँचा। पहरेदारों के हाथ में तलवार थी पर बन्दूक़ न थी। एक आदमी दौड़ कर बन्दूक़ लाने गया। बहुत खोज ढूँढ़ से बन्दूक़ मिली भी तो चकमक नहीं मिला। कोई बारूद लाने गया, कोई गोली की खोज में गया, पहरेदार इस तरह दौड़ धूप में लगे थे, तब तक राममोहन और माँझी लकड़ियों को हटा कर किसी तरह नाव को खींच खाँच कर आगे बढ़ा ले गये। जहाज़ को जाते देख उसे पकड़ने के लिए पहरेदार एक दूसरा जहाज़ लाने गये। जिस प्यादे पर नाव लाने का भार दिया गया था उसने रास्ते में हरिदास मोदी की दूकान में बैठ कर एक चिलम तम्बाकू पीपी और रामशङ्कर को सोये से जगा कर अपनी लगानी का रुपया शीघ्र चुका देने के लिए तक़ाज़ा किया। जब नाव की कोई ज़रूरत ही न रही तब बड़े वेग से नाव वहाँ आ पहुँची। विलम्ब से नाव लाने के कारण सबके सब उस प्यादे को ललकारने लगे। उसने कहा—"मैं घोड़ा तो था नहीं जो क्षण भर में लौट आता। जब उन लोगों के परस्पर का वादानुवाद ख़तम हुआ तब उन लोगों को होश हुआ कि नाव पकड़ने की अब कोई सम्भावना न रही। नाव लाने में जितनी देर हुई थी, परस्पर लड़ने झगड़ने में उसका तीन गुना ज़्यादा समय बीता। जब रामचन्द्र का जहाज़ भैरव नद में जा पहुँचा तब फर्नान्डिज़ ने एक तोप की आवाज़ की। रात्रि के अंत में प्रतापादित्य को कुछ नींद

आई थी किन्तु उस तोप की आवाज़ से नींद टूट गई। वे पुकार उठे—"दरबान।" कोई नहीं आया । द्वार के रक्षक-गण रात ही में भाग गये थे। प्रतापादित्य ने फिर ख़ूब ज़ोर से पुकारा—"दरबान।"



# बारहवाँ परिच्छेद ।

प्रतापादित्य ने ख़ूब ज़ोर से पुकारा—"दरवान।" जब कोई नहीं बोला, तब उन्होंने झट बिछौने से उठ कर बड़ी तेज़ी से बाहर आ कर दीवान को पुकारा। एक नौकर दौड़ कर मन्त्री को बुला लाया, और जहाँ प्रतापादित्य थे ले गया।

प्रतापादित्य—"दीवान, पहरेदार लोग कहाँ गये ?"

मन्त्री—"बाहर के दर्वाज़ेवाले पहरेदार भाग गये।"

मन्त्री ने देखा, भारी बला सिर पर आना चाहती है। इसी से उन्होंने प्रतापादित्य की बात का स्पष्ट और यथार्थ उत्तर दे दिया। कारण यह कि जितना ही घुमा फिरा कर और देर करके उनकी बात का जवाब दिया जाता उतना ही वे क्रोध से आग बबूला हो उठते।

प्रतापादित्य ने कहा—"भीतर के पहरेदार ?"

मन्त्री ने कहा—"मैंने अभी आते समय देखा है, उनके हाथ पैर बँधे हैं और वे पड़े हैं।" मन्त्री रात का हाल कुछ भी नहीं जानता था। क्या हुआ है, वह इसका कुछ अनुमान भी नहीं कर सकता है। उसने इतना ही समझा है कि कोई एक भयङ्कर दुर्घटना है। उस वक्त इस विषय में महाराज से कुछ पूँछना भी असम्भव था।

प्रतापादित्य बड़े क्रोध से बोल उठे—"रामचन्द्रराय कहाँ हैं? उदयादित्य कहाँ हैं? और वसन्तराय कहाँ हैं?"

मन्त्री ने धीरे धीरे कहा—"मालूम होता है वे लोग हवेली ही में हैं।"

प्रतापादित्य ने झल्ला कर कहा—"मालूम तो मुझे भी होता है। तब तुमसे मैंने पूछा किस लिए? अनुमान की बात सब समय में सच नहीं होती।"

मन्त्री कुछ न बोल कर धीरे धीरे बाहर हो गये। रमापति के पास से रात की सारी घटनायें ज़ाहिर हुईं। जब सुना, रामचन्द्रराय भाग गये हैं, तब उनके मन में भारी चिन्ता हुई। मन्त्री ने बाहर जा कर देखा, छोटे क़द का रमाई मसख़रा बैठा है। मन्त्री को देख कर रमाई ने कहा—"यही तो जाम्ब-वान् मन्त्री हैं।" यह कह कर उसने दाँत निकाले। उसकी इसी हास्यलीला को रामचन्द्र के दरबार के सभासद् गण रसिकता समझते हैं, विभीषिका (भयप्रदर्शन) नहीं। मन्त्री उसका यह सादर सम्भाषण सुन कर कुछ न बोले। उन्होंने उसकी ओर दृक्पात भी न किया। एक नौकर से कहा—"इसको ले चलो।" मन्त्री ने विचारा—बिलकुल बखेड़े की जड़ यही दुष्ट है। इसे अभी प्रतापादित्य के क्रोधाग्नि के सामने खड़ा कर देना हूँ। प्रतापादित्य की चोट एक न एक व्यक्ति के ऊपर जा कर गिरेहीगी। वह इसी पर पड़े और लोग रक्षा पावें।

रमाई को देखते ही प्रतापादित्य एक दम जल उठे। उस पर भी जब उसने प्रतापादित्य को सन्तुष्ट करने के लिए दाँत दिखा कर और हाथ मुँह चमका कर कोई हास्यरस की बात

कहने का उपक्रम किया तब प्रतापादित्य को बर्दाश्त न हुआ। वे झट आसन से उठ कर और दोनों हाथ हिला कर बड़ी घृणा से बोल उठे—"हटाओ, हटाओ, इसे अभी सामने से दूर करो। उसको मेरे सामने किसने लाने कहा?" प्रतापादित्य को क्रोध के साथ ही साथ यदि घृणा उत्पन्न न होती तो रमाई इस यात्रा में रक्षा नहीं पाता। घृणास्पद (अश्रद्धेय) व्यक्तियों को प्रहार करने में भी स्पर्श करना होता है। रमाई तुरन्त वहाँ से निकाल दिया गया।

मन्त्री ने कहा—"महाराज, राज-जामाता —— "

प्रतापादित्य ने घृणा के साथ सिर हिला कर कहा—"रामचन्द्रराय——"

मन्त्री—"हाँ, वे कल्ह रात में ही राजभवन छोड़ कर चले गये।"

प्रतापादित्य ने खड़े होकर कहा—"राजभवन छोड़ कर चला गया। पहरेदार सब कहाँ गये?"

मन्त्री—"बाहर के पहरेदार भाग गये हैं।"

प्रतापादित्य ने क्रोध से मुट्ठी बाँध कर कहा—"भाग गया है? भाग कर कहाँ जायगा? जहाँ हो वहाँ से ढूँढ़ कर लाना होगा। अभी भीतर के पहरेदारों को बुलाओ।" मन्त्री फिर वहाँ से बाहर गये।

रामचन्द्रराय जब नाव पर सवार हुए तब भी अन्धेरा ही था। उदयादित्य, वसन्तराय, सुरमा और विभा सबके सब उस रात में जगे रहे। विभा न कुछ बोली, न रोई अचेष्टभाव से पड़ी रही। सुरमा उसके पास बैठ कर उसके माथे पर हाथ

फेरती थी। उदयादित्य और वसन्तराय चुपचाप बैठे थे। घर में रौशनी न थी। अन्धकार में किसी का मुँह किसी को साफ़ साफ़ दिखाई नहीं देता था। घर के भीतर मानो कोई एक व्यक्ति छिपा है। केवल उसका श्वास निश्वास सुना जा रहा है, पर कहीं कुछ दिखाई नहीं देता।

ख़ुश दिल वसन्तराय चारों ओर उदासी देख कर एक दम व्याकुल हो पड़े हैं। वे अपने गंजे सिर पर बराबर हाथ फेर रहे हैं और मन ही मन सोच रहे हैं—"हाय, यह क्या हुआ! ये सब व्यापार उनकी समझ में नहीं आते। ये घटनायें उन्हें एक भयङ्कर दुःस्वप्न के बराबर मालूम होती हैं। उन्होंने उदयादित्य का हाथ पकड़ कर अधीर स्वर में कहा—"बच्चा!"

उदयादित्य—"क्या दादाजी?"

वसन्तराय चुप हो रहे। वे उदयादित्य से क्या पूछेंगे इसका वे कुछ निश्चय नहीं कर सकते। हज़ारों प्रश्न उनके मन में उपर्युपरि जाग्रत हो रहे हैं। उनके सब प्रश्नों का सारांश यही कि—"यह क्या?" चारों ओर का अन्धकार इस तरह की विभीषिका दिखा कर एक अपरिचित शब्द में उनके कानों के पास क्या कह रहा है, वे उसे कुछ भी नहीं समझ सकते। ऐसे समय में उदयादित्य की बोली सुन कर भी उनके मन में धैर्य्य हो आता है। वे उदयादित्य का हाथ पकड़ कर बड़ी अधीरता के साथ बोले—"यह सब फ़साद क्या मेरे ही कारण हुए हैं?" वसन्तराय के मन में बार बार यही आशङ्का होने लगी कि उनको न मार सकने ही के कारण प्रतापादित्य ने ये सब उत्पात मचाये हैं, उसी से ये सब दुर्घटनायें घटी हैं। उदयादित्य उस समय चिन्ता में निमग्न थे। अधिक बात बोलने

को उनका जी न चाहता था। इसीसे उन्होंने थोड़े ही में कहा, "नहीं दादाजी !" बड़ी देर तक कोई कुछ न बोला। आखिर फिर वसन्तराय बोले—"विभा, तू कुछ बोलती क्यों नहीं ?" विभा ने भी उनके प्रश्न का कुछ उत्तर न दिया। तब वे सुरमा के पास जाकर बैठे और उसका नाम लेकर उन्होंने उसे पुकारा। सुरमा ने आँख उठा कर एकबार उनकी ओर देखा, पर वह कुछ बोली नहीं। बूढ़े वसन्तराय चुपचाप बैठे हुए सिर पर हाथ फेरने लगे और अपने लिए एक अनिश्चित भावी विपद् की आशङ्का करने लगे। सुरमा चुपचाप बैठी हुई विभा के मस्तक पर हाथ फेर रही थी। पर उसके अन्तःकरण में जो उस समय कष्ट हो रहा था, उसे अन्तर्यामी भगवान् के सिवा दूसरा कौन जान सकता था। सुरमा ने उस अँधेरे में एक बार उदयादित्य के मुँह की ओर देखा। उदयादित्य उस समय दीवार पर सिर अड़ाये एकाग्र मन से कुछ सोच रहे थे। सुरमा की आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। उसने धीरे से उसे पोंछ डाला। सुरमा छिप कर रोई पर उसका रोना विभा से छिपा न रहा। वह समझ गई।

जब अच्छी तरह आसमान साफ़ हुआ, चारों ओर सूर्य्य की किरण फैली तब वसन्तराय ने लंबी साँस ले कर शान्ति पाई। तब उनके मन से एक अनिर्दिष्ट भय का भाव दूर हुआ। तब स्थिर चित्त हो कर उन्होंने सारी घटना को एक बार सोच कर देखा। वे विभा के घर से चल पड़े। हवेली के सदर फाटक पर, जहाँ सीताराम बँधा पड़ा था, गये। उससे कहा— "देखो, सीताराम, तुमसे जब प्रताप पूछेंगे कि किसने तुम्हें बाँधा है तब तुम मेरा नाम बतलाना। प्रताप जानते हैं, किसी

समय वसन्तराय वलिष्ठ था, वे तुम्हारी वात का विश्वास करेंगे।"

सीताराम प्रतापादित्य के पास जा कर क्या जवाव देगा अभी तक वह इसी वात को सोच रहा था। इस मामले में उदयादित्य का नाम लेना वह किसी तरह नहीं चाहता था। उसने अपने मन में यही ठीक कर रक्खा था कि पूछे जाने पर वह टेढ़े पाँव, तीन आँख के, ताड़ के वरावर आकार वाले भूत को मुजरिम वनावेगा। किन्तु वसन्तराय को पा कर उसने निर्दोषी भूत वेचारे को फ़ुरसत दी। वसन्तराय की बात से वह तुरन्त राज़ी हुआ। तव उन्होंने दूसरे पहरेदार के पास जा कर कहा—"भागवत, प्रताप के पूछने पर तुम कहना कि वसन्तराय ने तुम्हें बाँधा है।" भागवत को एकाएक धर्म्म का ज्ञान अत्यन्त प्रवल हो उठा—असत्य के ऊपर क्रोध उत्पन्न हुआ; उसका मुख्य कारण यही कि वह उदयादित्य के ऊपर बहुत ख़फ़ा हो उठा था।"

भागवत ने कहा—"हरे हरे! ऐसी बात मुझसे न कहिए, इसमें मुझको अधर्म होगा।"

वसन्तराय ने उसके कन्धे पर हाथ रख कर कहा—"भागवत, मेरी बात सुनो, इसमें कोई पाप नहीं। भले आदमी के प्राण वचाने के हेतु झूठ बोलने में यदि पाप होता तो ऐसा करने के लिए मैं तुमसे अनुरोध क्यों करता?" वसन्तराय ने उसके कन्धे और उसकी पीठ पर हाथ रख कर बार बार समझाने की चेष्टा की, किन्तु लोगों को जब धर्मज्ञान एकाएक अत्यधिक प्रवल हो उठता है, तब कोई युक्ति उसके पास नहीं चलती।

उसने कहा—"नहीं महाराज, मालिक के सामने झूठ बात कैसे बोलूँगा ?"

वसन्तराय बेतरह घबरा उठे, उन्होंने व्याकुल हो कर कहा—"भागवत, मेरी बात सुनो, मैं तुमसे समझा कर कहता हूँ। इस तरह की झूँठ बात बोलने में कोई पाप नहीं होता। देखो बाबू, अगर तुम मेरी बात रक्खोगे तो मैं तुम्हें ख़ुश कर दूँगा। अच्छा, अभी जो मेरे पास है सो लो।"

भागवत ने तुरन्त हाथ बढ़ा दिया और उन रुपयों को उसी समय टेंट में रख लिया। वसन्तराय कुछ निश्चिन्त हो कर लौट गये।

प्रतापादित्य के निकट उन दोनों पहरेदारों की पुकार हुई। मन्त्री उन दोनों को साथ ले गये। प्रतापादित्य अभी अपने उफनाये हुए क्रोध को दबा कर गम्भीर भाव से बैठे हैं। उन्हों ने प्रत्येक शब्द को धीरे धीरे स्पष्ट रूप से उच्चारण करके कहा—"कल रात में हवेली का फाटक क्यों कर खोला गया ?"

सीताराम का जी काँप उठा। उसने हाथ जोड़ कर कहा, "दुहाई महाराज बहादुर की, मेरा कोई क़सूर नहीं।"

महाराज ने भौंहें सिकोड़ कर कहा—"क़सूर की बात तुम से कौन पूछता है ?"

सीताराम ने झट कहा—"जी नहीं, हुज़ूर अर्ज़ करता हूँ, युवराज—युवराज मुझको ज़बरदस्ती बाँध कर हवेली से बाहर हुए थे।"

युवराज का नाम उसके मुँह से एकाएक बाहर हो ही गया। उसने सब बातों की अपेक्षा इसी को विशेष रीति से

सोच रक्खा था कि वह नाम कहीं उसके मुँह से न निकले, किन्तु घबराहट के मारे सबके पहले उसके मुँह से यही नाम निकल पड़ा। एक बार जब मुँह से निकल पड़ा तब फिर उसके छिपाने का उपाय नहीं।

वसन्तराय ने सुना, पहरेदारों की पुकार हुई है। वे हड़-बड़ा कर प्रतापादित्य के पास जा पहुँचे। सीताराम का बयान हो रहा था। वह कह रहा था, युवराज को मैंने मना किया पर उन्होंने नहीं माना।"

वसन्तराय फ़ौरन बोल उठे—"हाँ, हाँ, सीताराम, क्या कहा? अधर्म न कर, सीताराम, समझ कर बात बोल. भगवान् तेरे ऊपर प्रसन्न होंगे। उदयादित्य का इसमें कोई दोष नहीं है।"

सीताराम ने बड़ी जल्दी में कह डाला—"जी नहीं। युराज का कोई क़सूर नहीं।"

प्रतापादित्य ने डपट कर कहा—"तब तेरा ही क़सूर है?"

सीताराम—"जी नहीं।"

"तब किसका क़सूर है?"

जी—युवराज———"

भागवत से जब पूँछा गया, तब उसने सब बातें ठीक ठीक बतला दीं। केवल अपनी बेख़बर हो कर सोने की बात उसने छिपाई। वृद्ध वसन्तराय ने चारों ओर अक़्ल दौड़ाई, कोई उपाय नहीं सूझा। आख़िर आँखें मूँद कर उन्होंने मन ही मन दुर्गा का स्मरण किया। दोनों पहरेदार उसी समय अपने काम से मुअत्तल किये गये और वे लोग यदि किसी

के द्वारा बलपूर्वक बाँधे ही गये तो वे पहरेदारी करने आये क्या सोच कर, इस अपराध के बदले उन दोनों को कोड़े मारने का हुकम हुआ।

तब प्रतापादित्य वसन्तराय के मुँह की ओर देख कर बज्राघात की तरह गरज कर बोले—"उदयादित्य के इस अपराध की क्षमा नहीं।" वे ऐसा भाव प्रकट कर बोले मानो उदयादित्य का वह अपराध वसन्तराय का ही है। मानो वे उदयादित्य को बीच में रख कर उन्हीं को फटकार बता रहे हैं। वसन्तराय के अपराध के आगे वे उदयादित्य के प्राण को तुच्छ समझते हैं।

वसन्तराय ने कहा—"प्रताप, उदय का इसमें कोई दोष नहीं है। प्रतापादित्य ने क्रोध से जल कर कहा, उदय का दोष नहीं है? तुम्हारा यह भाषण ही उसे अधिक दोषी बना कर दण्ड दिला रहा है। तुम्हें क्या पड़ी है जो इस बीच में पञ्चायत करने आये हो? उदय दोषी है या नहीं, इसकी व्यवस्था करने वाले तुम कौन?"

वसन्तराय ने जो उदयादित्य का पक्ष लिया है, उसीसे प्रतापादित्य का मन उदयादित्य से एक दम नाराज़ हो गया है। वसन्तराय ने देखा, उन्हीं के कारण उदयादित्य की इतनी सज़ा हो रही है, वे मन ही मन भाँति भाँति के सोच करने लगे।

कुछ देर बाद प्रतापादित्य कुछ शान्त होकर बोले—"अगर हम जानते कि उदयादित्य को कुछ मानसिक बल है, उसे कुछ समझ है, जो करता है, वह अपने ही विचार से करता है, यदि हम यह न जानते होते कि उस निर्बोध को जो चाहे आँखों

के इशारे पर नचा सकता है, यदि वह ऐसा निपट मूर्ख न होता तो आज उसका प्राण बचना कठिन था। मैं इस पतङ्ग को जहाँ उड़ते देखता हूँ, वहाँ यही सोचता हूँ कि कौन इसे उड़ा रहा है। इसी कारण उसे सज़ा देने का भी जी नहीं चाहता। वह अबोध बालक की भाँति दण्ड देने योग्य भी नहीं। यही समझ कर हम उसकी उपेक्षा करते हैं, किन्तु इस बार तुमसे समझा कर कह देते हैं यदि फिर कभी तुम यशोहर आकर उदयादित्य से मिलोगे तो उदयादित्य का प्राण बचना कठिन हो जायगा।

वसन्तराय बड़ी देर तक चुपचाप बैठे रहे। आख़िर उन्होंने धीरे धीरे उठ कर कहा—"अच्छा प्रताप, आज साँझ को मैं यहाँ से चला जाऊँगा।" और कुछ न बोल वे वहाँ से चल दिये और एक ठंडी साँस भरी।

प्रतापादित्य ने यही मन में पक्का किया, "जो कोई उदयादित्य को प्यार करता है, उदयादित्य जिन लोगों का वशीभूत है, उन लोगों को उदयादित्य के पास से अलग करना होगा।" उन्होंने मन्त्री से कहा—"बहूजी को अब यहाँ रहने देना ठीक नहीं, किसी युक्ति से उसे अपने बाप के घर भेज देना होगा।" विभा के ऊपर प्रतापादित्य की कोई आशङ्का न थी। हज़ार हो, फिर भी तो वह अपने घर की लड़की थी।

——:o*o:——

# तेरहवाँ परिच्छेद ।

वसन्तराय ने उदयादित्य के पास आ कर कहा—"अब तुमसे इस जीवन में फिर भेंट न होगी।" यह कह कर उस बूढ़े ने उदयादित्य के दोनों हाथ पकड़ लिए।

उदयादित्य ने विस्मित हो कर कहा—"क्यों दादाजी ?"

वसन्तराय ने सब हाल युवराज से कह सुनाया और रो कर कहा—"मैं जो तुम्हें प्यार करता हूँ, तुम्हें जी से चाहता हूँ, इसी से तुम्हारी इतनी दुर्दशा हो रही है। मैं यह कदापि नहीं चाहता कि मेरे कारण तुम इतना कष्ट सहो। मैं यही चाहता हूँ कि तुम कहीं रहो सुख से रहो। मैं अपने जीवन के शेष समय को किसी तरह बिता डालूँगा।

उदयादित्य ने सिर हिला कर कहा—"नहीं, यह कभी न होगा। हमारी आपकी भेंट होहीगी। उसमें कोई बाधा न डाल सकेगा। दादाजी, तुम यहाँ से चले जाओगे तो सच मुच हमारे कष्ट की सीमा न रहेगी।"

वसन्तराय ने व्याकुल हो कर कहा—"प्रताप ने मुझे जान से न मार कर उसके बदले तुमको मेरे पास से छीन लिया। यह क्या मेरे प्राणदण्ड से कम हुआ ? मैं जब यहाँ से चला जाऊँ तब भूल कर भी कभी मेरा नाम न लेना। समझ लेना "वसन्तराय मर गये।"

उदयादित्य वहाँ से उठ कर शयनागार में सुरमा के पास गये। वसन्तराय विभा के पास जा कर और उसका चिबुक स्पर्श करके बोले—"एक बार मेरा कहा मानो, उठ कर बैठो और इस बूढ़े के गंजे सिर पर एक बार अपना हाथ फेर दो।"

विभा उठ बैठी और दादाजी के शिरःस्थित पके बालों को चुनने लगी। उधर उदयादित्य ने सुरमा से सब हाल कह सुनाया और कहा—"संसार में मेरे लिए जो कुछ बच रहा है, उसे भी हटा देने की बात हो रही है।"

उन्होंने सुरमा का हाथ पकड़ कर कहा—"सुरमा, अगर तुमको मेरे पास से छीन कर कोई ले जाय?"

सुरमा ने उदयादित्य का गाढ़ालिङ्गन करके कहा—"आप के पास से मुझे छीन कर एक यमदूत ले जाय तो ले जाय, दूसरा कोई नहीं ले जा सकता।"

सुरमा के मन में भी कुछ दिनों से इस तरह की एक आशङ्का उठ रही थी। उसे मालूम होता था जैसे एक कठोर हाथ उसके प्रियतम को उसके पास से हटाने के लिए धीरे धीरे अग्रसर हो रहा है। सुरमा ने मन ही मन उदयादित्य को अपनी छाती से लगा कर कहा—"प्राणनाथ! मैं आपको अपने हृदय से अलग न होने दूँगा। मुझे कोई आपसे जुदा नहीं कर सकता।"

सुरमा ने प्रकट रूप से कहा—"मैं आपको छोड़ कर कहीं नहीं जा सकती, आपके पास से मुझे कोई नहीं हटा सकेगा।"

सुरमा इस बात को दुहरा तिहरा कर कई बार बोली। वह अपने हृदय में इतना बल सञ्चित करना चाहती है कि

जिससे वह उदयादित्य की छाती में इस तरह चिपट जाय कि कोई प्रवल से भी प्रवल शक्ति उन दोनों को पृथक् न कर सके। वह इस बात को सोच कर अपने मन में वज्र का बल बाँध रही है।

उदयादित्य ने सुरमा के मुँह की ओर देख कर और ठंडी साँस भर कर कहा—"सुरमा, हम लोग अब दादाजी को न देखने पावेंगे।"

सुरमा ने दीर्घनिश्वास त्याग किया।

उदयादित्य ने कहा—"सुरमा, मैं अपने दुःख के लिए नहीं सोचता, किन्तु दादाजी के मन में इस बात से बड़ी चोट लगेगी। देखूँ, विधाता और क्या करता है। उसकी और क्या इच्छा है।"

उदयादित्य ने वसन्तराय के सम्बन्ध की कितनी ही बातें सुरमा से कहीं। वसन्तराय ने कहाँ क्या कहा था, कहाँ क्या उपकार किया था ये सब बातें उनको याद आने लगीं। वसन्तराय के कोमल हृदय की कितनी ही साधारण साधारण बातें उन्होंने अपने अन्तःकरणरूपी भाण्डार में रत्नों की तरह संग्रह करके रक्खी थीं, आज उन सबों को एक एक कर सुरमा के पास बाहर करने लगे।

सुरमा ने कहा"—आ—हा! दादाजी के सदृश क्या कोई है?" सुरमा और उदयादित्य दोनों विभा के घर गये।

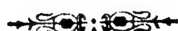
उस समय विभा अपने दादाजी के पके बालों को चुन रही थी और वे बैठे गीत गा रहे थे——

उदयादित्य को देख कर वसन्तराय ने हँस कर कहा—"देखो भाई, विभा मुझको छोड़ना नहीं चाहती। मैं जाऊँगा यह

सुन कर विभा रोती है। मुझसे तो विभा का रोना नहीं देखा जाता। यह कह कर वे फिर गाने लगे—

यह देखो, यह देखो, विभा की दशा देखो! देख विभा, अगर तू इस तरह रोयेगी तो—कहते कहते वसन्तराय की ज़बान रुक गई और कोई बात उनके मुँह से न निकली। वे विभा को धैर्य्य देने जाकर आप ही अधीर हो पड़े। वे अपने को न सँभाल सके। उन्होंने जल्दी जल्दी आँखों के आँसू पोंछ कर और हँस कर कहा—"यह देखो इधर सुरमा भी रो रही है। तुम लोग इस समय विभा को धीरज बँधाओ, नहीं तो मैं सच कहता हूँ, मैं नहीं जाऊँगा। वसन्तराय ने देखा, किसी ने कुछ जवाब न दिया, तब उन्होंने अधीर होकर अपना सितार उठा लिया और बड़े तेज़ सुर में बजाना शुरू किया। किन्तु विभा के नयनों में नीर देख कर उनके सितार बजाने में बड़ी ही गड़बड़ मची। उनकी आँखों में रह रह कर आँसू भर आने लगे। बीच बीच में विभा को और उपस्थित अन्य व्यक्तियों को भर्त्सना के व्याज से बहुत बातें कहने की इच्छा होने लगी, किन्तु वे कुछ बोल न सके। उनका गला भर आया। उन्होंने सितार बजाना बन्द करके उसे नीचे रख दिया। आख़िर उन के विदा होने का समय आ पहुँचा।

वे उदयादित्य को गले लगा कर आख़िरी बात यही कह गये कि "मैं यह सितार यहाँ रक्खे जाता हूँ अब सितार न बजाऊँगा। सुरमा, तुम दोनों सुख से रहो; विभा—" आगे उनसे कुछ कहते न बना, आँसू पोंछ कर वे पालकी में बैठ गये।



# चौदहवाँ परिच्छेद ।

यशोहर के एक ओर मङ्गला की झोंपड़ी थी । वह वहीं बैठ कर माला फेरा करती थी । एक दिन वह अपनी झोंपड़ी के बाहर बैठी मन ही मन कुछ गुनगुना रही थी । उसी समय साग भाजी की टोकरी माथे पर लिए राजभवन की दासी मातङ्गिनी उसके पास आ कर खड़ी हुई ।

मताङ्गिनी ने कहा—"आज मैं कुछ सौदा ख़रीदने हाट आई थी । चलते समय मैंने सोचा, बहुत दिन से मङ्गला बहन को नहीं देखा है, एक बार जा कर देख आती हूँ । बहन, आज बहुत काम करना है, ज़्यादा देर न ठहर सकूँगी । यह कह कर वह टोकरी नीचे रख कर मङ्गला के पास बैठ गई और बोली—"बहन, तुम तो सब जानती ही हो । वह मरदवा पहले मुझे दिल से प्यार करता था । प्यार तो अब भी करता है, तब बात यह कि उसका मन किसी और से लगा है, मैंने इसकी भनक पाई है । तुम ऐसा कोई टोना कर दो, जिसमें तीन रात के भीतर उस औरतिया का मरण हो ।"

मङ्गला के पास सभी रोगों की दवा है । मारण, मोहन, उच्चाटन और वशीकरण आदि सब उसकी मुट्ठी में हैं । विशेष कर वशीकरण तो ऐसा जानती है कि राजभवन के बड़े बड़े नौकर मङ्गला के घर में झाड़ूबरदार का काम करते हैं । जिस औरत के मरने से मातङ्गिनी का कलेजा ठंडा होगा वह और कोई नहीं, स्वयं मङ्गला है ।

मङ्गला ने मन ही मन हँस कर कहा—"उस औरत के मरने के लिए अभी क्या जलदी पड़ी है, यमराज का काम बढ़ा कर तब वह मरेगी।" हँस कर प्रकट में कहा, तुम्हारी ऐसी सुन्दरी को छोड़ कर कहीं और मन ले जायगा? क्या वह ऐसा गवाँर आदमी है? बेटी, तुम कुछ सोच न करो, उसका दिल फिर तुम वैसा ही पाओगी। दवा तुम्हारी आँखों ही के भीतर है। कुछ विशेष प्रयोग करके रसभरी चितवन से उस की तरफ़ देखना, उसमें यदि सफलता प्राप्त न हो तो यह जड़ी पान के साथ उसको खिला देना। यह कह कर उसने एक सूखी जड़ी ला कर उसके हाथ में रख दी।

मङ्गला ने मातङ्गिनी से पूँछा—"कहो, राजभवन का क्या हाल है?"

मातङ्गिनी ने हाथ चमका कर कहा—"उन सब बातों से हमें क्या प्रयोजन?"

मङ्गला ने कहा—"ठीक है।"

मङ्गला को इस विषय में एकाएक इस तरह राय मिल जायगी यह भरोसा मातङ्गिनी को न था। उसने कपटजा में फँस कर कहा—"तुमको कहने में कोई हर्ज़ नहीं, तब आज मुझको ज़्यादा वक्त़ नहीं। किसी दूसरे दिन सब हाल कहूँगी।"

मङ्गला ने कहा—"अच्छा, और किसी दिन सुना जाना।"

मातङ्गिनी घबरा उठी, बोली—"बहन, मैं अब जाती हूँ।" देरी होने से नाराज़गी में पड़ जाऊँगी। देखो बहन, उस दिन हमारे राजभवन में राजा के दामाद आये थे। वे जिस दिन

आये उसी रात में किसी से कुछ न कह कर चुपचाप चले गये ।"

मङ्गला ने कहा—"सच कहो ? चले गये ? क्यों चले गये ? कहो, कहो, इसी से तो कहती हूँ, मातङ्गन के सिवा अन्दर का हाल मुझे कोई नहीं सुना सकता ।"

मातङ्गिनी प्रसन्न होकर बोली—"असल बात यह है, हम लोगों की जो बहूजी हैं, वह अपनी आँखों किसी का भला नहीं देख सकतीं । वह कोई मन्तर जानती है, उसने स्वामी को एक दम भेड़ बना कर रक्खा है, वह—"नहीं बहन, मतलब क्या, कोई कहीं से सुन ले और जा कर कह दे कि मातङ्ग महल की बात बाहर कहती फिरती है ।"

मङ्गला कुतूहलाक्रान्त हो कर अपने मन के वेग को न रोक सकी; यद्यपि वह जानती थी, ज़रा देर और चुप कर जाने से मातङ्ग आप ही सब बात कह देगी, तथापि उससे विलम्ब न सहा गया । कहा—"बेटी यहाँ कोई नहीं है । आपुस की बात है । इसमें अनुचित क्या ? हाँ, तो तुम्हारी बहूजी ने क्या किया ——"

उसने, हमारी बबुई जी ( विभा ) के नाम दुलहा के पास क्या सब लगा बुझा कर कहा था उसी से दुलहाजी बबुई को छोड़ कर रातोंरात चले गये । बबुईजी की तो रोते रोते आँखें सूज गईं हैं । महाराज नाराज़ हो उठे हैं । वे बहूजी को श्रीपुर उसके बाप के घर भेजना चाहते हैं । यह देखो बहन, तुम सभी बातों में हँसती हो । इसमें हँसने की कौन सी बात है ? तुम्हारी हँसी रोके नहीं रुकती ।"

रामचन्द्रराय के भागने का ठीक सबब राजभवन के हर एक दास-दासी को मालूम था किन्तु किसी के साथ किसी की सहानुभूति न थी।

मङ्गला ने कहा—"तुम अपनी रानीजी से जाकर कहो कि बहूजी को इतना शीघ्र बाप के घर भेजने का कोई काम नहीं। मङ्गला ऐसी जड़ी दे सकती है जिससे युवराज का मन उससे एक दम फिर जायगा। यह कह कर हँसने लगी।"

मातङ्ग ने कहा—"हाँ, यह हो सकता है।"

मङ्गला ने पूछा—"क्या तुम्हारी बहूजी को युवराज बहुत प्यार करते हैं?"

"सो कहने की ज़रूरत क्या। उसको बिना देखे वे क्षण भर भी नहीं रह सकते। युवराज कहीं रहें पर "तू" कह कर पुकारे जाने के साथ बहूजी के पास दौड़ आते हैं।"

"अच्छा मैं जड़ी दूँगी, क्या दिन में भी युवराज उसी के पास रहते हैं?"

"हाँ।"

मङ्गला ने कहा—"वे दोनों, दिन रात साथ रह कर क्या करते हैं, यह कुछ समझ में नहीं आता। वह युवराज से क्या कहती है और क्या उनके साथ करती है, यह तुमने कभी देखा है?"

नहीं बहन, यह तो मैंने नहीं देखा है। अगर तुम मुझको एक बार राजभवन ले जाती तो मैं सब देख आती।

मातङ्ग ने कहा—"क्यों बहन, देखने के लिए तुम्हारा सिर इतना क्यों पिराता है?"

मङ्गला ने कहा—"नहीं, नहीं, एक बार देखने ही से मैं समझ जाऊँगी कि किस मन्त्र से उसने युवराज को वश कर रक्खा है। मेरा मन्त्र उस पर चलेगा कि नहीं ?"

मातङ्ग ने कहा—"अच्छा तो, मैं अब जाती हूँ।" यह कह कर वह अपना टोकरा लेकर चली गई।

मातङ्ग के चले जाने पर मङ्गला क्रोधाकुल हो उठी। वह दाँत पर दाँत पीसने और आँखें नचा कर आपही आप कुछ बकने लगी।



# पन्द्रहवाँ परिच्छेद ।



सन्तराय चले गये। साँझ हो चुकी है। विभा कोठे की छत पर गई। वसन्तराय ने पालकी के भीतर से सिर निकाल कर एक वार पीछे की ओर देखा। सायंकालिक अन्धकार के बीच अपनी आँसू भरी आँखों से दृढ़ पाषाण-रचित राजभवन की लम्बी दीवारों को झलमलाते देखा। पालकी चली गई। पर विभा वहीं खड़ी रही और दादाजी की पालकी की ओर देखती रही। तारे निकल आये। चिराग़ जलाये गये। सड़क पर कोई लोग नहीं तथापि विभा उसी ओर चुपचाप खड़ी ताक रही है। सुरमा ने विभा को सर्वत्र खोज ढूँढ़ कर जब कहीं नहीं देखा तब वह छत पर गई। उसने विभा को गले लगा कर स्नेह स्वर में कहा—"विभा! क्या देख रही हो?" विभा ने साँस लेकर कहा—"मैं नहीं जानती कि क्या देख रही हूँ।" विभा को चारों ओर शून्य ही शून्य दिखाई दे रहा है। उसके चित्त में चैन कहाँ? वह क्यों घर में जाती? क्यों घर के बाहर आती है? क्यों सो रहती है? क्यों उठ बैठती है और क्यों दोपहर दिन में हवेली के अन्दर इस घर से उस घर में घूमती फिरती है? इसका कारण कोई कैसे बता सकता है? मानो राजभवन से उसका सम्बन्ध उठ गया है। मानो हवेली के अन्दर उसके रहने का अब घर नहीं। अत्यन्त बाल्यावस्था से तरह तरह के खेल-कौतुक, नाना प्रकार के सुख-दुःख और हँसी-रुलाई ने मिल कर राजभवन के भीतर उसके लिए जो

एक हौसले का घर बाँध दिया था उस घर को एक ही दिन में किसी ने उजाड़ दिया। यह घर तो असल में उसका घर नहीं। वह अब इतनी बड़ी हवेली में बेघर की है। उसके दादाजी थे, चले गये। चन्द्रद्वीप से उसे ले जाने के लिए कब लोग आवेंगे? शायद राममोहन माल रवाना हुआ है इस घड़ी वे लोग न जाने कहाँ हैं? विभा के सुख का कुछ अंश अब भी बच रहा है। उसके अभी दादाजी हैं, उसकी प्राणाधार सुरमा है। किन्तु उन लोगों के सम्बन्ध में भी एक विपद् की आशङ्का छाया की तरह उसके पीछे लगी ही फिरती है। जिस घर के छप्पर में एक भयङ्कर गुप्त-रहस्यरूपी आग अप्रकटरूप से धधक रही है उस घर को क्या अब घर कहने को जी चाहता है?"

उदयादित्य ने सुना, सीताराम मौकूफ़ होने से बड़ी दुर्दशा में पड़ गया है। एक तो उसके पास पैसा नहीं, दूसरे उसके पास अनेक गलग्रह लोग जुटे हैं। कारण यह कि जब वह राजदर्बार से पूरी तनख़ाह पाता था तब उसका फूफा, एकाएक प्रेमाधिक्यवशतः अपने घर के सब काम-धन्धों को छोड़ कर उस प्रेमास्पद सीताराम की जुदाई के भय से अधीर हो उठा और सीताराम के पास आकर उसने आनन्द से गद्-गद होकर कहा कि "सीताराम को देखने ही से उसकी भूख प्यास दूर हो जाती है।" भूख प्यास दूर होने के अनेक कारण थे। किन्तु सीताराम को केवल देखने ही से उसकी भूख प्यास दूर होती थी, इस विषय का कोई सबूत नहीं। सीताराम की एक दूसर के नाते की विधवा बहन थी। उसके एक बेटे को काम-काज में भेजने का वह प्रबन्ध कर रहा था। इस समय एकाएक उसे चेत हुआ कि लड़के को छोटे कामों में नियुक्त करने से उसके मामा का अपमान होगा, यह समझ कर उसके

मामा के मानरक्षार्थ उसने उसे वैसे कामों में नियुक्त न किया। इसी तरह मानरक्षा करके उसने सीताराम को ऋण-जाल में फँसाया और उसके बदले अपने रोज़गार का प्रबन्ध कर लिया। इसके अलावा सीताराम के विधवा माँ है और एक छोटी सी अविवाहिता कन्या है। सीताराम आप बड़ा ही शौक़ीन और ख़ुशदिल आदमी है। बिना रङ्ग-रहस्य के उससे रहा नहीं जाता। सीताराम की अवस्था का परिवर्तन हुआ है। पर उसके साथ स्वभाव का परिवर्तन कुछ भी नहीं हुआ है। उसके फ़ूफा की भूख-प्यास वैसी ही बनी है। उसके भांजे की जितनी ही उम्र बढ़ रही है उतना ही उसके पेट का पसार और मामा के मान-अपमान के ऊपर दृष्टि विशेष रूप से बढ़ रही है। सीताराम के रुपये की थैली ख़ाली हो गई पर किसी का पेट ख़ाली होने का कोई लक्षण दिखाई नहीं देता। सीताराम को अन्यान्य गलग्रहों के साथ शौक़ भी पूर्ववत् बना है। उसके क़र्ज़ की मात्रा दिन दिन बढ़ रही है। जिस परिमाण से सूद बढ़ रहा है, ऋण भी उसी परिमाण से दिन दिन बढ़ रहा है। उदयादित्य ने सीताराम की दरिद्रता का हाल सुन कर उसको और भागवत को कुछ मासिक नियत कर दिया।

सीताराम रुपया पाकर बड़ा ही लज्जित हुआ। महाराज के निकट उदयादित्य का नाम लेने के दिन से उदयादित्य के संमुख वह अपने को बड़ा भारी अपराधी मानता है। उदयादित्य से रुपया पाकर उसने रो दिया। एक दिन युवराज को देख कर वह उनके पैरों में लिपट गया और भगवान् जगदीश्वर और दयामय आदि सम्बोधन करके उनसे क्षमा माँगी। भागवत बड़े गम्भीर मिजाज का आदमी था। वह शतरञ्ज

खेलना जानता था, तम्बाकू खाता था और पड़ोसियों को स्वर्ग-नरक की बातें बतलाता था । उसने जब उदयादित्य से रुपया पाया, तब उसने मुँह टेढ़ा करके अनेक प्रकार की भाव-भङ्गी द्वारा जनाया कि युवराज ने जो उसका सर्वनाश किया है, इन रुपयों से उसका कहाँ तक साधन होगा । रुपया लेने में उसने ज़रा भी उज्र न किया और न कुछ कृतज्ञता ही प्रकट की ।

युवराज उन दोनों पदच्युत पहरेदारों को मासिक वेतन अपने पास से दे रहे हैं । यह बात प्रतापादित्य के कानों तक पहुँची । पहले अगर यह बात होती तो उन तक कदाचित् न पहुँचती । पहले वे उदयादित्य को इतना हेय समझते थे कि उदयादित्य के सम्बन्ध की सब बातें उनके कानों तक नहीं पहुँचती थीं । महाराज जानते थे कि उदयादित्य प्रजाओं के साथ मिला है और कई बार प्रजाओं का पक्ष लेकर उसने उन के विरुद्ध आचरण किया है । किन्तु वे सब प्रायः ऐसे सामान्य और ऐसे छोटे छोटे विषय थे कि वे उस पर विशेष ध्यान नहीं देते थे । कोई विशेष विरुद्धाचरण न देखने के कारण उन्हें उदयादित्य पर विशेष मनोयोग देने का अवसर नहीं प्राप्त होता था । इस बार की घटना से उदयादित्य के ऊपर उनका ध्यान कुछ विशेष रूप से आकृष्ट हुआ है । इसीसे उपर्युक्त घटना फ़ौरन उनके कानों तक पहुँच गई । वेतन की बात सुन कर प्रतापादित्य अत्यन्त क्रुद्ध हुए । उन्होंने उदयादित्य को बुला कर कहा—"मैंने जो सीताराम और भागवत को मौक़ूफ़ कर दिया है सो क्या ख़ज़ाने में उनको वेतन देने योग्य द्रव्य न रहने के कारण ? तब तुमने अपने पास से उनका महीना क्यों मुक़र्रर कर दिया है ?"

उदयादित्य ने धीरे धीरे कहा—"सच्चा अपराधी मैं हूँ। आपने उन दोनों को दण्ड देकर असल में मुझको दण्डित किया है। मैं अपने इस विचार के अनुसार महीने महीने उनके निकट जुर्माने का रुपया दिया करता हूँ।"

इसके पहले प्रतापादित्य ने इस तरह मनोयोग दे कर उदयादित्य की बात कभी नहीं सुनी थी। उदयादित्य का धीर, गम्भीर और विनीत स्वर तथा उनकी थोड़ी सी बँधी बातें सुन कर प्रतापादित्य को बहुत ही बुरा लगा। उदयादित्य की बात का कोई जवाब न दे कर प्रतापादित्य ने कहा—"उदय, मैं आज्ञा देता हूँ, आइन्दे से उनके सहायतार्थ द्रव्य न दिया जावे।"

उदयादित्य ने कहा—"मेरे ऊपर और अधिक भारी दण्ड का हुक्म हुआ।" वे हाथ जोड़ कर फिर बोले—"मैंने ऐसा क्या अपराध किया है जिससे इतने बड़े दण्ड का भार उठाने की आज्ञा दी गई है? मैं कैसे देख सकता हूँ कि मेरे कारण आठ नौ आदमी भूखों मर रहे हैं और निराश्रय होकर गली गली मारे फिरते हैं। मेरी थाली में जब अन्न का अभाव नहीं है। मेरे पास जो कुछ है सब आपही की कृपा से। आप मेरी थाली में परिमाण से अधिक अन्न दे रहे हैं, किन्तु आप यदि मेरे भोजन के समय मेरे सामने आठ नौ निरुपाय क्षुधार्त व्यक्तियों को बैठा रक्खें और उनके मुँह में अन्न देने का निषेध करें तो वह आगे का अन्न मेरे लिए विष होगा या नहीं?"

आवेग में आये हुए उदयादित्य को प्रतापादित्य ने बात बोलने के समय कुछ बाधा न दी। जब उनकी सब बातें कही

जा चुकीं तब प्रतापादित्य ने धीरे धीरे कहा—"तुमको जो कहना था सो मैं सुन चुका। अब मैं जो कहता हूँ, सावधान हो कर सुनो—"भागवत और सीताराम का मासिक मैंने बन्द कर दिया है अगर कोई उनको मासिक मुक़र्रर कर दे तो वह मेरी इच्छा से विरुद्ध आचरण करने वालों में गिना जायगा।" प्रतापादित्य को मन ही मन कुछ विशेष क्रोध का उदय हुआ था। उस क्रोध का कारण वे ख़ुद भी नहीं समझ सकते थे। किन्तु उसका कारण यही कि मैंने एक भारी निर्दयता का काम किया है, दया की मूर्त्ति बन कर उदयादित्य उसका प्रतीकार करने क्यों आया है? वह दया करके क्या कर सकता है, जहाँ मैं निर्दय बन बैठा हूँ वहाँ और कोई दयालु हो कर क्या करेगा, इतनी बड़ी स्पर्धा की बात उन्हें कैसे सह्य हो सकती।

उदयादित्य ने सुरमा के पास जा कर सब वृत्तान्त कहा। सुरमा बोली—"हाय! हाय! उस दिन, दिन भर उन लोगों ने कुछ न खाया। दिन भर भूखे ही रह गये। शाम के समय सीताराम की माँ सीताराम की छोटी लड़की को लेकर मेरे पास आई और रोने लगी। मैंने सन्ध्या समय जब कुछ दिया तब उसने अपने बाल-बच्चों के साथ मिल कर खाया। सीताराम की लड़की दूध ही पीती है। वह दिन भर की भूखी थी। उसके मुँह की ओर क्या देखा जाता था। इन लोगों को थोड़ा बहुत कुछ न देने से ये लोग और कहाँ जायँगे? इनकी क्या दशा होगी?"

उदयादित्य ने कहा—"विशेष कर राजदरबार से जब वे लोग निकाले गये हैं, तब पिता के डर से कोई उन लोगों को

आश्रय देने या किसी तरह की सहायता करने का साहस नहीं कर सकता। इस वक्त अगर हम लोग भी मुँह छिपा लें तो इस संसार में कोई उनकी ख़बर न लेगा। मदद मैं करूँहीगा। सुरमा, उसके लिए तुम फ़िक्र न करो, किन्तु पिता को व्यर्थ अप्रसन्न करना भी ठीक नहीं। जिसमें यह काम छिपे तौर से हो—ऐसा प्रबन्ध करना होगा।"

सुरमा ने उदयादित्य का हाथ पकड़ कर कहा—"आपको कुछ न करना होगा। मैं सब प्रबन्ध कर दूँगी। इसका भार मेरे ऊपर रहने दो।"

सुरमा अपने द्वारा उदयादित्य को ढँक रखना चाहती थी। यह साल उदयादित्य के लिए अशुभ है। विधाता उन्हें जिस किसी काम में प्रवृत्त करते हैं सभी उनके पिता के विरुद्ध। और वे सब काम ऐसे कि सुरमा की ऐसी साध्वी स्त्री प्राण रहते स्वामी को उन धर्म-कामों से रोक भी नहीं सकती। सुरमा ऐसी वैसी स्त्री नहीं है। उसके स्वामी जब धर्मयुद्ध में जाते हैं तब सुरमा अपने हाथों से उन्हें कवच पहनाती है। उसके बाद वह घर में जा कर रोती है। सुरमा का जी क्षण क्षण भय से व्याकुल होता रहता है, तथापि वह उदयादित्य को समझा बुझा कर ढाढ़स देती है। उदयादित्य ने घोर संकट के समय सुरमा के मुँह की ओर दृष्टि देकर देखा है—सुरमा की आँखों में आँसू भर आये हैं, किन्तु उसके हाथ नहीं काँपते और न उसके पैर ही थरथराते हैं।

सुरमा ने अपनी एक विश्वासपात्र दासी के हाथ से सीताराम की माँ और भागवत की स्त्री के पास नियत वृत्ति

भेजने का प्रबन्ध कर दिया। दासी विश्वासपात्रा है सही, परन्तु मङ्गला के पास इस बात को छिपा रखना वह उतना ज़रूरी नहीं समझती। इस कारण मङ्गला को छोड़ कर और कोई आदमी यह हाल नहीं जानता था।



# सोलहवाँ परिच्छेद।

जब गुप्त रीति से वृत्ति भेजने की भी बात प्रतापादित्य ने सुनी, तब उन्होंने और कुछ न कह कर अन्दर हवेली में संवाद भेज दिया कि सुरमा को अपने बाप के घर जाना होगा। उदयादित्य ने अपनी छाती को वज्र किया। विभा ने रोकर और सुरमा के गले से लिपट कर कहा—"तुम अगर जाओगी तो इस श्मशान-भूमि में मैं अकेली कैसे रहूँगी?" सुरमा ने विभा की ठोड़ी पकड़ कर और उसका मुँह चूम कर कहा—"विभा, मैं क्यों जाऊँगी, मेरे सर्वस्व यहीं हैं।" सुरमा ने जब प्रतापादित्य की आज्ञा सुनी, तब उसने कहा—"मैं बाप के घर जाने का कोई कारण नहीं देखती। मुझे ले जाने के लिए वहाँ से कोई आया भी नहीं है। मेरा स्वामी भी इस विषय में राज़ी नहीं है। अतएव विना प्रयोजन एकाएक नैहर जाने की क्या आवश्यकता है?"

यह सुन कर प्रतापादित्य क्रोध से जल उठे। किन्तु उन्हों ने सोच करके देखा, इसका कोई उपाय नहीं है। सुरमा को ज़बरदस्ती घर से कोई बाहर कर ही नहीं सकता। अन्तःपुर में दैहिक बल कुछ काम नहीं देता। प्रतापादित्य स्त्रियों के रक्षादि विषय में बड़े अनभिज्ञ थे। वे बल पर बल प्रयोग करना जानते थे किन्तु इन अबलाओं के साथ किस तरह की चाल चलना होता है वह उनके दिमाग़ में नहीं आता था। वे बड़ी बड़ी

मोटी रस्सियों को खींच कर तोड़ सकते थे किन्तु अपनी मोटी मोटी उँगुलियों से महीन सूत की छोटी गाँठों को नहीं सुरभा सकते थे। ये स्त्रियाँ उनकी बुद्धि में बड़ी ही दुर्ज्ञेय और जानने की एक अनुपयुक्त वस्तु थीं। इस विषय में जब कोई झमेला आ खड़ा होता था तब वे झट उसके निर्णय का भार रानी के ऊपर देते थे। इन स्त्रियों के विषय में उनको बैठ कर विचारने का अवसर भी नहीं मिलता था, इच्छा भी नहीं थी और योग्यता भी नहीं थी। यह उनके लिए एक दम वाहियात काम था। इस बार भी प्रतापादित्य ने रानी को बुला कर कहा -- "सुरमा को बाप के घर भेज दो।" रानी ने कहा—"यह होने से उदय की क्या गति होगी? प्रतापादित्य ने रुष्ट होकर कहा—"उदय तो अब लड़का नहीं है। मैं राजकाज के ख़याल से सुरमा को राजभवन से कुछ दिन के लिए अलग कर देना चाहता हूँ। यही मेरा अभिप्राय है।"

रानी ने उदयादित्य को बुला कर कहा—"बच्चा उदय, सुरमा को नैहर भेज दो।" उदयादित्य ने कहा—"क्यों माँ, सुरमा ने क्या अपराध किया है?"

रानी ने कहा—"बच्चा, हमें क्या मालूम? हम नहीं समझतीं कि बहूजो को बाप के घर भेज कर महाराज को राजकाज में क्या सुविधा होगी। यह वही जानें।"

उदयादित्य—"माँ मुझको कष्ट देकर, मुझे दुःखी बना कर राज-काज में क्या उन्नति होगी? जहाँ तक कष्ट सहने का था सो सब सहा ही है। मेरे लिए विधाता ने सुख सिरजा ही नहीं। सुरमा को भी तो सुख नहीं है। दोनों समय उसकी दुर्दशा होती है। कटु-वाक्यों से उसका नित्य ही सत्कार

किया जाता है । तो भी वह किसी से कुछ नहीं कहती । चुप चाप सब सहे जाती है । आखिर क्या इतने बड़े राजभवन में अब उसके रहने के लिए थोड़ी सी जगह भी दुर्लभ होगी ? क्या तुम लोगों के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं ? क्या वह भिखारिन है कि जब तुम लोग चाहोगी रक्खोगी और जब जी में आवेगा निकाल बाहर कर दोगी ? जब उसके लिए जगह नहीं तब मेरे लिए भी राजभवन में जगह नहीं ।"

रानी ने रोना शुरू कर दिया । कुछ देर के बाद बोली—"क्या जाने महाराज कब क्या करते हैं । उनका मतलब हमारी समझ में नहीं आता । पर तो भी हम इतना ज़रूर कहेंगी कि "हमारी वहू भी कुछ अच्छी आँखों में नहीं है । जबसे वह यहाँ आई है, तबसे किसी को सुख-चैन नहीं । हमारी देह जल कर कोयला हो गई । हम तुमसे कुछ नहीं कहतीं । कुछ दिन के लिए बाप के घर जायगी तो क्या हर्ज़ है, फिर देखा जायगा । वह यहाँ से जाने ही पर समझेगी, तुम्हारी जो सलाह हो हमसे कहो । उसके जाने पर देखोगे थोड़े ही दिनों में घर की शोभा पलट जायगी ।"

उदयादित्य ने इस बात का कुछ जवाब न दिया । कुछ देर चुपचाप बैठे रहे । फिर वे वहाँ से उठ कर चले गये ।

रानी आँसू भरी आँखों से प्रतापादित्य के पास जा कर बोली—"महाराज, क्षमा कीजिए, सुरमा को भेजने से उदय न बचेगा । मेरे बच्चे का कोई क़सूर नहीं । सुरमा डायन है, उसने जादू करके उसे अपने वश में कर लिया है ।" यह कह कर रानी रोने लगी ।

प्रतापादित्य बड़े क्रुद्ध होकर बोले—"सुरमा न जायगी तो उदयादित्य को मैं क़ैदख़ाने में बन्द करके रक्खूँगा।"

रानी महाराज के पास से लौट कर सुरमा के पास गई और बोली—"तू डायन है, तूने जादू करके मेरे उदय की मति-गति हरण कर ली है। अपना जन्तर मन्तर अपने पास रहने दे। मेरे बच्चे की जान बख्श् दे। यहाँ आने के साथ तूने उसे बहका कर ख़राब कर दिया। तेरी ही बात में पड़ कर मेरा बच्चा इतना दुःख भोग रहा है। क्या अब उसके हाथों में बिना हथ-कड़ी दिलाये तू दम न लेगी?"

सुरमा चौंक कर बोली—"अयँ, मेरे कारण उनके पाँव में बेड़ी पड़ेगी? माँ, मुझे बिदा कर दो। मैं अभी जाती हूँ।"

सुरमा तुरन्त विभा के पास गई और सब हाल उससे कह सुनाया। विभा का दिल धड़कने लगा। उसके मुँह से एक भी बात न निकली। सुरमा विभा के गले से लिपट कर बोली, प्यारी विभा, मैं अब जाती हूँ। यहाँ अब मुझे फिर कौन बुलावेगा? विभा सुरमा का हाथ पकड़ कर रोने लगी। सुरमा वहीं बैठ गई। भविष्य का सोच उसके हृदय को मसोसने लगा—"हाय! अब यहाँ आने न पाऊँगी, अब उनसे भेंट न होगी। जब उन्हें देखने न पाऊँगी तब जीकर ही क्या करूँगी। हाय, मेरा सर्वस्व लुट गया। अब क्या लेकर प्राण धारण करूँगी।" इस तरह उसके मन में सोच की तरङ्गें लहराने लगीं। उसकी आँखों के सामने चारों ओर अँधियारा छा गया। जिस भविष्य में वह प्रफुल्ल मुँह नहीं, वह मधुर मुसकान नहीं, वह कोमल सम्मान नहीं, आँख से आँख का, हृदय से हृदय का और मन से मन का मिलान नहीं, सुख दुःख

में सहानुभूति नहीं, छाती फट जाने पर भी जहाँ प्रेम का मलहम नहीं, स्नेह की झलक नहीं, हाय ! वह भविष्य क्या है माना प्रलय काल का भयानक दृश्य है। सुरमा के सिर में चक्कर आने लगा, छाती फटने लगी, मुँह सूख गया और मारे उत्ताप के उसकी आँखों के आँसू भी सूख गये। उदयादित्य को अपने पास आते देख सुरमा ने लपक कर उनके दोनों पैर पकड़ लिए और अपनी छाती से दब कर वह फूट फूट कर रोने लगी। वह इस प्रकार कभी नहीं रोती थी, वह इतने दिन अपने हृदय को कठोर करके सब सहे जाती थी। आज उसकी वज्र की छाती फठ कर टूक टूक हो गई। उदयादित्य का हृदय व्याकुल हो उठा। वे सुरमा का मुँह ऊपर की ओर उठा कर प्रेम से भरे हुए स्वर में पूछने लगे—"सुरमा, क्या हुआ है, तुम्हें हमारी क़सम है, सच सच कहो।" सुरमा कुछ कहना चाहती है पर उसके मुँह से बात नहीं निकलती। वह उदयादित्य के मुँह की तरफ़ ताकती है और रो उठती है। आख़िर कुछ देर धीरज बाँध कर वह बड़ी कठिनता से बोली—"मैं अब यह मुँह देखने न पाऊँगी। साँझ होगी आप खिड़की के पास आ कर बैठेंगे, मैं आपके पास हाज़िर न हो सकूँगी। घर में चिराग़ जलेगा आप इस घर के द्वार पर आकर खड़े होंगे, मैं उमगती और मुसकाती हुई आपका हाथ पकड़ कर घर के भीतर न ले जा सकूँगी। आप जब यहाँ रहेंगे तब मैं न मालूम कहाँ रहूँगी।"

सुरमा ने जो अन्त में कहा—"न मालूम कहाँ रहूँगी" इस वाक्य में कितना नैराश्य भरा है, कितने दूर दूरान्तर के भाव भरे हैं, यह लेखनी के द्वारा प्रकट नहीं हो सकते, जिन प्रेमियों को कभी ऐसा प्रसङ्ग आया होगा वे ही समझ सकते हैं। "जब

केवल आँखों से आँखों का ही मिलन मात्र होता है तब बीच में कितना अधिक अन्तर जान पड़ता है। जब दर्शन भी नहीं तब कितनी दूरता जान पड़ती है। जब समाचार मिलने में भी विलम्ब होता है तब कितनी अधिक दूर जान पड़ती है किन्तु जब एक बार दर्शन के लिए कटी मछली की तरह तड़प कर होठों दम आने पर भी दर्शन न होगा तब --तब कुछ नहीं — इन दोनों पैरों को इसी तरह छाती में लगा कर इसी समय मर जाने ही में सुख है।" यह कह कर सुरमा चुप हो रही।



# सत्रहवाँ परिच्छेद ।

उपन्यास के आरम्भ में ही रुक्मिणी का ज़िक्र आया है। शायद पाठक उसे भूले न होंगे। यह मङ्गला वही रुक्मिणी है। वह रायगढ़ छोड़ कर और अपना नाम बदल कर यशोहर में ही एक ओर घर बना कर ठहरी हुई है। रुक्मिणी में गुण का भाग प्रायः एक भी नहीं है। साधारण क्षुद्र प्रकृति की स्त्री की तरह वह विषयवासना से भरी हुई है। ईर्ष्या तो मानो उसके अपने घर की सम्पत्ति है। बड़ी बड़ी वासनाओं को लेकर वह मनोराज्य कर रही है। हँसना और रोना दोनों उसके होटों पर धरे रहते हैं। जब चाहती है हँसती है और जब चाहती रोती है। जब किसी पर उसे क्रोध होता है तब वह प्रचण्ड रूप धारण करती है, तब जान पड़ता है जैसे वह अपने अपराधी को दाँत और नहों से काट खायगी। जब उसे अधिक क्रोध आता है तब वह अधिक बोलती नहीं, केवल थरथर काँपती है, और मालूम होता है जैसे उसकी आँखों से आग बरस रही हो। उसके हृदयरूपी कड़ाह में तप्ततेल की तरह क्रोध खौलने लगता है। जबसे वह यशोहर में आई है तबसे भाँति भाँति के व्रत करने लगी है। जिससे वह मिलती है उसके मन का भाव आश्चर्य्य रूप से समझ जाती है। उसके मन में सबसे प्रबल वासना यह है कि जब युवराज सिंहासन पर बैठेंगे तब वह युवराज के हृदय को हस्तगत कर उनके हृदयराज्य और यशोहर राज्य का एक साथ शासन करेगी। उसकी यह आशा दिन

दिन बढ़ती ही जाती है। इसी के लिए वह अनेक प्रकार का अनुष्ठान कर रही है। जब वह सोती है तब भी उसके हृदय में यह आशा जगी रहती है। उसने बहुत दिनों से लगातार चेष्टा करके राजभवन के सभी दास-दासियों के साथ मेल-मिलाप कर लिया है। राजभवन की छोटी से भी छोटी ख़बर उसके कानों तक पहुँच जाती है। सुरमा का मुँह कब मलिन हुआ, कब वह हँसी—यह भी उसे ज़ाहर हो जाता है। प्रतापादित्य की कोई बात उससे छिपी नहीं है। वह बराबर अपने मन में यही सोचती रहती है कि कब मेरे कण्टक दूर होंगे और कब मैं अपना मनोरथ पूरा करूँगी। प्रतापादित्य और सुरमा ये दोनों उसके सिद्धिपथ के काँटे हैं। इन दोनों की मृत्युकामना से उसने अनेक अनुष्ठान किये हैं। किन्तु अब तक कुछ सफलता नहीं हुई है। जब वह सवेरे उठती है तब यही याद कर के कि "शायद आज प्रतापादित्य या सुरमा का कुछ अमङ्गल ज़रूर सुन पाऊँगी। हा! वह दिन कब आवेगा जिस दिन सुनूँगी कि सुरमा बिछौने पर मरी पड़ी है।" मन्त्र तन्त्र से उसका जी हटता जाता है। उसकी अधीरता पल पल बढ़ रही है। वह चाहती है कि किसी तरह उदयादित्य को पकड़ पावे तो उसे अपने हाथ का खिलौना बना डाले, यों सोचते सोचते कभी कभी अपने होंठ को दाँतों से इस तरह दबाती है कि लोहू निकल आता है।

रुक्मिणी ने जब सुना कि सुरमा के ऊपर राजा और रानी का क्रोध दिन दिन बढ़ रहा है। बल्कि उन दोनों का क्रोध यहाँ तक बढ़ा है कि वे सुरमा को राजभवन से विदा कर देना चाहते हैं। तब उसके आनन्द की सीमा न रही। किन्तु जब

उसने देखा कि सुरमा तब भी न गई । तब वह सुरमा के विदा कर देने का सुगम उपाय ढूँढ़ने लगीं ।

रानी ने जब सुना कि मङ्गला नाम की एक विधवा स्त्री तन्त्र मन्त्र और नाना प्रकार की जड़ी बूटी जानती है, तब उन्होंने सोचा, सुरमा को यहाँ से विदा कर देने के पहले उदयादित्य का मन उसके पास से लौटा लेना अच्छा है । उन्होंने मातङ्गिनी नाम की दासी को मङ्गला के पास जड़ी लाने के लिए भेजा ।

मङ्गला नाना प्रकार की जड़ी बूटी लेकर और मन्त्र पढ़ कर दवा तैयार करने लगी । उस निःशब्द रात में, नगर के उस निर्जन प्रान्त में, एक बन्द घर में, दवाई कूटने का शब्द होने लगा । उस रात में वही शब्द उसका एक मात्र सङ्गी था । वही एक प्रकार का शब्द मानो उसके नर्तनशील उत्साह के नृत्य में ताल देने लगा । उस ताल पर उसका उत्साह और भी तीव्र गति से नाचने लगा । उसकी आँखों से नींद न मालूम कहाँ चली गई ।

दवा तैयार करने में उसे पाँच रोज़ लगे । दवा क्या थी मानो एक प्रकार का विष था, उसके इतने दिन लगने की ज़रूरत न थी, किन्तु सुरमा के मरने के समय जिसमें युवराज के मन में दया उत्पन्न न हो, इस कारण उसके मन्त्र पढ़ने और टोना करने में कुछ अधिक समय लगा ।

प्रतापादित्य से सलाह लेकर रानी ने सुरमा को और कुछ दिन अपने यहाँ रहने दिया । हाय ! सुरमा चली जायगी । विभा चारों ओर दुःख का अपार समुद्र देखने लगी । इधर कई दिनों से वह बराबर सुरमा के पास बैठी रहती है । वह

चुपचाप एक मलिन छाया की तरह सुरमा के साथ साथ लगी फिरती है । ज्यों ज्यों दिन बीता जाता है त्यों त्यों विभा घनिष्ठ भाव से सुरमा को अपने हृदय में चिपका रखना चाहती है । माना उसके प्राण-पण से विलमाये हुए दिन को जैसे कोई ज़बर्दस्ती खींच कर और उसे तोड़ मरोड़ कर लिये जा रहा है । वह जिधर देखती है उधर अंधेरा ही देख पड़ता है । सुरमा को भी चारों ओर शून्य ही शून्य दिखाई दे रहा है । उसे अब उत्तर, दक्खिन, पूरब पच्छिम का ज्ञान नहीं है । उस के लिए संसार की सभी दिशा विदिशायें मिल कर एक हो गई हैं । वह उदयादित्य के पैरों के पास जा कर पड़ रहती है, उनकी गोद में लेट रहती है, उनके मुँह की ओर चुपचाप ताकती रहती है । और कुछ नहीं करती । वह विभा से कहती है—"विभा, मैं तुम्हारे पास अपना सब कुछ रक्खे जाती हूँ ।" यह कह कर वह दोनों हाथों से मुँह ढाँप कर रोने लगती है ।

दिन का तीसरा पहर है । कल सवेरे सुरमा के जाने का दिन है । उसके घर की जो कुछ चीज़ें थीं उसने एक एक कर सब विभा के हाथ सौंप दीं । उदयादित्य स्थिर और दृढ़प्रतिज्ञ भाव से बैठे हैं । उन्होंने पक्का कर लिया है—हो सकेगा तो सुरमा को यहीं रक्खेंगे नहीं तो उसके साथ वे भी चले जायँगे । जब साँझ हुई तब सुरमा का जी घूमने लगा । उसके दोनों पैर थरथराने लगे । आँखें लाल हो गईं । वह शयनागार में जा कर सो रही और बोली—"विभा, विभा, शीघ्र उनको एक बार बुलाओ, अब देर नहीं है ।"

उदयादित्य उस कोठरी के द्वार पर ज्यों आये त्यों सुरमा बोल उठी—"आओ, आओ, मेरा जी कैसा घबरा रहा है ?"

यह कह कर उसने दोनों बाँहें फैला दीं। उदयादित्य को पास आते देख उसने उनके दोनों पैरों को पकड़ लिया। उदयादित्य बैठ गये। सुरमा बड़े कष्ट से साँस ले रही थी। उसका दम फूल रहा था। उसके हाथ पैर ठंढे हो गये थे। उदयादित्य ने डर कर पुकारा—"सुरमा, सुरमा! सुरमा बहुत धीरे से पलक उठा कर उदयादित्य के मुँह की ओर देख कर बोली—"क्या प्रियतम!" उदयादित्य ने पूँछा—"सुरमा, क्या हुआ है?" सुरमा ने कहा—"जान पड़ता है मेरा अन्तकाल आ पहुँचा।" यह कह कर उदयादित्य को गले लगाने के लिए हाथ उठाना चाहा, पर हाथ न उठा। वह उदयादित्य के मुँह की ओर सिर्फ़ स्थिर दृष्टि से ताकती रही। उदयादित्य ने दोनों हाथों में सुरमा का मस्तक उठा कर कहा—"सुरमा, तुम मुझे छोड़ कहाँ जा रही हो। अब मेरा एक भी अवलम्ब न रहा।" सुरमा की आँखों से झर झर आँसू गिरने लगे। उसने विभा के मुँह की ओर पलक उठा कर देखा। विभा उस समय बेसुध हो टकटकी बाँध कर सुरमा के मुँह की ओर देख रही थी। जहाँ प्रति दिन सन्ध्या समय सुरमा और उदयादित्य बैठते थे, सामने की वह खिड़की खुली है। आकाश में वैसे ही तारे दिखाई दे रहे हैं, हवा वैसे ही मन्द मन्द बह रही है। चारों ओर शान्ति छाई है। घर में चिराग़ जलाया गया। राजभवन में पूजा के घड़ी-घंटा और शङ्ख बज कर चुप हुए। सुरमा ने उदयादित्य से धीमे स्वर में कहा—"मुझसे जो कुछ भूल चूक हुई हो उसे क्षमा कीजिए। मैं आपके मुँह से कुछ सुना चाहती हूँ। मेरा सिर घूम रहा है। आँखों से अच्छी तरह दिखाई नहीं देता।"

क्रमशः सारे राजभवन में यह खबर फैल गई कि सुरमा अपने हाथ से ज़हर खा कर मर रही है। रानी दौड़ कर आई, हवेली के सभी लोग दौड़ आये। रानी सुरमा का मुँह निहार कर रो उठी और बोली—"सुरमा, मेरी रानी, तू यहीं रह, तुझे कौन जाने कहता है? तू कहीं मत जा, तू मेरे घर की लक्ष्मी है।" सुरमा ने उसी बेहोशी की हालत में सास के पैरों की धूल माथे में लगाई। रानी दुगुने स्वर में रो कर विलाप करने लगी—अरी तू बे समझे बूझे क्रोध में आ कर क्या कर बैठी रे।"

तब सुरमा का कण्ठ रुद्ध हो गया था। वह कुछ बोलना चाहती थी पर बोल न सकती थी। जब दो घड़ी रात बच रही तब वैद्य ने कहा—"अब इनका जीवन-दीप बुझ गया" यह सुन कर विभा—"क्या हुआ रे दादा" कहती हुई सुरमा के बदन से लिपट कर रोने लगी। देखते ही देखते सवेरा हो गया। उदयादित्य सुरमा का मस्तक अपनी गोद में ले कर जो बैठे सो अब तक बैठे ही हैं।

---

# अठारहवाँ परिच्छेद।

सुरमा अब इस संसार में नहीं है, पर विभा ऐसा नहीं समझती। वह समझती है सुरमा अभी मरी नहीं, जीती है। सुरमा की सूरत पलभर भी उसके मन से नहीं टलती। मानो सुरमा अभी उससे मिलने के लिए आ रही है। सुरमा को देखने के लिए उसकी आँखें तरस रही हैं। वह घर घर घूमती फिरती है, मानो वह सुरमा को खोज रही है। जब जूड़ा बाँधने का समय आता है तब वह चुप हो कर बैठ रहती है; मानो सुरमा अभी आ कर उसके बाल बाँध देगी और बिंदी सिन्दूर लगा देगी। विभा घंटों से बैठी इन्तज़ार कर रही है। साँझ हो गई। धीरे धीरे रात भी हो गई। विभा ज्यों की त्यों चुपचाप गाल पर हाथ दिये बैठी है। मालूम होता है सुरमा अब न आई, विभा के बाल खुले के खुले ही रह गये। उसकी आँखों में आँसू भर आये। वह रोने लगी, तो भी सुरमा नहीं आई। सुरमा तो ऐसा कभी नहीं करती थी। विभा का मुँह ज़रा उदास होतेही वह तुरन्त दौड़ कर उसके पास आती और उसको गले लगाती थी। आज विभा के इतना रोने पर भी वह न आई। हाय! आज विभा की छाती फट जाने पर भी उसके दर्शन न हुए।

उदयादित्य बिचारे तो अधमरे से हो रहे हैं। मानो उनके शरीर से आधा प्राण निकल गया है और आधा बच रहा है। हरेक अच्छे काम में जो उनके उत्साह और आशा को बढ़ानेवाली

थी, जिसका परामर्श उन्हें मन्त्री का काम दे रहा था, जिसका मृदु मुसकान उनके जीवन का एक मात्र पुरस्कार था, वह चली गई। जब वे सुरमा के शयनागार में जाते हैं, तब न मालूम तृषित नयनों से एक बार चारों ओर किसे देखते हैं। जब कोई दिखाई नहीं देता तब वे धीरे धीरे उस खिड़की के पास आ कर बैठते हैं। जिस जगह सुरमा बैठती थी वह जगह खाली पड़ी है। आकाश में अब भी वही चटकीली चाँदनी है। सामने वही सुहावना उपवन है। हवा भी उसी तरह मन्द मन्द बह रही है। उदयादित्य आँख मूँद कर मन ही मन सोच रहे हैं—क्या ऐसे सुललित सन्ध्यासमय में सुरमा यहाँ आ कर न बैठेगी?

जब कभी वे सुरमा के सदृश किसी का कण्ठ-स्वर सुन पाते थे तभी चौंक उठते थे। यद्यपि वे इसे असंभव मानते थे तथापि चारों ओर साकांक्ष-दृष्टि से देखते ज़रूर थे। कभी कभी बिछौने पर जा कर टटोलते थे, कोई है या नहीं। जो उदयादित्य सारे दिन अपने अनेकानेक साधारण कामों के पीछे व्यग्र रहा करते थे, जो ग़रीब प्रजाओं के उपकार की बात सोचा करते थे, वही अब चुपचाप बैठ कर समय बिताते हैं। जब प्रजायें अपने बाग़ के फल-फूल और साग-भाजी की डाली उनके पास लाती थीं तब वे बड़ी प्रसन्नता से उनका उपहार ग्रहण करते थे और उन्हें अच्छी अच्छी सलाहें देते थे। अब उदयादित्य को इन सब बातों में जी नहीं लगता। अब वे एक भी काम उत्साहपूर्वक नहीं करते। साँझ होते ही न मालूम वे क्यों क्लान्त से दीखते हैं। माँदे की तरह बड़ी धीमी चाल से सोने की कोठरी में जाते हैं। उनके मन में कुछ कुछ

यह आशा बनी रहती थी कि शायद शयनागार का द्वार खुलते ही देखूँगा कि सुरमा खिड़की के पास बैठी हुई मेरे आने की बाट देख रही है।

जब वे विभा को उदास मुँह किये इधर उधर अकेली घूमती हुई देखते हैं तब वे मारे शोक के व्याकुल हो रो उठते हैं और उसे बड़े स्नेह से बुला कर अपने पास बिठाते हैं। विभा को सान्त्वना दे कर सुरमा के स्नेह की कितनी ही बातें सुनाते हैं। विभा भाई को शोकाकुल देख कर रो देती है। उदयादित्य की आँखों से भी आँसू गिरने लगते हैं।

एक दिन उदयादित्य ने विभा को बुला कर कहा—"विभा, इस हवेली में अब तुम्हारे हेल मेल का कोई नहीं है। तुम्हारी राय हो तो मैं तुम्हें ससुराल भेज देने का प्रबन्ध कर दूँ।" विभा तुम अपने मन की बात कहो, मुझसे कहने में सङ्कोच न करो, अब कौन है, जिसके पास तुम अपने मन की बात प्रकट करोगी।"

विभा कुछ न बोली, सिर नीचा करके चुप हो रही। वह कुलाङ्गना होकर अपने मुँह आपही, ससुराल जाने की इच्छा रहते भी कैसे कहती? उसे अब बाप के घर रहने की इच्छा नहीं होती, पर वह करे क्या? किससे अपने मन की बात कहे। संसार में जो उसके एक मात्र सुख की जगह है उस जगह में—उस चन्द्रद्वीप में—जाने के लिए क्या उसका चित्त चञ्चल नहीं होता? किन्तु वहाँ से अब तक विभा की कोई ख़बर तक लेने नहीं आया है। विभा बिना बुलाये आप ही आप ससुराल जाने का ज़िक्र कैसे करे।

उदयादित्य ने मौक़ा पाकर विभा को ससुराल भेज देने की बात अपने पिता से कही । प्रतापादित्य ने उत्तर दिया—"विभा को ससुराल भेज देने में हमें कोई उज्र नहीं है, परन्तु वे लोग यदि विभा को आदर का पात्र समझते तो उसे ले जाने के लिए वहाँ से कोई न कोई अवश्य आता । हम लोगों को इतनी जल्दी क्या पड़ी है जो विभा को बिना बुलाये ससुराल भेज दें ।"

रानी विभा की अवस्था देख कर रोती हैं, विभा का दुःख उनसे देखा नहीं जाता । विभा सधवावस्था में ही वैधव्य का दुःख भोग रही है, यह उसकी माँ क्यों कर देख सकती है ।

विभा का उदास मुँह देख कर रानी के हृदय में मानो बर्छी चुभती है । इसके सिवा वे अपने जामाता को बहुत प्यार करती हैं। यदि उनसे कुछ लड़कपन हो ही गया तो क्या उसके बदले इतना कड़ा दण्ड देना उचित था ? महाराज का यह अन्याय महारानी को सह्य न हो सका । वे महाराज के पास जाकर विनयपूर्वक बोलीं—"महाराज, विभा को ससुराल भेज दीजिए ।"

महाराज ने क्रुद्ध होकर कहा—"यही एक बात मैंने कई बार सुनी है । अब ज़ियादा सुनना नहीं चाहता । जब चन्द्र-द्वीप से कोई विभा को बुलाने आवेगा तब विभा जायगी । अन्यथा नहीं ।"

रानी—"बेटी को बहुत दिनों तक यहाँ रखने से दस आदमी क्या कहेंगे ?"

प्रतापादित्य—"अगर हम अपने मन से लड़की को यहाँ से भेज दें और रामचन्द्रराय उसे घर के भीतर पाँव न रखने दें तब दस आदमी क्या कहेंगे?"

रानी ने रोते रोते कहा—"जो आपके जी में आवे कीजिए। मैं जाती हूँ।" यह कह कर रानी वहाँ से उठ कर चली गई।



# उन्नीसवाँ परिच्छेद ।



जा रामचन्द्रराय को अपने मान अपमान के ऊपर बड़ी ही सूक्ष्मदृष्टि रहा करती थी। वे एक दिन गाड़ी पर चढ़ कर बाहर टहलने निकले। दो जाहिल जुलाहे अपने घर के सामने बैठ कर कपड़ा बुन रहे थे। वे गाड़ी को देख कर उठ कर खड़े न हुए। राजा ने इसमें अपनी बड़ी बेइज़्ज़ती समझी। उन दोनों जुलाहों को इस अपराध के लिए बड़ी बड़ी तकलीफ़ें झेलनी पड़ीं।

एक बार उन्होंने यशोहर में अपने ससुर के नौकर को किसी काम के लिए आज्ञा दी थी। उस नौकर को उस काम के साथ साथ और भी कई काम करने थे। वह और और कामों में लग गया, जिससे राजा रामचन्द्रराय के काम की सुध उसे न रही। महामानी रामचन्द्रराय ने इस बात से निश्चय कर लिया कि ससुराल के नौकर उनकी आज्ञा को पालनीय नहीं समझते। उन नौकरों ने ज़रूर अपने मालिक से ऐसी शिक्षा पाई होगी। नहीं तो ऐसी बेअदबी करने का साहस उन्हें कब होता। दूसरे सन्देह का कारण यह कि उन्होंने उसी दिन सबेरे देखा था कि युवराज उदयादित्य उसी नौकर के साथ चुपके चुपके कुछ बात कर रहे थे। वे दोनों उनके अपमान करने ही की बात कर रहे थे, नहीं तो और दूसरी बात करते ही क्या?

एक दिन बहुतेरे लड़के मिट्टी के ढेर को सिंहासन बना कर कोई राजा, कोई मन्त्री और कोई सभासद् बन कर राज-दरबार के अनुकरण का खेल खेल रहे थे । जब राजा रामचन्द्रराय के कानों में यह बात पहुँची, तब आपने उन लड़कों के बाप को बुला कर ख़ूब ख़बर ली ।

आज राजा रामचन्द्रराय गद्दी के ऊपर मसनद के सहारे बैठे हुए गुड़गुड़ी पी रहे हैं । सामने एक भयभीत अपराधी खड़ा है । उसका विचार होगा । अपराध यही कि उस व्यक्ति ने किसी के द्वारा प्रतापादित्य और रामचन्द्रराय के बीच जो घटना हुई थी सो सुन कर उस बात की अपनी मण्डली में आलोचना की थी । यह बात उसके शत्रु-पक्ष के एक आदमी ने राजा के कान तक पहुँचाई । यह सुन कर राजा ने अत्यन्त क्रुद्ध हो कर उसे पकड़वा मँगाया है । उस अपराध के दण्ड में उसे फाँसी देना चाहिए अथवा देश से निर्वासित कर देना चाहिए, इसी का विचार होने वाला है ।

राजा ने कहा—"साले, तुम्हारी इतनी बड़ी शेख़ी ?"

अपराधी ने रो कर कहा—"दुहाई महाराज की । मेरा कुछ दोष नहीं ।"

मन्त्री—"चुप रहो साले । प्रतापादित्य के साथ हमारे महाराज को बराबर करता है ।"

दीवान—"इस साले को मालूम नहीं, जब प्रतापादित्य का बाप पहले पहल राजा हुआ तब उसने राजतिलक पाने के लिए हमारे महाराज स्वर्गीय पितामह के पास बड़ी बड़ी प्रार्थनायें की थीं । जब वह बहुत गिड़ गिड़ाया, जब उसने हाथ जोड़ कर बार बार विनती की तब उन्होंने अपने बाँये पैर के अँगूठे से उसके माथे पर टीका चढ़ा दिया ।"

रमाई मुँह बना कर बोला—"हयूँ, विक्रमादित्य का बेटा प्रतापादित्य को राजा हुए अभी दोही पीढ़ी हुई हैं। प्रतापादित्य का पितामह था केंचुआ, केंचुए का बेटा हुआ जोंक। जोंक प्रजाओं का लोहू चूस कर ख़ूब फूल उठा। उस जोंक के बेटे प्रतापादित्य ने आज साँप को भाँति फुफकार करना सीखा है। हम वंशपरम्परा से इस राजदरबार में नौकरी करते आते हैं। हम लोग सँपेरिया हैं। क्या साँप को नहीं चीन्हते ?" रमाई की बात से अत्यन्त प्रसन्न होकर रामचन्द्रराय विकसित मुँह से तम्बाकू पीने लगे। आज कल दरबार में प्रतिदिन प्रतापादित्य के ऊपर दो एक बार वाग्बाण की वर्षा ज़रूर होती है। प्रतापादित्य की पीठ को लक्ष्य बना कर उस पर भर पूर वचनरूपी बाणों की वर्षा होते होते जब सभासदों के मुँह रूपी तर्कस शरशून्य हो जाते हैं तब दरबार बर्ख़ास्त होता है।

अपराधी का दिन आज का अच्छा था। उसके बहुत रोने कलपने पर परम प्रतापी राजा रामचन्द्रराय ने हुक्म दिया "अच्छा, जाओ, इस बार छोड़ देता हूँ। आइन्दे फिर कभी ऐसी बात मुँह से न निकालना।"

जितने दरबारी थे, सब महाराज का जय जयकार मना कर चले गये। केवल मन्त्री और रमाई राजा के पास बैठे रहे। फिर प्रतापादित्य की ही बात छिड़ी।

रमाई ने कहा—"महाराज, आप तो चले आये, उधर युवराज बेचारे पर बड़ा ही सङ्कट आ पड़ा। राजा का मतलब तो यह था कि लड़की विधवा होगी तो उसके हाथ में जो सोने की चूड़ियाँ हैं उन्हें बेच कर राज—ख़ज़ाने में जो ही कुछ नक़द आ जायगा। युवराज ने उसमें बाधा डाल दी। इस कारण उनकी एक भी दुर्दशा बाक़ी न रही।"

राजा सुन कर हसने लगे।

मन्त्री—"महाराज, सुना है कि प्रतापादित्य आज कल मारे अफ़सोस के सूखे जा रहे हैं। आप उनकी लड़की को कहीं छोड़ न दें, इस चिन्ता से न उन्हें भूख लगती, न आँखों में नींद आती है।"

राजा—"सचमुच?" हँसते हँसते लोट गये। उन्हें इन बातों से बड़ा ही आनन्द बोध हुआ।

मन्त्री—"मैंने प्रतापादित्य को कहला भेजा है कि अब अपनी लड़की को यहाँ न भेजें। हमारे महाराज ने जो उनके घर ब्याह किया, इसी को वे ग़नीमत समझें, इसी में उनके सात पुरुषों का उद्धार हो गया। इस पर भी वे चाहते हैं कि हमारे महाराज उनकी लड़की को घर ला कर अपने घर की प्रतिष्ठा बिगाड़ें? इतना बड़ा पुण्य अभी उन्होंने नहीं किया है कि उनकी लड़की चन्द्रद्वीप के राजभवन की अधिकारिणी हो। कहिए रमाई ठाकुर ठीक है न?"

रमाई—"हाँ भाई, इसमें सन्देह क्या? महाराज ने जो कीचड़ में पैर रक्खे हैं, यह तो कीचड़ का भाग्य है, किन्तु इससे क्या, घर में प्रवेश करने के समय तो पैर धो कर ही आवेंगे।"

इस तरह भाँति भाँति की हँसी उड़ने लगी। प्रतापादित्य और उदयादित्य की काल्पनिक मूर्ति सामने रख कर उन पर अयुक्त वाक्य-बाणों की वर्षा होने लगी। उदयादित्य का क्या अपराध था यह कुछ समझ में नहीं आता। उन्होंने अपने मानापमान या विपद् की कुछ परवा न करके रामचन्द्रराय की जान बचाई। जान बचाना तो कुछ बात ही नहीं, वे प्रता-

पादित्य के पुत्र क्यों हुए। इसी आग्रह के कारण रामचन्द्रराय उनकी बात चला कर अकुण्ठ भाव से उनको गाली देने लगे। रामचन्द्रराय हृदय के कठोर थे या नहीं पर वे एक सङ्कीर्णहृदय के मनुष्य अवश्य थे। उनका दिमाग़ बहुत हलका था। उदयादित्य ने जो उनके प्राण बचाये हैं तदर्थ वे उनके कृतज्ञ नहीं हैं। वे समझते हैं; उदयादित्य ने अपने ही लाभ की बात सोच कर ऐसा किया होगा। ऐसा न होना उनके लिए कदाचित् हानिप्रद होता। रामचन्द्रराय के ऊपर कोई सङ्कट आ पड़ने से सब लोग आप ही उनकी रक्षा में तत्पर होंगे। उनके पैर में काँटे गड़ने से संसार के सभी लोगों के हृदय में बर्छी की सी व्यथा होती होगी। उनकी ऐसी ही धारणा है। वे यह नहीं समझते कि संसार के एक छोटे से छोटे मनुष्य अपने दुःख के आगे महाराज रामचन्द्रराय के दुःख को तिनके के बराबर भी अपने जी में नहीं समझते होंगे। रामचन्द्रराय ने ख़ुशामदियों की प्रशंसारूपी तराज़ू के एक पलड़े पर अपने को और दूसरे पलड़े पर सारे संसार को चढ़ा कर वज़न में अपने ही को भारी समझ रक्खा है। इसी लिए वे अपने को सर्वोपरि मान बैठे हैं इससे किसी के ऊपर उनको कृतज्ञता का उदय नहीं होता। इसके अतिरिक्त उदयादित्य के ऊपर कृतज्ञता का उदय न होने का एक और कारण यह कि रामचन्द्रराय समझते हैं कि उदयादित्य ने अपनी बहन का ख़याल करके ही उन्हें बचाया है। निःस्वार्थ भाव से वे उनका प्राण कदापि नहीं बचाते। यदि कदाचित् रामचन्द्रराय के हृदय में कृतज्ञता का उदय होता तो भी वे उदयादित्य को गाली देने से बाज़ नहीं आते। कारण यह कि जहाँ दस आदमी मिल कर एक आदमी का परिहास कर रहे हैं, जहाँ स्वयं रमाई उपहास

करने को अग्रसर हैं, वहाँ वे उन लोगों का मुँह बन्द करें या उन लोगों के साथ योग न दें यह उनकी मर्यादा से बाहर की बात थी। वे समझते थे शायद ऐसा न करने से लोग उन्हें उल्लू समझेंगे।

विभा के ऊपर अब भी रामचन्द्रराय का कुछ कुछ अनुराग है। विभा सुन्दरी है, सुशीला है, युवावस्था में अभी उस ने पैर ही रक्खा है। रामचन्द्रराय के साथ विभा को अभी पूर्ण रूप से परिचय भी नहीं हुआ है। प्रतापादित्य से अपमान का बदला लेने के अभिप्राय से जब वे विभा की शय्या पर मुँह फेर कर सो रहे थे, जब पहली नींद टूट जाने पर आधी रात को उन्होंने देखा कि विभा बिछौने पर बैठी रो रही है, उसके मुखचन्द्र को उदास देख मानो चन्द्रमा खिड़की की राह से अपने कर को फैला कर उसके आँसुओं को पोंछ रहे हैं। उस की अधखुली छाती रह रह कर काँप उठती है। उसके पतले कोमल होंठ नवपल्लव की तरह धीरेधीरे हिल रहे हैं। यह देख एकाएक उनके हृदय में दया उमड़ आई। उन्होंने विभा के मस्तक को अपनी छाती से लगाया। उसकी आँखों के आँसू पोंछ दिये। विभा के सरस होंठ चूमने के लिए उनके हृदय में एक प्रकार का आवेग हो आया। वे विभा की नई जवानी की शोभाराशि देख कर चकित से हो रहे। उनके सारे शरीर में मानो एक प्रकार की बिजली दौड़ गई। विभा के ऊपर उनका एक उत्कट मोह उत्पन्न हुआ। उनके अर्धमुद्रित नयनकमलों की कोर में जल की रेखा दिखाई देने लगी। उमङ्ग से उनका हृदय उछलने लगा। वे विभा का मुँह चूमने के लिए अधीर हो उठे। इसी समय बाहर से किसी ने धक्का दिया। इसी अपूर्व सुख-सम्भोग के समय उन्होंने घोर विपद् की बातें

सुनीं । उनके मन की लालसा मन ही में बनी रह गई । वही उनके हृदय का प्रथम विकास, वही उनकी वासना का पहला उफान, वही उनके अतृप्त नयनों की स्नेह भरी दृष्टि प्यासी की प्यासी रह गई । उनकी सभी आशायें उनके मन में ज्यों की त्यों बनी ही रह गईं । वे विभा की रूपराशि का उपभोग न कर सके । यह स्थायी प्रेम का भाव उनके हृदय में थोड़े ही उदित हुआ था ? रामचन्द्रराय के सङ्कीर्ण हृदय में उस प्रेम का उदय होना सम्भव नहीं । किसी एक भोग-सामग्री पर विषयी लोगों के चित्त का कुछ देर के लिए जैसा कुछ खिंचाव होता है ठीक उसी तरह का भाव रामचन्द्रराय के मन में उत्पन्न हुआ था । जो हो, जिस किसी कारण से हो, युवत्व के सम्बन्ध से ही क्यों न हो, विभा की चाह उनके चित्त में बनी थी । विभा से एक बार मिलने के लिए उनका चित्त अवश्य उत्कण्ठित था । पर बात यह थी कि यदि वे विभा के लाने के लिए किसी को भेजते हैं तो लोग उन्हें क्या कहेंगे । सभासद् गण उन्हें स्त्रैण, स्त्रीलालुप, स्त्रीसक्त समझेंगे । मन्त्री मन ही मन रुष्ट होंगे । रमाई भरे दरबार में हँसी उड़ावेगा । दूसरे उनके मन में यह भी था कि यदि विभा को मँगा ही लिया तो प्रतापादित्य की सज़ा क्या हुई । विभा के परित्याग के सिवा श्वसुर से अपमान का बदला लेने का दूसरा ज़रिया ही क्या रहा । यों ही भाँति भाँति की बातें सोच कर उन्हें विभा को बुला भेजने का कभी साहस नहीं होता । यहाँ तक कि दरबार में जो लोग विभा की बात लेकर हँसी उड़ाते हैं, उन्हें रोक देने का भी रामचन्द्रराय को साहस नहीं होता । बल्कि उस उपहासलीला में वे आप भी मिल जाते थे । इसमें

प्रतापादित्य के विशेष मानमर्दन की बात सोच कर वे बहुत ख़ुश होते थे।

रमाई और मन्त्री जब वहाँ से चले गये तब राममोहन माल ने सामने आ हाथ जोड़ कर निवेदन किया, "महाराज!"

राजा—"क्या है राममोहन?"

रा० मो०—"हुक्म हो तो यह तावेदार महारानी को बुला ले आवे।"

राजा—"यह क्यों?"

रा० मो०—"अन्दर महल सूना लगता है, यह मुझसे देखा नहीं जाता। जब हवेली में अन्दर जाता हूँ, महाराज के घर में किसी को न देख कर मुझे अत्यन्त दुःख होता है। मेरी मालकिनी लक्ष्मी हैं, वे यहाँ आकर अपने घर को अपनी शोभा से जगमगावें, जो देख कर हम लोग अपनी आँखों को सफल करें।"

राजा ने कहा—"राममोहन, तुम पागल हो गये हो क्या? उस स्त्री को मैं अपने घर लाऊँगा?"

राममोहन ने आँखें फाड़ कर कहा—"क्यों महाराज, मेरी मालकिनी ने क्या अपराध किया है?"

राजा—"क्या कहते हो राममोहन? प्रतापादित्य की बेटी को मैं अपने घर लाऊँगा?"

रा० मो०—"क्यों न लावेंगे? प्रतापादित्य के साथ उसका अब सम्बन्ध कैसा? जितने दिनों तक विवाह न हो उतने दिन लड़की बाप की, विवाह हो जाने पर उस पर बाप का अधिकार नहीं रहता। अब वह आपकी रानी आपकी हुई। यदि

आप उनको अपने घर न लावें, यदि आप उनका आदर न करें, तो दूसरा कौन करेगा?"

राजा—"प्रतापादित्य की बेटी का मेरे साथ व्याह हुआ है यही उसके लिए बहुत हुआ। कहो तो उसे घर में कैसे लाऊँगा? ऐसा होने से मेरे घर की प्रतिष्ठा कैसे रह सकेगी?"

रा० मो०—"प्रतिष्ठा कैसे रह सकेगी? प्रतिष्ठा उनको ले आने ही में रहेगी। आपने अपनी धर्मपत्नी रानी को दूसरे के घर में छोड़ दिया है। क्या उसके ऊपर आपका कोई अधिकार नहीं है? उनके ऊपर अन्य व्यक्ति यथेच्छ प्रभुत्व करे—क्या आप इसी में अपनी प्रतिष्ठा समझते हैं?"

राजा—"अगर प्रतापादित्य अपनी लड़की को न आने दें?"

राममोहन ने अपनी विशाल छाती को ठोक कर कहा—"क्या कहा महाराज? अगर आने न दें? इतनी मजाल किसकी जो आने न देगा? हमारी मालकिनी हम लोगों के राजभवन की गृहलक्ष्मी हैं। किसका मक़दूर कि उनको हम लोगों के यहाँ न आने देकर अपने पास रख सके? कितने ही बड़े प्रतापादित्य क्यों न हों उनके हाथ से महारानी को छीन लाऊँगा। मैं यह प्रतिज्ञा करके जाता हूँ, जैसे होगा अपनी स्वामिनी को ज़रूर लाऊँगा।" यह कह कर राममोहन जाने को उद्यत हुआ।

राजा ने बड़ी जल्दी में कहा—"राममोहन, सुनो, सुनो, ज़रा ठहरो, अच्छा, तुम विभा को लाने जाते हो तो जाओ, कोई सुनने न पावे। जिसमें यह बात रमाई किंवा मन्त्री के कानों में न पड़े।"

राममोहन—"जो आज्ञा महाराज," यह कह कर चला गया।

यद्यपि राजपत्नी के राजभवन में आने पर सब जानेंहीगे तथापि उसमें अभी बहुत देरी है, उनके आने पर देखा जायगा। पर अभी उपस्थित लज्जा के हाथ से छुटकारा पाने ही में रामचन्द्रराय की मानरक्षा है।

---

# बीसवाँ परिच्छेद ।

उदयादित्य कैसे सुखी रहेंगे, विभा को दिन रात यही चिन्ता लगी रहती है। अपने हाथ से वह उनके सब काम करती है। अपने हाथ से वह उनका भोजन परोसती है । भोजन करने के समय वह उनके सामने बैठी रहती है। वह सामान्य विषय में भी कोई त्रुटि होने नहीं देती। जब सन्ध्या के समय उदयादित्य उसके घर में आ कर दोनों हाथों से अपनी आँखें ढाँप कर बैठते हैं, जान पड़ता है उनकी आँखों से आँसू गिर रहे हैं। तब विभा धीरे धीरे उनके पैरों के पास आ कर बैठती है— कुछ बोलने की चेष्टा करती है पर उसके मुँह से एक भी शब्द नहीं निकलता। दोनों चुप हैं, किसी के मुँह में वाक्य नहीं। धुँधले चिराग़ की रोशनी रह रह कर काँप उठती है। उसीके साथ दीवार के ऊपर एक अन्धकार मय छाया भी काँप उठती है। विभा बड़ी देर तक चुप रही पीछे उस छाया की तरफ़ देख कर और यह कह कर रो उठी कि—"भैया वह कहाँ गई ?"

उदयादित्य चौंक उठे। आँखों पर से हाथ हटा कर विभा के मुँह की ओर देखने लगे। विभा ने क्या कहा—वह अच्छी तरह नहीं समझ सके, मानो वे वही समझने की चेष्टा कर रहे हैं। एकाएक चैतन्य हो आया। वे झट आँखों के आँसू पोंछ कर बोले—"आओ विभा, एक बात कहता हूँ सो सुनो।" इसका

मतलब यही कि जिसमें विभा सुरमा का शोक भूल जाय।"

बरसात का मौसम है। आकाश में चारों ओर बादल घिर आये हैं। सारे दिन पानी बरस रहा है। दिन में अन्धेरा हो गया है। बगीचे के दरख़ स्थिर भाव से भीग रहे हैं। हवा के झोंके से वर्षा के छींटे घर में आ रहे हैं। उदयादित्य चुपचाप बैठे हैं। आकाश में मेघ गरज रहा है। बिजुली चमक रही है। पानी बरसने का अविरत शब्द मानो यही कह रहा है कि—"सुरमा नहीं है, सुरमा नहीं है।" बीच बीच में ठंडी हवा हू हू करके मानो बार बार कह जाती है—"सुरमा कहाँ है?" विभा धीरे धीरे उदयादित्य के पास आ कर कहती है "भैया"; भैया कुछ नहीं बोलते। विभा के देखते ही वे मुँह ढाँप कर खिड़की के ऊपर सिर रख कर सो रहते हैं। उनके माथे पर वृष्टि का पानी पड़ता है। इसी तरह दिन बीत जाता है। साँझ हो आती है। क्रमशः रात हो जाती है। विभा उदयादित्य के भोजन की सामग्री ठीक करके फिर आ कर कहती है—"भैया, भोजन तैयार है, चलो, भोजन कर लो"। उदयादित्य कुछ उत्तर नहीं देते। रात अधिक बीतते देख विभा रो कर कहती है, "भैया, उठो, रात हुई।" उदयादित्य सिर उठा कर देखते हैं, विभा रो रही है। वे झट उठ कर विभा की आँखें पोछ कर खाने जाते हैं। भली भाँति भोजन नहीं करते। विभा यह देख कर एक लम्बी साँस ले कर सोने जाती है। वह हाथ से आहार छूती भी नहीं।

विभा कुछ बोलने या गप्प शप्प करने की चेष्टा करती है। किन्तु उससे कुछ बोला नहीं जाता। वह उदयादित्य को किस तरह सुख में रक्खेगी यह उसकी समझ में नहीं आता। वह

केवल यही सोचती है—"अहा यदि इस समय दादाजी रहते!"

आज कल उदयादित्य के मन मे एक तरह का भय उपस्थित हुआ है। वे प्रतापादित्य से बहुत ही डरते हैं। उनमें अब पहले का सा साहस नहीं। वे अब विपद् को तिनके के बराबर समझ कर अत्याचार के विरुद्ध जान लड़ाने का साहस नहीं कर सकते। सभी कामों में असमर्थता दिखलाते हैं। सभी बातों में उन्हें सन्देह उत्पन्न होता है।

एक दिन उदयादित्य ने सुना—छपरे के ज़मींदार की कचहरी में रात के वक़ लठैतों को भेज कर कचहरी लूटने और कचहरी में आग लगा देने का हुक्म हुआ है। उदयादित्य साईस को अपने घोड़े को तैयार रखने के लिए कह कर हवेली गये। शयनागार में प्रवेश करके एक बार चारों ओर देखा—कुछ सोचने लगे—सोचते सोचते वे अन्यमनस्क हो कर पोशाक बदलने लगे। बाहर आये। नौकर ने आ कर कहा—"युवराज साहब, घोड़ा तैयार है, कहाँ जाना होगा?" युवराज कुछ देर अन्यमनस्क हो कर नौकर के मुँह की ओर देखते रहे और अन्त में कहा—"कहीं नहीं, तुम घोड़े को लौटा ले जाओ।"

एक दिन किसी के चिल्लाने की आवाज़ सुन पाते ही उदयादित्य बाहर दौड़ आये, देखा कि राज-कर्मचारी एक आदमी को पेड़ में लटका कर पीट रहा है। आदमी ने रो कर और युवराज के मुँह की ओर देख कर कहा—"दुहाई युवराज की" युवराज उसकी यन्त्रणा नहीं देख सके। तुरन्त दौड़ कर घर के भीतर चले गये। अगर यह बात सुरमा की जीवित

अवस्था में, पहले होती तो हानि लाभ कुछ न सोच कर युवराज कर्मचारी को रोकते और प्रजा के बचाने का यत्न करते।

भागवत और सीताराम का महीना बन्द हो गया है। उनको प्रकट अथवा गुप्त रीति से द्रव्य सहाय करने का साहस युवराज को अब नहीं होता। जब उनके दुःख की बात सुनते हैं तब मन में ठानते हैं "आज ही मैं रुपया भेज दूँगा।" पर कुछ देर बाद इधर उधर करके रह जाते हैं। उनसे रुपया भेजना नहीं बन पड़ता।

उदयादित्य प्राण के भय से ऐसा ही बर्ताव कर रहे हैं जिसमें कोई कुछ कहे नहीं। सम्प्रति उन्हें अपने जीवन पर पहले की अपेक्षा विशेष अनुराग उत्पन्न हुआ है, यह नहीं उनके मन में एक अन्धे का सा भय उपस्थित हुआ है अर्थात् उन्हें चारों ओर साँप ही साँप सूझता है। मानो वे प्रतापादित्य को एक आश्चर्य्यमय विलक्षण जन्तु मानते हैं। जैसे उदयादित्य के वे अदृष्ट हों। उदयादित्य के भविष्य जीवन का एक एक दिन एक एक क्षण प्रतापादित्य की मुट्ठी में धरा हो। उदयादित्य जब मृत्यु को आलिङ्गन करने जा रहे हैं, जीवन के अन्त समय में संसार से विदा हो रहे हैं। तब भी यदि प्रतापादित्य भौंहें टेढ़ी करके ठहरने की आज्ञा देंगे तो मानो उस आज्ञा के पालनार्थ तब भी उनको मृत्यु-पाश से छुट कर लौट आना पड़ेगा।

---

# इक्कीसवाँ परिच्छेद ।

विधवा रुक्मिणी उर्फ़ मङ्गला के पास कुछ नक़द रुपये हैं। रुपया उसके पास जो कुछ है वह उसके निज की कमाई है। वह रुपये लगा कर जो सूद पाती है, उसी से अपना जीवन निर्वाह करती है। रूप और रूपा इन दोनों के ज़ोर से उसने कितनों ही को अपने वश में कर रक्खा है।

सीताराम शौक़ीन मिज़ाज का आदमी है। न उसके घर में घरनी है, न उसे एक पैसे का उपाय है। इस कारण उसके अन्तःकरण का खिंचाव रुक्मिणी के रूप और रूपा दोनों की ओर विशेष रूप से है। जिस दिन वह देखता है कि आज चूल्हा जलने का कोई उपाय नहीं, उस दिन वह रुक्मिणी के घर प्रस्थान करता है। जिस दिन देखो कि वह हाथ में छड़ी लिए पतली चादर उड़ाता हुआ मङ्गला के घर की ओर जा रहा है और ज़रा भी उसके चेहरे पर चिन्ता नहीं है उस दिन समझ जाओ कि उसके घर में भोजनसामग्री का अभाव है। रास्ते में यदि सीताराम से कोई पूछता है कि "कहो सीताराम, आज कल घर का काम कैसे चलता है?" सीताराम झट विकसित मुख से उत्तर देता है "बड़े मज़े में चलता है। रोज़ ही हलुआ पूरी उड़ता है। कल तो हम लोगों को राजधानी में निमन्त्रण ही था।" सीताराम की ऐसी लम्बी चौड़ी बात सुन कर पूछने वाला चुप हो रहता था। वह जितना ही क्षीण हुआ

जाता है, उसकी बातों की लम्बाई चौड़ाई उतनी ही बढ़ रही है। सीताराम की हालत अब पहले की सी नहीं है। आज कल उसकी अवस्था ऐसी मन्द हो गई है कि उसका फूफा साहब अपनी उस सम्मानित फूफावृत्ति का परित्याग करके अपने घर जाना चाहते हैं।

आज सीताराम को रुपये की बड़ी आवश्यकता आ पड़ी है। इसी से वह रुक्मिणी के घर आया है। उसने मुसकुरा कर एक बार प्रेम की दृष्टि से रुक्मिणी के मुँह की ओर देखा; पीछे उसने मीठे स्वर में कहा—

नहीं भाई, यह मेरा गीत इस समय के लिए उपयुक्त नहीं हुआ। मान-रतन की मुझे अभी उतनी ज़रूरत नहीं। उसकी आवश्यकता होगी तो देखा जायगा। अभी तो मुझे थोड़ा सा सोना रुपया मिल जाने ही से काम चलेगा।

रुक्मिणी ने सीताराम से भी अधिक अनुराग प्रकट करके कहा—"यदि तुम्हें धन की आवश्यकता होगी तो वह भी दूँगी। जिसे प्राण दे दिया उसे धन देना कौन बड़ो बात है? प्राण के आगे धन का क्या मोल है? तुम जो माँगोगे वही दूँगी।"

सीताराम ने प्रेम से द्रवित हो कर कहा—"मैं तुम्हारा भरोसा हर हालत में ऐसा ही रखता हूँ। आज कुछ ऐसी ही ज़रूरत आ पड़ी है। तुम मेरे मन में बसती हो, इससे मैं तुम्हारा सब हाल जानता हूँ पर तुम मेरा कुछ भी हाल न जानती होगी। मेरे पास जो कुछ जमा पूँजी है वह मेरे माँ के पास रहती है। मैं अपने हाथ में रुपया पैसा नहीं रखता। आज माँ सवेरे जोड़ाघाट अपने दामाद के घर गई है। जाते समय

वह रुपया देना भूल गई। मुझे आज ज़रूरी ख़र्च के लिए कुछ रुपये दो। मैं कल ही लौटा दूँगा।"

मङ्गला ने मन ही मन हँस कर कहा—"तुमको इतना जल्द रुपया लौटाने की क्या आवश्यकता है, जब सुविधा होगी तब रुपया लौटा देना, तुम्हारे हाथ में रुपया देना पानी में फेंकना तो है नहीं।" प्रकट में कहा, मेरे पास जो कुछ है वह तुम अपना ही समझो, जो दरकार हो ले लो।"

पानी में रुपया फेंक देने पर शायद मिल भी सकता है, पर सीताराम के हाथ में देने से फिर मिलने की सम्भावना नहीं। पानी में और सीताराम में फ़र्क़ कुछ है तो इतना ही।

मङ्गला का अपने ऊपर ऐसा असाधारण प्रेम देख कर सीताराम का हृदय आनन्द से विह्वल हो गया। वह रसिकता के द्वारा अपने हृदय के आनन्दोद्गार को बाहर कर मङ्गला को रिझाने लगा। सीताराम अपने को एक ही रसिक मानता है। बिना रुपये के नब्वाबी और बिना हास्यरस के रसिकता करना सीताराम का स्वाभाविक गुण है। उसके मुँह में जो आता है वही बोलता है। और दूसरे की कुछ अपेक्षा न करके आप ही हँसता है। उसकी हँसी देख कर हँसी को भी हँसी आती है। जब वह राजभवन का द्वारपाल था, तब दूसरे दूसरे पहरेदारों से उसे प्रायः तकरार हो जाया करती थी। उसका प्रधान कारण यही कि सीताराम जिसे दिल्लगी समझता था उसे और लोग वैसा नहीं समझते थे। एक दिन की बात है कि हनुमानप्रसाद तिवारी पहरा देते समय ऊँघने लगा। यह देख कर सीताराम ने धीरे धीरे उसके पीछे से जा कर एकाएक उसकी पीठ में ऐसा घूँसा मारा कि उस हड्डी-

तोड़ रसिकता से उसकी पीठ और हृदय एक साथ जल उठा। सीताराम ख़ूब ज़ोर से हँसने लगा, किन्तु हनुमान-प्रसाद ने उस हँसी में योग न दे कर घूँसे द्वारा हास्यरस का प्रभेद और करुणरस का सम्बन्ध उदाहरण दे कर सीताराम को ख़ुलासा तौर पर समझा दिया। सीताराम की रसिकता के ऐसे ऐसे सैकड़ों उपाख्यान लोग जानते हैं।

मैं ऊपर लिख आया हूँ कि सीताराम का प्रेम एकाएक रुक्मिणी पर उमड़ उठा। उसने रुक्मिणी के पास खिसक कर बड़ी मुहब्बत से कहा—"तुम मेरी सुभद्रा हो। मैं तुम्हारा जगन्नाथ हूँ।"

रुक्मिणी—"दूर हो, सुभद्रा तो जगन्नाथ की बहन थी।"

सीताराम—"यह तुम क्या कहती हो? वह उनकी बहन थी तो सुभद्राहरण कैसे हुआ?"

रुक्मिणी हँसने लगी। सीताराम ने कहा—"हँसती हो क्या? मैं न मानूँगा। मेरे प्रश्न का उत्तर दो, सुभद्रा अगर बहन ही थी तो सुभद्राहरण कैसे हुआ?"

सीताराम को यक़ीन था कि, उसने ऐसा विकट प्रश्न किया है कि जिसका जवाब देना सहज नहीं है।

रुक्मिणी ने बड़े मीठे स्वर में कहा—"दुर मूर्ख!"

सीताराम का हृदय पिघल कर मोम हो गया, बोला—"मैं मूर्ख तो हई हूँ। तुम्हारे पास मैं हार मानता हूँ। तुम्हारे निकट मैं हमेशा के लिए मूर्ख हूँ। सीताराम ने मन ही मन सोचा—ख़ूब अच्छा जवाब दिया है, बात बड़े मौक़े की कही है।"

सीताराम ने फिर कहा—"अच्छा, अगर वह बात तुम्हारे पसन्द की नहीं है तो क्या कह कर पुकारने से तुम ख़ुश होगी। यह मुझसे कहो।"

रुक्मिणी ने हँस कर कहा—"प्राण कह कर पुकारो ।"

सीताराम—"प्राण !"

रुक्मिणी ने कहा—"कहो प्रिये ।"

सीताराम—"प्रिये ।"

रुक्मिणी—"कहो प्रियतमे ।"

सीताराम—"प्रियतमे ।"

रुक्मिणी—"प्राणप्रिये ।"

सीताराम ने कहा—"प्राणप्रिये ।"

अच्छा, प्राणप्रिये, तुम जो रुपया दोगी उसका सूद क्या लोगी ?"

रुक्मिणी ज़रा गर्दन टेढ़ी कर अनखानी हुई बोली—"जाओ, जाओ, समझ गई जैसी तुम्हारी प्रीति है। किस मुँह से तुम सूद की बात पूछते हो ?"

सीताराम ने मारे ख़ुशी के फूल कर कहा—"नहीं, नहीं, यह कुछ बात नहीं। क्या मैं तुमसे सच थोड़े ही पूछता हूँ। मैं तो हँसी करता हूँ। जाओ प्रियतमे, तुम इतना भी नहीं समझती ?"

सीताराम की माँ को न मालूम किस रोग ने आ घेरा है, आज कल वह बराबर दामाद के घर जाती है और रुपया बाहर निकाल कर दे जाने के विषय में उसकी स्मरणशक्ति एक दम लुप्त हो गई है। कार्य्यवश सीताराम को अब अकसर रुक्मिणी के पास आना पड़ता है। आज कल सीताराम और रुक्मिणी दोनों आपस में मिल कर चुपही चुप न मालूम किस

विषय पर क्या विचार कर रहे हैं। बहुत दिनों तक सलाह विचार होने के बाद सीताराम ने कहा—"मुझे इतना फन्द फ़रेब नहीं आता। इस विषय में भागवत से बिना मदद लिए काम न चलेगा।"

आज सन्ध्या-समय घटा घिर आई और ख़ूब झमक कर पानी बरसने लगा। राजभवन के द्वार की किवाड़ें हवा के झोंके से शब्दसहित बार बार बन्द होने और खुलने लगीं। हवा इस वेग से बह रही थी कि बाग़ के बड़े बड़े पेड़ों की शाखायें झुक कर धरती में आ लगती थीं। बाढ़ में जो दुर्दशा छोटे छोटे गावों की होती है वही इस झड़ी में मेघों की भी हो रही है। रह रह कर बिजली का चमकना और मेघों का गरजना धरती को कँपाये देता है। ऐसे समय में उदयादित्य एक छोटी सी लड़की को गोदी में लिए बैठे हैं। घर का चिराग़ बुझ गया है। कोठरी की किवाड़ें बन्द हैं। घर में बिलकुल अँधेरा है। लड़की गोद में सो गई है। सुरमा जब जीती थी इस लड़की को बहुत प्यार करती थी। सुरमा की मृत्यु हो जाने पर इस लड़की की माँ इसे राजभवन नहीं जाने देती थी। आज बहुत दिनों के बाद वह घूमती फिरती राजभवन में एक बार आ गई है। वह उदयादित्य को देख कर एकाएक "काका" "काका" कह कर उनकी गोद में उछल पड़ी। उदयादित्य उसे छाती से लगा कर अपने शयनागार में ले आये हैं। उदयादित्य के मन का भाव यही है कि—"कदाचित् सुरमा इस लड़की को एक बार देखने को आ जाय! इस बालिका को वह बहुत चाहती थी! इसके ऊपर उसका बेहद स्नेह था, क्या इसे देखने वह एक बार न आयेगी!" लड़की ने एक बार पूछा—"काकी कहाँ हैं?"

उदयादित्य ने रुद्धस्वर में कहा—"एक बार उसको पुकारो न"। लड़की "काकी" "काकी" कह कर पुकारने लगी। उदयादित्य के मन में हुआ, जैसे किसी ने उत्तर दिया है। दूर से मानो कोई बोल उठी है, "आती हूँ।" मानो अपनी प्यारी बालिका की पुकार सुन कर, वह स्नेहमयी सुरमा स्वर्ग से उतर कर उसे गोद लेने के लिए आ रही है। उदयादित्य निद्रित बालिका को गोद में लिए अँधेरे घर में अकेले बैठे हैं। बाहर सन सन करके हवा बह रही है। किवाड़ में हवा का धक्का लगने से फट् फट् शब्द हो रहा है। उदयादित्य को किसी के आने की आहट सुनाई देने लगी। वे कान लगा कर सुनने लगे। ठीक पैर ही का शब्द तो है। उन की छाती ज़ोर से धड़कने लगी, जिससे उन्हें पैर की आहट भी अब अच्छी तरह सुनाई नहीं देती। इतने में एकाएक द्वार खुल गया। घर में चिराग़ की रौशनी आ पहुँची। उदयादित्य चौंक उठे। क्या सुरमा तो नहीं आई? नहीं, यह कभी सम्भव नहीं। वे हाथ में चिराग़ लिए चुपचाप एक स्त्री को घर में प्रवेश करते देख आँख मूँद कर बोले—"सुरमा!" पीछे उन्हों ने आँख खोल कर देखा तो सुरमा नहीं है, न मालूम वह कहाँ अन्तर्हित हो गई?"

स्त्री ने चिराग़ रख कर कहा—"क्यों प्यारे? क्या मुझे अब एक दम भूल गये? क्या अब कभी स्वप्न में भी मेरा स्मरण नहीं होता? मानो यह वचनरूपी वज्राघात सुन कर उदयादित्य की मोहनिद्रा भग्न हुई। उन्होंने उस स्त्री की ओर बड़े ग़ौर से देखा। इतने में बालिका जाग उठी और काका, काका कह कर रोने लगी। उदयादित्य उसे बिछौने पर लिटा कर सोचने लगे—"यह औरत कौन है? कैसे यहाँ आई? मैं इसके प्रश्न

का क्या उत्तर दूँ? यहाँ से भाग कर कहाँ जाऊँ, क्या करूँ?" वे यों ही सोच ही रहे थे कि वह स्त्री उनके पास आकर और सिर हिला कर कहने लगी—"भौंचक से क्यों हो रहे हो? क्या अब भी मुझे नहीं पहचाना? उस दिन की बात क्या अब भी याद नहीं आती? यदि ऐसा ही करना था तो उस दिन तुमने उतनी आशा देकर मुझे आसमान पर क्यों चढ़ा दिया था?" उदयादित्य कुछ न बोले, चुपचाप खड़े हो रहे। तब रुक्मिणी ने अपना मोहनास्त्र निकाला। उसने रो कर कहा—"मैंने तुम्हारा कौन सा अपराध किया है, जिससे तुम्हारी आँखों में मैं अब इस तरह गड़ती हूँ। तुम्हीं ने तो मेरा सर्वनाश किया। जिस युवती ने एक दिन युवराज को अपना तन मन दे डाला वह आज भिखारिन बन गली गली भटकती फिरती है, इस फूटे कपार में विधाता ने क्या यही लिखा था?"

इस ब्रह्मास्त्र की चोट उदयादित्य के हृदय में कुछ ज़रूर लगी। उनके मन में एकाएक हुआ—कौन जाने शायद मैंने ही इसका सर्वनाश किया हो। अपने ऊपर की बीती हुई बात वे भूल गये। जवानी के जोश में रुक्मिणी ने जो उन्हें पग पग में प्रलोभन दिखलाया था, प्रति दिन जो उनके आगे जाल फैलाये बैठी रहती थी, भँवर की तरह जिसने उनको अपने दोनों बाहों के बीच नचा कर एक ही घड़ी में पाताल के घोर अन्धकार में डाल दिया था, ये सभी बातें वे भूल गये हैं। देखा कि रुक्मिणी का कपड़ा मैला और फटा है। रुक्मिणी रो रही है। दयालुचित्त उदयादित्य ने कहा, "तुम्हें क्या चाहिए?"

रुक्मिणी ने कहा—"मुझे और कुछ नहीं चाहिए; मैं सिर्फ़ प्रेम चाहती हूँ। मैं इस खिड़की में बैठ कर और तुम्हारी छाती

में अपना मुँह छिपा कर तुमसे सोहाग भाग चाहती हूँ। क्यों, सुरमा के मुँह से क्या मेरा मुँह काला है? अगर काला भी हुआ है तो वह तुम्हारे ही लिए गली गली की धूल छान कर। पहले तो काला नहीं था।"

यह कह कर रुक्मिणी उदयादित्य के पलङ्ग पर बैठने चली। उदयादित्य अब अपने को नहीं रोक सके। वे अधीर हो कर बोल उठे—"हाँ, हाँ, इस बिछौने पर मत बैठो, मत बैठो।"

रुक्मिणी चुटीली साँपिन की तरह सिर उठा कर बोली, "क्यों नहीं बैठूँ?"

उदयादित्य ने उसके आगे खड़े हो कर और रास्ता रोक कर कहा—"नहीं तुम उस पलङ्ग के पास मत जाओ, तुम क्या चाहती हो सो कहो मैं अभी देता हूँ।"

रुक्मिणी ने कहा—"अच्छा, अपनी उँगली की यह अँगूठी दे दो।"

उदयादित्य ने तुरन्त अपने हाथ से अँगूठी निकाल कर उसे दे दी। रुक्मिणी अपनी अँगुली में अँगूठी पहन कर घर से बाहर हो गई। वह सोचने लगी, मुझ डाकिनी को अपने मन्त्र का गर्व अब भी मन से दूर नहीं होता। अच्छा, कुछ दिन और सही, उसके बाद मेरा मन्त्र ज़रूर फलित होगा। रुक्मिणी के चले जाने पर उदयादित्य बिछौने पर लेट रहे। वे दोनों बाहों से मुँह ढाँप कर और रो कर बोले—"हाय, सुरमा तू कहाँ गई। आज मेरे इस वज्राहत कलेजे की आग कौन बुझावेगा?"



# बाईसवाँ परिच्छेद।

भागवत की हालत कुछ अच्छी नहीं है। वह कई दिन से चुपचाप बैठ कर बराबर तम्बाकू फूँक फूँक कर पीता है। भागवत जब ध्यानस्थ होकर तम्बाकू पीता है तब पड़ोसियों के मन में भय उत्पन्न होता है। कारण यह कि उसके मुँह से जैसा काला धुआँ टेढ़ा हो कर निकलता है उसके मन में भी वैसा ही कोई काला रन लिए कौटिल्यचक्र चलाता रहता है। तो भी भागवत है बड़ा धर्मात्मा। उसमें यदि कुछ दोष है तो यही कि वह किसी के साथ मिलता जुलता नहीं। हरिनाम की माला (सुमरनी) बराबर हाथ में लिए रहता है। किसी के साथ अधिक बात चीत नहीं करता। दूसरे की चर्चा चलाना उसे पसन्द नहीं। किन्तु किसी के ऊपर जब भारी सङ्कट आ पड़ता है तब उसे भागवत के सदृश पक्का विचार दूसरा कोई नहीं दे सकता। भागवत अपनी इच्छा से कभी किसी की बुराई नहीं करता, हाँ, अगर कोई उसकी बुराई करे तो भागवत इस देह से उसे कभी भूल भी नहीं सकता था। उसका बदला ले कर ही वह अपने हाथ का हुक्का नीचे रखता था। मतलब यह कि संसार में जो लोग अच्छे गिने जाते हैं, भागवत भी उन्हीं में से एक है। टोले महल्ले के लोग भी उसका आदर करते हैं। तङ्गदस्ती की हालत में भागवत ने कुछ क़र्ज लिया था, किन्तु उसे लोटा थाली बेंच कर चुका दिया है।

एक दिन सवेरे सीताराम ने आ कर भागवत से पूँछा—"कहो भाई, कैसे हो?"

भागवत ने कहा—"हालत अच्छी नहीं है।"

सीताराम ने कहा—"क्यों, कुछ कहो भी तो?"

भागवत ने कुछ देर तक तम्बाकू पी कर सीताराम के हाथ में हुक्का थमा कर कहा—"बड़े कष्ट से समय बीत रहा है।"

सीताराम ने कहा—"सच कहो, ऐसी हालत एकाएक क्यों हो गई?"

भागवत ने कुछ रुष्ट हो कर कहा—"ऐसी हालत क्यों हो गई? क्या यह बात तुमसे छिपी है? मैं तो समझता हूँ, जो हालत मेरी है वही हालत तुम्हारी भी है।"

सीताराम ने कुछ ठिठक कर कहा—"नहीं भाई, मैं तो नहीं पूछता, मैं यह पूछता हूँ कि तुम कुछ क़र्ज क्यों नहीं लेते?"

भागवत ने कहा—"क़र्ज़ लेकर तो फिर चुकाना होगा। क्या दे कर क़र्ज चुकाऊँगा। बेंचने या गिरवीं रखने लायक़ कोई वस्तु मेरे पास अब है भी तो नहीं।"

सीताराम ने गर्व के साथ कहा—"तुमको कितने रुपये उधार चाहिएँ? मैं दूँगा।"

भागवत ने कहा—"वाह, अगर तुम्हारे पास इतने अधिक रुपये हैं कि मुट्ठी भर रुपया पानी में फेंक देने पर भी उसकी कुछ परवा नहीं तो दस रुपये मुझे भी दे डालो, किन्तु यह

बात पहले ही सुन रक्खो। मुझको क़र्ज चुकाने की सामर्थ्य नहीं है।"

सीताराम ने कहा—"भाई, उसके लिए तुमको चिन्ता करनी न होगी।"

सीताराम से इस तरह सहायता पाने की बात सुन कर भागवत मित्रता की तरङ्ग में एक दम उछल उठा हो यह बात नहीं। वह एक चिलम तम्बाकू भर कर चुपचाप पीने लगा।

सीताराम धीरे धीरे कहने लगा—"भाई, राजा की बेइन्साफ़ी से तो हम लोगों की रोटी मारी गई।"

भागवत ने कहा—"तुम्हारे चेहरे से तो ऐसा नहीं जान पड़ता।"

सीताराम की वह उदारता भागवत को सह्य न हुई। वह मन ही मन कुछ चिढ़ सा गया था।

सीताराम ने कहा—"नहीं भाई, एक बात कहता हूँ—आज नहीं तो दस रोज़ के बाद ही सही। रोटी मिलना कठिन होहीगा। राजा यदि अन्याय ही करे तो हम लोग क्या कर सकते हैं।"

सीताराम—"अहा, युवराज जब राजा होंगे तब यशोहर में रामराज्य होगा। भगवान् उतने दिनों तक हम लोगों को जीवित रक्खें।"

भागवत ने चिढ़ कर कहा—"भाई! हमें इन बातों से क्या प्रयोजन? तुम बड़े आदमी हो, तुम अपने घर में बैठ कर राजा और मन्त्री की पञ्चायत किया करो। तुम्हें शोभा देगी।

मैं ग़रीब आदमी हूँ। मुझे उतना सामर्थ्य कहाँ कि तुम्हारी बराबरी कर सकूँ ।"

सीताराम—"भाई, क्रोध क्यों करते हो ? पहले मेरी बात तो सब सुन लो।" यह कह कर वह चुपके से भागवत के कान में कुछ कहने लगा।

भागवत और भी क्रुद्ध हो कर बोला—"देखो सीताराम, मैं तुमसे समझा कर कह देता हूँ । मेरे सामने फिर ऐसी बात ज़बान से न निकालना।"

भागवत की बात सुन कर सीताराम उसी समय वहाँ से चला गया। भागवत ध्यानस्थ हो कर सारे दिन न मालूम क्या सोचता रहा। दूसरे दिन सबेरे उसने ख़ुद सीताराम के पास जा कर कहा—"सीताराम, कल तुमने जो बात कही थी, वह बहुत ठीक है।"

सीताराम गर्व से फूल उठा और बोला—"भाई, तुमसे ठीक न कहूँगा तो क्या झूँठ कहूँगा ?"

भागवत ने कहा—"आज उसी विषय में तुमसे सलाह लेने आया हूँ।"

सीताराम और भी गर्वित हो उठा। कई दिनों तक उस विषय में बराबर विचार होता रहा।

विचार करके जो सिद्धान्त हुआ सो यही कि इस मज़मून की एक जाली दरख़ास्त लिखी जाय कि युवराज प्रतापादित्य के ऊपर बादशाह के निकट विद्रोहिता का इलज़ाम लगा कर स्वयं राज्य पाने के लिए प्रार्थना कर रहे हैं। उस दरख़ास्त में युवराज की मोहर अङ्कित रहेगी। रुक्मिणी जो उनसे अँगूठी ले गई उस पर उनका नाम खुदा हुआ है।

सलाह के मुताबिक काम हुआ। एक जाली दरख़्वास्त लिखी गई। उस पर युवराज के नाम की मोहर अङ्कित हुई। बेवकूफ़ सीताराम के ऊपर यह काम निर्भर करना ठीक नहीं है, अतएव निश्चय हुआ कि भागवत ही दरख़ास्त ले कर दिल्ली-पति के पास जायँ।

भागवत उस दरख़ास्त को ले कर दिल्ली की तरफ़ न जा कर महाराज प्रतापादित्य के पास गया। उसने महाराज से निवेदन किया—"उदयादित्य का एक नौकर यह दरख़ास्त ले कर दिल्ली की तरफ़ जा रहा था। मुझे किसी तरह इस बात का पता लगा, मैंने उससे यह काग़ज़ छीन लिया है। वह उसी समय देश छोड़ कर भाग गया। यह दरख़ास्त ले कर मैं महाराज के पास आ रहा हूँ।"

भागवत ने सीताराम का कोई ज़िक्र न किया। दरख़ास्त पढ़ कर प्रतापादित्य की क्या अवस्था हुई सो कहने की कोई आवश्यकता नहीं। भागवत फिर अपने काम पर बहाल हुआ।

---

# तेईसवाँ परिच्छेद ।

विभा की आँखों के सामने चारों ओर अन्धेरा सा छा गया है। मानो भविष्य का कोई एक मर्म-भेदी दुःख, नैराश्य और जीवन के समस्त सुख की अवसन्नता उसके पास आने को प्रतीक्षा कर रही है। पल पल वे उसके निकट खिसकते आ रहे हैं। जीवन-सुख को शून्य करने वाले सीमाहीन भविष्य अदृष्ट की जो आशङ्का है उस आशङ्का की छाया ने मानो विभा के हृदय की आशा-प्रभा को ढक लिया है। विभा का कहीं जी नहीं लगता। उसका मन हमेशा चिन्ता से भरा रहता है। वह अकेली बिछौने पर पड़ी रहती है। इस समय उसके पास कोई नहीं है। विभा साँस ले कर, रो कर और अत्यन्त आकुल हो कर बोली—"तो क्या उन्होंने मेरा परित्याग कर दिया? मैंने उनका क्या अपराध किया है?" वह रो रो कर विलाप करने लगी—"मैंने क्या अपराध किया है?" वह दोनों हाथों से मुँह ढाँप कर तकिये के ऊपर छाती रख कर और रो रो कर बारबार बोलने लगी "मैंने क्या किया है?" एक चिट्ठी तक नहीं; कोई आदमी लौट कर अब तक वहाँ से भी तो नहीं आया। किसी के मुँह से उनकी कुछ कुशलवार्ता भी नहीं सुनी। मैं क्या करूँ? दिन भर इधर उधर घर घर घूमती फिरती हूँ; कोई उनका कुशलसमाचार नहीं कहता। किसी के मुँह से उनका नाम तक सुनने में नहीं आता। हाय! हाय! मेरा दिन किस तरह कटेगा?" यों ही कितने ही दिन बीत

गये। कभी दिन में कभी रात में सङ्गिहीन विभा राजभवन के सूने घरों में इधर से उधर एक छायाछाया की तरह अकेली घूमती फिरती है।

ऐसे ही अवसर में एक दिन सवेरे राममोहन ने आ कर "दुलहिन साहिबा की जय हो" कह कर विभा को प्रणाम किया। विभा का हृदय इस तरह उमग उठा जैसे उसके ऊपर एकाएक आनन्द का मेघ उमड़ आया हो। उसके नयनों में आनन्द का नीर भर आया। वह चकित हो कर बोली—"मोहन, तुम आ गये।"

हाँ, सरकार, मैंने देखा कि आप सेवक को भूल गई हैं। इसलिए सोचा कि एक बार आपको अपना स्मरण दिला आऊँ।"

विभा ने राममोहन से कितनी ही बातें पूछने का इरादा किया पर लज्जा से कुछ पूँछ न सकी। पूछने की बात होठों तक आती थी पर मुँह से बाहर न निकलती थी। चन्द्रद्वीप का कुशल सुनने के लिए विभा का जी व्याकुल हो उठा।

राममोहन ने विभा के मुँह की ओर देख कर कहा—"क्यों माँ, तुम्हारा मुँह ऐसा उदास क्यों देखता हूँ। तुम्हारी आँखों के नीचे झाँई पड़ गई है। मुँह में हँसी नहीं। सिर के बाल रूखे हैं। माँ, अब अपने घर चलो, मालूम होता है, यहाँ तुम्हारी हिफ़ाज़त करने वाला कोई नहीं।"

विभा सूखी हँसी हँसी; पर कुछ बोली नहीं। उसकी दोनों आँखों से आँसू बह चले। वे उसके सूखे हुए दोनों मलिन गालों को भिगो कर नीचे गिरने लगे, जो रोके भी नहीं रुके। बहुत दिनों तक अपमानित होने के बाद सम्मान पाने

पर जो एक प्रकार की ग्लानि मन में उपज आती है। विभा ने उसी कोमल प्रेमपूर्ण ग्लानि से रो कर आँसू बहा डाला। मन ही मन कहा—"क्या इतने दिनों पर आज मेरी सुध ली गई है ?"

राममोहन से भी न रहा गया। उसकी आँखों में भी आँसू भर आया, बोला—"माँ, यह क्या ? क्यों रो रही हो, रोना अशुभ है, तुम लक्ष्मी हो, हँसते मुँह से हमारे घर चलो। आज शुभ दिन में आँखों के आँसू पोंछ डालो।"

रानी के मन में यह डर था कि शायद दामाद उनकी विभा को पीछे ग्रहण न करें। राममोहन विभा को बुलाने आया है—यह सुन कर उन्हें अत्यन्त हर्ष हुआ। राममोहन को बुला कर जामाता का कुशल पूँछा, बड़ी ख़ातिर से राममोहन को भोजन कराया। राममोहन के मुँह से कुशल सुन कर बहुत प्रसन्न हुईं और ख़ुशी ख़ुशी वह दिन बिताया। कल यात्रा का अच्छा दिन है। कल सबेरे ही विभा को ससुराल भेजने की बात स्थिर हुई। प्रतापादित्य ने इस विषय में अपनी कोई असम्मति प्रकट न की।

यात्रा की जब सभी बातें ठीक हो चुकीं तब विभा एक बार उदयादित्य के पास गई। उदयादित्य अकेले बैठे कुछ सोच रहे थे।

विभा को देख कर एकाएक कुछ चकित हो कर बोले—"विभा, तुम अपने घर जाती हो, यह सुन कर मैं बहुत प्रसन्न हुआ, तुम वहाँ सुख से रहोगी। मैं आशीर्वाद देता हूँ—तुम लक्ष्मीस्वरूपा हो कर स्वामी का घर सुशोभित करो।

विभा उदयादित्य के दोनों पैर पकड़ कर रोने लगी। उदयादित्य की आँखों से आँसू गिरने लगे। उन्होंने विभा के माथे पर हाथ रख कर कहा—"क्यों रोती हो? विभा, यहाँ तुमको कौन सुख था; चारों ओर केवल दुःख, कष्ट और शोक ही शोक छाये थे। इस क़ैदखाने से भग कर अब तुम बचीं।"

विभा जब उठी, तब उदयादित्य ने कहा—"जाती हो? अच्छा जाओ। स्वामी के घर जाकर हम लोगों को एक दम भूल मत जाना। कभी कभी याद करते रहना। अपना कुशल-समाचार बराबर भेजा करना।"

विभा ने राममोहन के पास जाकर कहा—"मैं अब न जा सकी।

राममोहन ने विस्मित हो कर कहा—"क्यों?"

विभा ने कहा—"मैं अभी न जा सकूँगी। मैं भैया को अकेले छोड़ कर कैसे जाऊँ? मेरेही कारण उनको इतना कष्ट उठाना पड़ा है। और मैं ऐसी पामर जो उनको यहाँ इस अवस्था में छोड़ कर सुख भोगने जाऊँगी? जितने दिन उनके मन में तिलमात्र भी कष्ट रहेगा उतने दिन मैं भी उनके साथ रह कर कष्ट भोगूँगी। यहाँ मेरी तरह उनकी सेवा कौन करेगा?" यह कह कर विभा रोती हुई चली गई।

अन्तःपुर में एक भारी हल्ला उठ खड़ा हुआ। रानी आ कर विभा की भर्त्सना करने लगीं। अनेक प्रकार के भय दिला कर उसे कितना ही समझाया बुझाया। विभा ने सिर्फ़ यही कहा—"नहीं माँ, मैं न जा सकूँगी।"

रानी ने रो कर रोष के साथ कहा—"मैंने ऐसी हठीली लड़की तो कहीं देखी नहीं।" उन्होंने महाराज के पास जा कर

सब हाल कहा। महाराज ने बड़े शान्त-भाव से कहा—"अच्छा तो, यदि विभा को जाने की इच्छा नहीं है तो क्यों जायगी?"

रानी ने निरुपाय होकर और हाथ चमका कर कहा—"आप लोगों के जो जी में आवे सो करें, मैं अब इन बातों में न पड़ूँगी।"

उदयादित्य यह समाचार सुन कर विस्मित हुए। उन्होंने विभा के पास जा कर उसे बहुत तरह से समझाया। विभा चुप हो कर रोने लगी। उनकी बात पर विभा ने कुछ ध्यान न दिया।

राममोहन ने हताश हो कर बड़ी उदासी के साथ कहा—"माँ, तो मैं अब जाता हूँ। महाराज से जा कर क्या निवेदन करूँगा?"

विभा कुछ न बोली।

राममोहन ने कहा—"अच्छा, तो चलता हूँ।" कह कर और विभा को प्रणाम करके विदा हुआ।

विभा एक दम आकुल हो कर रो उठी और बड़ी अधीरता से पुकारा, "मोहन।"

मोहन ने लौट कर कहा—"क्या है?"

विभा ने कहा—"महाराज से जाकर कहना, वे मेरा अपराध अवश्य क्षमा करेंगे। उनके बुला भेजने पर भी मैं न जा सकी, यह केवल मेरा अभाग्य है।

राममोहन ने अत्यन्त उदासीनता के साथ कहा—"जो आप की आज्ञा।" यह कह कर वह विभा को प्रणाम करके

चला गया। विभा ने देखा, राममोहन विभा के हृदय का असली भाव कुछ न समझ सका। विभा के मन में इस बात की भारी चिन्ता हुई। एक तो उसका मन जहाँ जाने के लिए इतने दिनों से व्यग्र हो रहा था वहाँ वह जा न सकी। दूसरे, राममोहन जो उस पर सच्ची भक्ति रखता था वह रूठ कर चला गया। इन सब बातों को सोच कर विभा के मन में जो कष्ट हो रहा था, वह उसी का हृदय जानता था।

विभा ससुराल न गई। वह अपनी आँखों के आँसू पोंछ कर और हृदय को वज्र बना कर अपने भाई की सेवा-शुश्रूषा के लिए रह गई। वह दुबली पतली मलिन छाया की तरह चुपचाप अपने घर का आवश्यक काम करने लगी। उदयादित्य वात्सल्य भाव से भरी हुई कोई बात जब विभा से कहते हैं तब वह आँखें नीची करके कृतज्ञता की मुसकुराहट से अपने दोनों होंठों को ज़रा विकसित करती है। संध्या-समय वह उदयादित्य के पैरों के पास बैठ कर कुछ बातें करना चाहती है। रानी क्रोधवश जब कभी विभा को झिड़कती हैं तब वह उसे चुपचाप सुन लेती है। उनकी कड़ी से कड़ी बातों का मर्म चुपचाप सह लेती है और वहाँ से किसी ओर टल जाती है। जब कभी कोई स्त्री विभा का चिबुक धर कर कहती है—"विभा, तू इस तरह सूखी क्यों जा रही है? विभा कुछ जवाब नहीं देती, सिर्फ़ मुसकुराती है।

इसी समय भागवत ने पूर्वोक्त जाली दरख़ास्त लेकर प्रतापादित्य को दिखलाई, जिसे देख कर प्रतापादित्य प्रज्वलित हो उठे। बाद इसके, बहुत सोच विचार कर उन्होंने उदयादित्य को क़ैद करने का हुक्म दिया। मन्त्री ने कहा—

"महाराज, युवराज ने यह काम किया होगा, यह किसी तरह विश्वास नहीं होता। जो सुनता है वही दाँतों जीभ काटता है और कहता है, राम, राम, यह बात सुनने की नहीं। युवराज से ऐसा काम होगा—यह कभी सम्भव नहीं।"

प्रतापादित्य ने कहा—"मुझे भी इस पर कुछ विशेष विश्वास नहीं होता। किन्तु तो भी उदयादित्य कारागार में रहेगा इसमें हानि ही क्या? वहाँ उसे किसी तरह की तकलीफ़ नहीं दी जायगी। केवल छिपे तौर पर कुछ करने न पावे, इसलिए पहरा बैठा दिया जायगा।"



# चौबीसवाँ परिच्छेद ।

जब राममोहन अकेले चन्द्रद्वीप लौट आया और हाथ जोड़ कर अपराधी की तरह राजा के सामने जाकर खड़ा हुआ, तब रामचन्द्र राय का सर्वाङ्ग जल उठा। उन्होंने सोच रक्खा था, विभा के आने पर उसे प्रतापादित्य और उनके वंश के सम्बन्ध में दो चार बातें सुना कर अपने श्वशुर के ऊपर का क्रोध परिशोध करेंगे। कौन कौन बात कहेंगे, किस तरह कहेंगे, किस वक्त कहेंगे, इन सब बातों को उन्होंने मन ही मन ठीक कर रक्खा था। रामचन्द्र राय मूर्ख नहीं हैं। वे विभा को किसी तरह का कष्ट देंगे, यह उनका अभिप्राय नहीं था। वे केवल विभा को उसके पिता के सम्बन्ध में कोई कोई बात कह कर उसे खूब लजावेंगे इसी आनन्द में वे डूबे थे। यहाँ तक कि इस आनन्द के उद्रेक से उनके मन में पूरा विश्वास था कि विभा के आने में कोई बाधा न होगी। ऐसे अवसर में राममोहन को अकेले आते देख कर रामचन्द्र बड़े ही विस्मित होकर बोल उठे, "राममोहन, क्या हुआ ?"

राममोहन—"कार्य सिद्ध न हुआ।"

राजा—"विभा को नहीं ला सके।"

राममोहन—"नहीं महाराज, बुरे वक्त में यहाँ से चला था ?"

राजा अत्यन्त क्रुद्ध हो कर बोल उठे—"गधे, तुम को किसने कहा था ? जब मैंने बार बार तुम्हें रोका था, तब तुमने माना नहीं, छाती ठोक कर गये, अब——"

राममोहन ने कपार पर हाथ रख कर कहा—"महाराज, यह मेरे कर्म का दोष है।"

रामचन्द्रराय और अधिक क्रुद्ध होकर बोले—"रामचन्द्र-राय की बेइज़्ज़ती। गधे, तुम मेरा नाम लेकर भीख माँगने गये। प्रतापादित्य ने वह भी न दी। इतनी बड़ी बेइज़्ज़ती आज तक मेरे ख़ानदान में किसी की न हुई थी ?"

राममोहन ने अपने झुके हुए सिर को उठा कर कुछ गर्व के साथ कहा—"आप यह न कहें। प्रतापादित्य यदि बाधा देते तो मैं बलपूर्वक विभा को ले आता। यह तो मैं यहाँ से प्रतिज्ञा करके ही गया था। महाराज, जब मैं आपका हुक्म तामील करने गया था तब मैं प्रतापादित्य का भय थोड़े ही करता। प्रतापादित्य राजा हैं इससे क्या, मेरे राजा तो वे नहीं हैं।"

राजा ने कहा—"तो काम क्यों न हुआ ?"

राममोहन बड़ी देर तक चुप रहा। उसकी आँखें डबडबा आईं।

राजा ने अधीर हो कर कहा—"राममोहन, जल्दी बोलो।"

राममोहन ने हाथ जोड़ कर कहा—"महाराज——"

राजा—"क्या, कहो।"

राममोहन—"महाराज, दुलहिन साहबा ने स्वयं आने से इनकार किया।" राममोहन की आँखों से आँसू गिरने लगे।

मालूम होता है ये आँसू ग्लानि के थे। इस अश्रुपात का कारण यही जान पड़ता है कि दुलहिन के ऊपर उसका इतना विश्वास था कि जिस विश्वास के बल वह छाती ठोक कर बड़ी ख़ुशी के साथ माँ को लाने गया था, पर माँ न आईं। माँ ने उसका मान न रक्खा। क्या जाने, क्या समझ कर वृद्ध रामभोहन अपनी आँखों के आँसू नहीं रोक सका।

राजा यह सुन कर एक दम उठ खड़े हुए और आँखें विस्फारित करके बोले—"अच्छा।" बड़ी देर तक उनके मुँह से और कोई बात न निकली।

"आने से इनकार किया, अच्छा, गधे, तुम मेरे सामने से अभी दूर हो, मैं तुम्हारा मुँह देखना नहीं चाहता।"

रामभोहन चुपचाप वहाँ से बाहर चला गया। वह समझ गया कि सब उसी का दोष है, अतएव यह दण्ड उसे उचित ही जान पड़ा। उसने इसे कुछ अन्याय न समझा।

राजा किस तरह इस अपमान का बदला लेंगे। यह किसी तरह उनकी समझ में न आया। प्रतापादित्य का कुछ कर ही नहीं सकते। विभा भी उनके क़ब्ज़े से बाहर है। रामचन्द्रराय अधीर हो कर घूमने लगे।

दो ही दिन में यह ख़बर विविध आकार धारण करके चारों ओर फैल गई। बात इतनी बढ़ गई कि इसका बिना बदला लिए कल्याण नहीं। यहाँ तक कि प्रजागण तक बदला लेने के लिए व्यग्र हो उठे। उन लोगों ने कहा—"हमारे महाराज का ऐसा अपमान।" मानो अपमान सबके रोम रोम में घुसा है। एक तो रामचन्द्रराय के मन में प्रति हिंसा की ओर चित्त की वृत्ति स्वभाव से ही बलवती है, दूसरे उनके मन में

यह होने लगा कि अपमान का बदला न लेने से प्रजायें क्या समझेंगी, नौकर लोग क्या समझेंगे और रमाई क्या समझेगा? जब वे मन में कल्पना करके देखते हैं कि इस बात को लेकर रमाई किसी एक व्यक्ति के पास बैठ कर उपहास कर रहा है तब वे अत्यन्त व्यग्र हो उठते हैं।

एक दिन दरबार में मन्त्री ने निवेदन किया—"महाराज, आप दूसरा विवाह करें।"

रमाई ने कहा—"प्रतापादित्य की लड़की अपने भाई को लेकर रहे।"

राजा रमाई की ओर देख कर और हँस कर बोले—"रमाई, तुम ठीक कहते हो।"

राजा को हँसते देख कर जितने सभासद् थे सभी हँसने लगे। सिर्फ फर्नान्डिज न हँसा, उसे कुछ क्रोध हो आया। रामचन्द्रराय की तरह दरबार के लोग मर्यादा के रक्षार्थ हमेशा ही व्यग्र रहते थे, किन्तु मर्यादा की रक्षा कैसे होती है यह ज्ञान उन लोगों को नहीं है।

दीवान—"मन्त्री महाशय ने ठीक कहा है। ऐसा होने से प्रतापादित्य और उनकी बेटी ( विभा ) को अच्छी शिक्षा मिलेगी।"

रमाई—"इस शुभ कार्य में अपने वर्तमान श्वशुर महाशय के पास निमन्त्रण पत्र भेजना न भूलेंगे। क्या जानें निमन्त्रण पत्र न पाने से उनके मन में रंज हो।" यह कह कर रमाई ने आँखें बन्द कीं। दरबार के सब लोग हँसने लगे; जो लोग कुछ दूर पर बैठे थे, जिन्हें कुछ सुन न पड़ा, वे लोग भी हँसी में विना योग दिये न रह सके।

रमाई—"महाराज, फलदान देने के लिए सधवा स्त्रियों में यशोहर से अपनी सास को बुला भेजेंगे। और "मिष्टान्न मितरे-जनाः" प्रतापादित्य की बेटी को एक थाल मिठाई भेज दीजि-येगा, और उसके साथ दो कच्चे केले भी!"

राजा हँसते हँसते लोट गये। सभासद् गण मुँह पर चादर रख कर और मुँह फेर कर हँसने लगे। फर्नान्डिज़ सब की आँखें बचा कर वहाँ से चुपचाप उठ कर चला गया।

दीवान जी ने एक बार रसिकता करने की चेष्टा की, वे बोले—"मिष्टान्नमितरेजनाः" यदि और लोगों के भाग्य में मिष्टान्न ही हो तब तो सब मिठाइयाँ यशोहर में ही ख़र्च हो जायँगी। क्या चन्द्रद्वीप में मिठाई खाने के योग्य लोग नहीं हैं।"

यह बात सुन कर किसी को हँसी न आई। राजा चुप हो कर गुड़गुड़ी पीने लगे। सभासद् लोग ज्यों के त्यों रहे। रमाई ने दीवान जी की ओर एक बार चकित की तरह देखा। मन्त्री ने खेद के साथ कहा—"दीवानजी, आप राजा साहब के ब्याह में क्या मिठाई का बन्दोबस्त इतना कम करेंगे कि यह यशोहर ही में बट कर ख़तम हो जायगी?

दीवानजी बेचारे सिर खुजलाने लगे।

विवाह की सब बातें पक्की हुईं।



# पच्चीसवाँ परिच्छेद।

उदयादित्य जहाँ क़ैद किये गये हैं, वह यथार्थ में कारागार नहीं है। वह राजभवन से लगा हुआ एक छोटा सा मकान है। राजभवन के ठीक दक्खिन की ओर एक राजमार्ग है, और उसके पूरब ओर एक चौड़ी दीवाल है। उसी पर पहरेदार लोग घूम फिर कर पहरा दे रहे हैं, जिस घर में उदयादित्य बन्द किये गये हैं उसमें एक छोटी सी खिड़की है। उस खिड़की की राह से थोड़ा सा आकाश, एक बँसवाड़ी और एक शिवालय देख पड़ता है। जब उदयादित्य कारागार में प्रविष्ट हुए तब साँझ हो चुकी थी। वे खिड़की के पास मुँह रख कर धरती पर बैठे। बरसात का मौसम है। आकाश में चारों ओर बादल घिरे हैं। सड़क पर कहीं कहीं पानी है। निःशब्द रात में दो एक मुसाफ़िर सड़क पर जा रहे हैं। पानी में चलने के कारण उनके पैरों का छप छप शब्द हो रहा है। पूरब तरफ़ से कारागार के हृदय की धड़काहट की तरह पहरेदारों के चलने की आहट बराबर उनके कानों में आ रही है। क्रमशः पहर पर पहर बीतने लगा। दूर से चौकीदारों के पुकारने की आवाज़ कुछ कुछ सुनाई देने लगी। आकाश में एक भी तारागण दिखाई नहीं देता। जिस बँसवाड़ी की ओर उदयादित्य दृष्टि किये बैठे थे, वह बिलकुल जुगनुओं के बीच छिप गई है। उस रात में उदयादित्य को नींद न आई। वे खिड़की के पास बैठ कर पहरेदारों के पैरों की आहट बराबर सुनते रहे।

विभा आज कितने ही दिन बाद सन्ध्या समय एक बार वेली के बगीचे में टहलने गई है। इधर हवेली में लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी है। चारों ओर सब लोग आपस में एक दूसरे से पूँछ रहे हैं, "क्या हुआ है, क्या वृत्तान्त है?" सभी की आँखों में आँसू जारी हैं, सभी औरतें लम्बी साँस ले लेकर तरह तरह की बातें चला रही हैं। मालूम होता है विभा इस समाज में अभी सम्मिलित न हो सकेगी क्योंकि वह दिल बहलाने को बगीचे की तरफ़ गई है। सूर्य का उदय आज बादलों ही में हुआ और अस्त भी बादलों ही में हुआ है। कब उदय हुआ और कब साँझ हुई यह किसी को न जान पड़ा। केवल बादल में पच्छिम तरफ़ सुनहरी रेखा छिटकी हुई दिखाई दी थी किन्तु दिन छिपते न छिपते ही वह लुप्त हो गई। धीरे धीरे अन्धकार गाढ़ा होने लगा। दिशायें अन्धकार में डूब गईं। पंक्तिबद्ध झाऊ आदि वृक्षों को अन्धकार ने इस तरह घेर लिया है कि उन वृक्षों के परस्पर का अन्तर दिखाई नहीं देता। मन में ठीक ऐसा अनुमान होने लगा जैसे हज़ारों लम्बे पैरों के ऊपर भार देकर एक बड़ा विस्तृत अन्धकार खड़ा है। रात होने लगी। राजभवन की रोशनी एक एक कर सब बुझ गई। विभा झाऊ वृक्ष के नीचे बैठी है। विभा स्वभाव से ही डरपोक है, किन्तु आज उसे डर नहीं लगता। जितना ही अन्धकार बढ़ रहा है उतना ही उसके मन में हो रहा है जैसे उसके पाँव के नीचे की धरती कोई उठाये लिये जा रहा है। मानो किसी ने उसे सुख से, शान्ति से और संसार के किनारे से ढकेल कर नीचे गिरा दिया है। वह अगाध अन्धकार के समुद्र में जा गिरी है। उस समुद्र में गोता खा कर क्रमशः नीचे ही की ओर जा रही है। उसके माथे

के ऊपर क्रमशः अन्धकार बढ़ रहा है। उसके पैरों के नीचे धरती नहीं। उसके चारों तरफ़ शून्य ही शून्य दिखाई देता है। उसका आधार, किनारा और संसार धीरे ही धीरे दूर से भी दूर जा रहे हैं। उसके मन में होने लगा, जैसे थोड़ा थोड़ा कर के उसके सामने एक बड़ा भारी व्यवधान आकाश की ओर खड़ा हो रहा है। न मालूम उस भाग में कितनी क्या क्या चीज़ें पड़ी हैं। उसका मन व्याकुल हो उठा। उस भाग में उसे सब कुछ दिखाई दे रहा है, उस भाग में सूर्य का प्रकाश, खेल तमाशा, और उत्सव आदि सभी दिखाई दे रहे हैं। मानो किसी ने बड़ी निष्ठुरता से उसको पकड़ रक्खा है। अपना प्राण दे देने पर भी वह उसे उस तरफ़ न जाने देगा। मानो विभा ने आज दिव्य दृष्टि पाई है।

इस चराचरव्यापी घनघोर अन्धकार के ऊपर मानो विधाता ने विभा का भविष्य अदृष्ट लिख दिया है, उसी को मानो वह अकेली बैठ कर पढ़ रही है। इसी से उसकी आँखों में आँसू नहीं। देह निश्चेष्ट है और पलकें खुली हैं। दोपहर रात बीत जाने के बाद हवा कुछ ज़ोर से चली; अँधेरे में पेड़ सब हिल उठे। हवा वहाँ से कुछ दूर हट कर मानो बच्चे की तरह हू हू करके रोने लगी। विभा के मन में कल्पना होने लगी मानो दूरातिदूर समुद्र के किनारे बैठ कर विभा के बड़े हौसले और स्नेह के छोटे छोटे बच्चे हाथ पैर पटक कर रो रहे हैं, और वे व्याकुल हो कर विभा को माँ, माँ, कह कर पुकार रहे हैं। वे विभा की गोद में आना चाहते हैं, पर उन्हें आने का रास्ता दिखाई नहीं देता; मानो उनके चिल्लाने की आवाज़ शतलक्ष योजन से घोर अन्धकार को फाड़ कर विभा के कानों में आ पहुँची है। विभा

के हृदय ने मानो अधीर हो कर कहा—"कौन है रे, तुम सब कौन हो, तुम सब इस तरह क्यों रो रहे हो, तुम लोग कहाँ हो, दिखाई क्यों नहीं देते ।" विभा मा .ा मन ही मन उस शतलक्ष योजन अन्धकारमय मार्ग से अकेली चल पड़ी । हज़ार वर्ष तक मानो बराबर चलती ही रही. रास्ते का अन्त न लगा, और न कोई देखने ही में आया। केवल उस वायुहीन, शब्दहीन, दिनरात्रिहीन, जनशून्य, प्रकाशशून्य, और दिशाशून्य घोर अन्धकार में खड़ी हो कर उसने उसी तरह रोने की आवाज़ सुनी । वह और कुछ नहीं वही वायु की सनसनाहट का शब्द मात्र था ।

विभा ने सारी रात जाग कर बिता डाली । दूसरे दिन विभा ने क़ैदखाने में उदयादित्य के पास जाने के लिए बड़ी कोशिश की । वहाँ उसका जाना मना था । सारे दिन वह रोती ही रही । आख़िर वह स्वयं प्रतापादित्य के पास गई और उनके पैरों में लिपट गई । बहुत बहुत आरज़ू मिन्नत करने पर उसने जाने की आज्ञा पाई । दूसरे दिन सुबह होते न होते विभा चारपाई से उठ कर क़ैदख़ाने में गई । वहाँ जा कर उस ने देखा, उदयादित्य बिछौने पर नहीं हैं । वे धरती पर बैठे खिड़की के ऊपर सिर रखे नींद ले रहे हैं । यह देख कर विभा की छाती फट गई और उसने रोना चाहा । बड़ी कठिनाई से उसने अपनी रुलाई रोकी । वह बहुत धीरे धीरे पाँव की आहट बचा कर उदयादित्य के पास जा बैठी । देखते ही देखते दिन निकल आया । जङ्गल में चिड़ियाँ चहचहा उठीं । निकट-वर्ती राजमार्ग में पथिकगण गा उठे । दो एक पहरेदार रात में जागने से क्लान्त हो कर और सवेरा होते देख कर कोमल

स्वर में गीत गाने लगे। भगवान् के मन्दिर में शङ्ख और घड़ी घंटे बजने लगे। उदयादित्य एकाएक चौंक कर जाग उठे। विभा को देखते ही बोल उठे—"विभा, यह क्या, इतने सवेरे क्यों आई है ?" घर के चारों तरफ़ देख कर बोले—"अयँ, मैं कहाँ हूँ ?" थोड़ी ही देर में स्मरण हो आया कि वे कहाँ हैं ! विभा की तरफ़ देख कर और साँस ले कर कहा—"आह, विभा तू आई है ? कल मैंने तुझे दिन भर में एक बार भी न देखा। मैंने अपने मन में यही समझ रक्खा था कि अब तुम लोगों को देखने न पाऊँगा।"

विभा ने उदयादित्य के पास आ कर और अपनी आँखों के आंसू पोंछ कर कहा—"भैया, मिट्टी में क्यों बैठे हो, चारपाई पर वैसे ही बिछौना बिछा है। जिसे देख कर मालूम होता है तुमने एक बार भी चारपाई पर पैर नहीं रक्खा। तब क्या दो दिनों से धरती ही में आसन लगाये हो ?" विभा रोने लगी।

उदयादित्य ने धीरे धीरे कहा—"विभा, चारपाई पर बैठने से मुझे आकाश दिखाई नहीं देता। खिड़की की राह से आकाश की ओर देखता हूँ और जब पक्षियों को उड़ते देखता हूँ, तब मेरे मन में होता है, मेरे भी अगर पंख होते तो मैं भी इनकी तरह इस अनन्त आकाश में स्वतन्त्र हो कर घूमता। इस खिड़की से जब अलग होता हूँ तब चारों ओर अन्धकार दीख पड़ता है, तब भूल जाता हूँ कि मेरा किसी दिन छुटकारा होगा। मैं किसी दिन उद्धार पाऊँगा। भरोसा नहीं होता कि इस कारागार से अब मैं मुक्त होऊँगा। विभा इस कारागार में जो यह दो हाथ ज़मीन है, यहाँ आते ही मुझे जान पड़ता

है कि स्वभावतः स्वाधीन हूँ; कोई राजा महाराजा, मुझे क़ैद नहीं कर सकते। और इस घर के भीतर जो यह मुलायम बिछौना है वही मेरे लिए कारागार का स्मारक है।

आज विभा को एकाएक देख कर उदयादित्य के मन में अत्यन्त आनन्द हुआ। विभा के ऊपर जब उनकी दृष्टि पड़ी तब उन्हें जान पड़ा जैसे कारागार के सभी दरवाज़े खुल गये। उस दिन इन्हों ने विभा को पास बैठा कर प्रसन्नता से इतनी बातें की कि क़ैद होने के पहले मालूम होता है कभी इतनी बातें न की होंगी। विभा उदयादित्य के उस आनन्द का मन ही मन अनुभव कर रही थी। हम नहीं जानते कि एक हृदय की बात दूसरे के हृदय में क्योंकर पहुँचती है। एक के मन में तरङ्ग उठने से दूसरे के मन में वह तरङ्ग किस तरह लहराने लगती है। विभा का हृदय पुलकित हो उठा। उसके सारे शरीर में रोमाञ्च हो आया। उसके चिरकाल का उद्देश्य आज सफल हुआ। विभा कुछ उतनी बड़ी समझदार लड़की नहीं है, वह उदयादित्य को आनन्द पहुँचा सकती है—यह "बहुत दिनों के बाद एकाएक आज उसकी समझ में आई। हृदय में उसने बल पकड़ा। इतने दिन वह चारों ओर अन्धकार देख रही थी। किसी तरफ़ वह उस अन्धकार का किनारा नहीं पाती थी। वह नैराश्य के गुरुतर भार से एक दम झुक पड़ी थी। वह बराबर उदयादित्य की सेवा करती थी, किन्तु उसे यह विश्वास न था कि वह उदयादित्य को अपनी सेवा से सुखी कर सकेगी। आज उसे कुछ कुछ विश्वास का उदय हुआ है। इतने दिनों का सारा परिश्रम आज उसका सफल हुआ। श्रमजनित सारा दुःख आज वह भूल गई। आज उसकी आँखों में प्रातःकाल के ओस-कणों की तरह ठंढे आँसू की बूँदें

दिखाई दे रही हैं, आज उसके होठों में ज़रा मधुर हास का विकास हो उठा। मानो विभा भी एक तरह से कारागार ही में रहने लगी। खिड़की की राह से जभी घर में सुबह की सफ़ेदी आती तभी कारागार का द्वार खुलता और विभा की विमल मूर्ति देख पड़ती। विभा नौकरों को कोई काम करने नहीं देती, सब काम वह अपने हाथों से करती थी, अपने हाथ से वह उदयादित्य का भोजन ला देती, अपने हाथ से उनका बिछौना कर देती थी। उसने एक तोता लाकर घर में लटका दिया है और प्रति दिन सवेरे हवेली के बगीचे से फूल तोड़ कर ला देती थी। घर में एक महाभारत की पोथी थी, उदयादित्य विभा को अपने पास बैठा कर वही पोथी सुनाते थे।"

किन्तु उदयादित्य के मन में एक भारी चिन्ता छाई हुई है। वे आप तो दुःख समुद्र में जान बझा कर डूबने बैठे हैं। ऐसे समय में इस बेचारी नव-विवाहिता सुकुमारी विभा को कभी हाथ खींच कर अपने साथ उसे क्यों डुबो रहे हैं? वे प्रति दिन अपने मन में ठानते हैं, विभा को कहेंगे कि "विभा तू अपने घर जा।" किन्तु विभा जब उषःकाल की ठंडी हवा और स्वच्छ प्रकाश ले कर उदय होने के साथ कारागार में आ पहुँचती है, जब अपना प्रेमपुलकित सुन्दर मुँह ले कर उनके पास बैठती है, जब वह अपनी दृष्टि में कितने ही आदर और कितनी ही अपेक्षायें भर कर उनके मुँह की ओर ध्यान से देखती है और बड़े ही मीठे स्वर में कितनी ही बातें पूछती है, तब उन्हें किसी तरह यह बोलने का साहस नहीं होता कि "विभा तुम जाओ, तुम अब यहाँ न आओ, मेरे लिए इतना कष्ट उठाने की कोई जरूरत नहीं।" रोज़ ही वे अपने मन में कहा करते हैं कि कल कहूँगा; किन्तु वैसा कल आने का कभी सुयोग नहीं होता।

आख़िर एक दिन उन्होंने दृढ़ प्रतिज्ञा की। विभा आई। विभा से उन्होंने कहा—विभा तुम अब यहाँ न रहो, अपने घर जाओ, जब तक तुम न जाओगी मेरे मन में शान्ति न होगी। प्रति दिन कोई सन्ध्या के समय इस कारागार के अन्धकार में आ कर माना मुझसे कहता है, "विभा सङ्कट में पड़ना चाहती है।" विभा मेरे पास से तुम शीघ्र चल दो। मैं शनिग्रह हूँ। मेरा दृष्टिपात होते ही चारों ओर से देश में विपद् दौड़ आती है। तुम ससुराल जाओ। बीच बीच में यदि तुम्हारा कुशल मिलता रहेगा तो उसी में मैं अपने को सुखी मानूँगा।"

विभा कुछ न बोली।

उदयादित्य सिर झुका कर बड़ी देर तक विभा के मुँह का भाव देखने लगे। उसकी दोनों आँखों से झर झर आँसू गिरने लगे। उदयादित्य ने सोचा, "जब तक मैं क़ैदख़ाने से रिहाई न पाऊँगा। विभा मुझे छोड़ कर कदापि न जायगी। पर मैं नहीं जानता कि इस कारागार से कैसे मुक्त हो सकूँगा।"



# छब्बीसवाँ परिच्छेद ।

रामचन्द्रराय ने समझा, विभा जो चन्द्रद्वीप नहीं आई, सो केवल प्रतापादित्य के दबाव और उदयादित्य की सलाह से । "विभा अपनी इच्छा से न आई", इसका स्मरण होते ही से उनको अपने महत्त्व में बड़ा आघात लगता है। उन्होंने अनुमान किया, 'प्रतापादित्य मुझे अपमानित करना चाहते हैं, अतएव वे विभा को कभी मेरे यहाँ न आने देंगे। यह अपमान मैं उन्हीं के माथे क्यों न मढ़ दूँ? मैं उन्हें ऐसा एक पत्र क्यों न लिखूँ कि मैंने तुम्हारी कन्या का परित्याग किया अतएव उसे अब कभी चन्द्रद्वीप न भेजो। इस तरह सोच कर और पाँच आदमियों के साथ सलाह विचार करके उन्होंने प्रतापादित्य के नाम से इस मर्म का एक पत्र लिखा। प्रतापादित्य को ऐसा पत्र लिखना कुछ थोड़े साहस का काम नहीं है। रामचन्द्रराय को मन ही मन बड़ा भय हो रहा था। किन्तु ढालुवें पहाड़ पर से बड़े वेग के साथ नीचे की ओर लुढ़कने पर जैसे हज़ार भय करते रहने पर भी बीच में कहीं अटकाव नहीं होता, रामचन्द्र राय के मन में भी ठीक वैसाही एक भाव उत्पन्न हुआ था। वे एकाएक दुःसाहस के काम में प्रवृत्त हुए हैं। वे अन्त तक बिना पहुँचे बीच में कहीं ठहर नहीं सकते।

उन्होंने राममोहन को बुला कर कहा—"यह पत्र यशोहर ले जाओ।"

राममोहन ने हाथ जोड़ कर कहा—"नहीं महाराज, मैं वहाँ न जा सकूँगा। मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि अब यशोहर न आऊँगा। तथापि यदि आप दुलहिन साहबा को फिर ले आने की आज्ञा दें तो एक बार अपनी प्रतिज्ञा को भङ्ग कर सकता हूँ। अन्यथा नहीं।"

राजा ने इस विषय में राममोहन से कुछ कहना उचित न समझ कर वह पत्र वृद्ध नयनानन्द के हाथ में दिया। वह उस पत्र को लेकर यशोहर की ओर पधारे।

वह पत्र ले कर गया तो, पर उसके मन में बड़ा ही भय हुआ। प्रतापादित्य के हाथ में वह पत्र पड़ने से न मालूम वे क्या कर बैठें। उसने बहुत सोच विचार कर वह पत्र रानी के हाथ में देने का संकल्प किया।

रानी की मानसिक अवस्था अच्छी नहीं है। उनका जी आज कल व्यग्र रहा करता है। एक तो विभा की चिन्ता उनके मन में दिन रात बनी रहती है। दूसरे उदयादित्य के लिए वे और भी दुखी रहा करती हैं। संसार के विकट झमेले में पड़ कर मानो उनका हृदय चूर चूर हो गया है। बीच बीच में अब वे रोती हैं। घर के काम काज में अब उनका जी नहीं लगता। ऐसी अवस्था में उन्होंने यह पत्र पाया। अब वे क्या करेंगी यह उनकी समझ में नहीं आता। वे विभा को इस विषय में कुछ कह नहीं सकतीं; क्योंकि यह हाल अगर उसे ज़ाहिर होगा तो वह और भी सूख कर काँटा होगी। महाराज के कानों में इस चिट्ठी की बात पड़ने से न मालूम कौन सा अनर्थ उठ खड़ा होगा। इसलिए ऐसे संकट के समय किसी को कुछ न कह कर, किसी से कुछ सलाह न लेकर रानी कैसे धैर्य्य धारण कर सकती हैं।

चारों ओर सीमारहित शोच का समुद्र देख कर रानी रोते रोते प्रतापादित्य के पास गईं। वहाँ जाकर उन्होंने कहा—महाराज, विभा का कुछ उपाय कर देना उचित है।

प्रतापादित्य ने कहा—"क्यों ? कौन सा उपाय ? क्या हुआ है ?

रानी—"हुआ तो कुछ नहीं—तब विभा को किसी न किसी दिन तो ससुराल जाना ही होगा।"

प्रतापादित्य—"यह तो जाना। पर इतने दिनों के बाद आज यह बात एकाएक कैसे याद आई ?"

रानी ने डर कर कहा—"आपके मनमें तो यों ही सन्देह उत्पन्न होता रहता है, कुछ हुआ है, यह मैं नहीं कहती ? अगर कुछ हो——"

प्रतापादित्य ने रुष्ट हो कर कहा—"और होगा क्या ?"

रानी—"मान लो अगर जामाता विभा को एक दम छोड़ दें ?" रानी रुद्ध कण्ठ होकर रोने लगी।

प्रतापादित्य अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। उनकी आँखों से मानो आग की चिनगारियाँ निकलने लगीं।

महाराज की यह भयावनी मूर्ति देख कर रानी ने झट आँसू पोंछ कर कहा—"मेरे इतना कहने से क्या जामाता ने लिखा थोड़े ही है कि तुम्हारी विभा को मैंने त्याग दिया, उस को अब चन्द्रद्वीप न भेजो," यह बात तो है नहीं—तब बात यही कि अगर किसी दिन वे यह लिख भेजें।"

प्रतापादित्य ने कहा—"तब उसका उचित उपाय करूँगा। अभी उसके लिए सोच करने का कौन अवसर है।"

रानी ने रो कर कहा—"महाराज, मैं आपके पैरों पड़ती हूँ, मेरी एक बात रखिये। एक बार सोच कर देखिए विभा की क्या दशा होगी। मेरा हृदय पत्थर का है इसी से अब तक खण्ड खण्ड हो कर नहीं फटा है, नहीं तो जहाँ तक दुख देने की सीमा है, आप दे चुके हैं। उदय को—मेरे बच्चे को—राजकुमार को—साधारण अपराधी की तरह आप ने क़ैद कर रक्खा है—वह मेरा बच्चा कभी किसी का कोई अपराध नहीं करता। किसी से कुछ लगाव नहीं रखता, अपराध क्या है सो भी नहीं समझता, राजकाज सिखाये भी नहीं सीखता, प्रजाशासन करना नहीं जानता, इन सब बातों का उसे ज्ञान ही नहीं है, इसी से भगवान ने उसे इतनी सज़ा दी है, उसका क्या दोष।" यह कह कर रानी दुगने स्वर में रोने लगी।

प्रतापादित्य ने ज़रा रुखाई के साथ कहा—"ये सब बातें तो हम कई बार सुन चुके हैं। जो बात कह रहीं थीं वही कहो।"

रानी ने दोनों हाथों से अपना सिर पीट कर कहा—"मेरा कपार फूट गया! और क्या कहूँगी? कहने पर भी तो आप नहीं सुनते? महाराज, एक बार विभा के मुँह की ओर देखें। वह किसी से कुछ कहती नहीं—वह केवल दिन दिन सूखती जाती है; परछाहीं की तरह मलिन हो गई है। किन्तु वह किसी से कुछ कहना नहीं जानती। उसका कुछ उपाय कीजिए।"

प्रतापादित्य को अत्यन्त रुष्ट देख कर रानी चुपचाप वहाँ से लौट आई।

---

# सत्ताईसवाँ परिच्छेद ।

इसी अभ्यन्तर में एक नई घटना हुई। जब सीताराम ने देखा कि उदयादित्य क़ैद किये गये हैं तब वह मारे ग़ुस्से के आग-बबूला हो गया। पहले वह रुक्मिणी के घर आया। वहाँ उसके मुँह में जो जली कटी बातें आईं उसे कह सुनाईं। यहाँ तक कि कई बार दौड़ दौड़ कर वह उसे मारने चला और चिल्ला कर बोला—"राक्षसी, हत्यारिन, तेरा घर जला दूँगा, तेरे घर का नाम निशान न रहने दूँगा, और युवराज को कारागार से छुड़ाऊँगा। तब मेरा नाम सीताराम जानना। ले मैं अभी रायगढ़ को चला। पहले रायगढ़ से हो आता हूँ। जिसके बाद तेरे काले मुँह को सान के ऊपर रगड़ूँगा। तेरे मुँह में कालिख और चूना पोत कर सारे शहर में घुमाऊँगा। फिर तुझे यहाँ से निकाल कर तब यहाँ जल ग्रहण करूँगा।"

रुक्मिणी कुछ देर तक स्थिर दृष्टि से सीताराम के मुँह की ओर देख कर सब बातें सुनती रही। पीछे उसने दाँत मसमसाये। होंठ से होंठ दबाया। खूब ज़ोर से दोनों हाथ की मुट्ठी बाँधी। उसकी दोनों भौंओं पर मानो मेघ छा गया। उसके विशाल नयनों की काली पुतलियों में बिजुली चमकने लगी। कुछ देर तक उसका सारा शरीर सन्नाटा सा हो गया।

इसके बाद धीरे धीरे उसके दोनों मोटे से होंठ काँपने लगे। दोनों भौंहें ऊपर को तन गईं। सिर के बाल खुल कर बिखर गये। उसके दोनों हाथ पैर थर थर काँपने लगे, मानो

एक पिशाचिनी का भयानक अभिशाप, माने एक सर्वाङ्ग पुष्ट, काँपती हुई हिंसा सीताराम के सिर पर गिरा चाहती है। सीताराम झट घर से बाहर हो गया। अब क्रमशः रुक्मिणी की मुट्ठी ढीली हो पड़ी। दोनों होंठ ज़रा अलग हुए। दाँत पर से दाँत हटे। टेढ़ी भौंहें जब कुछ सीधी हुईं तब वह सम्हल कर बैठी और बोली—"हाँ रे सीताराम, युवराज तुम्हारे खरीदे हुए हैं न? युवराज के ऊपर जो विपद् आ पड़ी है उस की चोट बहुत बढ़ कर तुम्हारे ही जी में लगी है। मूँ झौंसा यह नहीं जानता कि वे युवराज मेरे ही हैं, मैं उन्हें जो चाहूँ नाच नचा सकती हूँ। मेरे युवराज को तू कैद से छुड़ाना चाहता है? उन्हें छुड़ा तो तुझे देखूँ।" यों ही वह आप ही आप बक झक करने लगी।

सीताराम उसी दिन रायगढ़ चला गया।

पिछले पहर दिन में वसन्तराय अपने कोठे के बरामदे में बैठे थे। दो चार मुसाहब पास में बैठे थे। सामने एक बड़ा मैदान दिखाई देता है। मैदान की पच्छिम सीमा में एक नहर है। नहर के दूसरे किनारे में आम का बाग़ है। उसी बाग़ की आड़ से सूर्य डूबे जा रहे हैं। वसन्तराय के हाथ में उनका पुराना संगी वह सितार अब नहीं है। वृद्ध वसन्तराय उस अस्त होते हुए सूर्य की ओर देखकर अपने मन में गुनगुना कर कुछ गा रहे हैं।

कौन कह सकता है क्या सोचकर वसन्तराय यह गीत गा रहे थे। शायद वे मनही मन सोच रहे थे, मैं गीत गा रहा हूँ, किन्तु जिन्हें मैं गीत सुनाता, वे ही नहीं। आप ही आप गीत मुँह में आ जाता है, किन्तु गाने में अब सुख नहीं। अब भी वह सुख नहीं भूलता। किन्तु जब सुख याद आता है तब जिन्हें छाती

से लगाने की उत्कण्ठा होती है, वे नहीं मिलते। जिस दिन सुबह के सुहावने समय में रायगढ़ के इन ताल वृक्षों के ऊपर मेघ उमड़ आता था, मारे हर्ष के हृदय नाच उठता था, उसी दिन जिन को देखने मैं यशोहर की यात्रा करता था, हा ! उन्हें अब इस ज़िन्दगी में देखने न पाऊँगा। अब भी आवेग में आकर कभी कभी मन आनन्द से वैसे ही नाच उठता है किन्तु हाय ! मालूम होता है यही सब सोच कर आज दिनान्त में डूबते हुए सूर्य की ओर देख कर वृद्ध वसन्तराय के मुँह में आप ही आप यह गीत आगया है।

इसी समय ख़ाँ साहब ने आकर एक लम्बी सलाम की। ख़ाँ साहब को देख कर वसन्तराय ने प्रसन्न होकर कहा—“ख़ाँ साहब, आओ, आओ!”

ख़ुद उसके पास जाकर बड़ी व्यग्रता से पूछा, “ख़ाँ साहब, तुम्हारा मुँह ऐसा उदास क्यों देख रहा हूँ ? तबीयत तो अच्छी है ?”

ख़ाँ साहब—“महाराज, तबीयत का हाल न पूछिए। आपको उदास देख कर अब मेरे मन में सुख नहीं है। एक कहावत है—“बात कहती है मैं कुछ नहीं हूँ, जिस आदमी को मैं माथे पर चढ़ाये हुई हूँ वही सब कुछ है। उसी के साथ मिल कर मैं हँसती हूँ और उसके ख़्वार होने के साथ ख़्वार होती हूँ!, महाराज, मेरे भी अब आपके सिवाय दूसरा कौन है, आपके प्रसन्न न रहते हमारी प्रसन्नता कैसी ? आपकी उदासीनता में फिर हमें सुख कहाँ ?

वसन्तराय ने व्यग्र हो कर कहा—“ख़ाँ साहब, यह क्या ? मैं तो अच्छा हूँ। मेरे तो कोई क्लेश न हुआ है। मैं अपने को

देख कर आप ही प्रसन्न रहता हूँ— मैं अपने आनन्द में आप ही मग्न रहता हूँ—ख़ाँ साहब, तुमने मेरी उदासीनता क्या देखी ?"

ख़ाँ साहब—"महाराज, अब आपका उस तरह गाना बजाना नहीं होता ।"

वसन्तराय ज़रा हँस कर बोले—"मेरा गाना सुनोगे ?"

ख़ाँ साहब ने कहा—"अब आपका वह सितार बजाना कहाँ गया है ? न मालूम वह सितार कहाँ है ?"

वसन्तराय ने मुसकुरा कर कहा—"सितार अब नहीं है, यह नहीं । सितार है, किन्तु उसके सब तार टूट गये हैं, इसी से उसे रख छोड़ा है ।" यह कह कर वे आम के बग़ीचे को ओर देख कर माथे पर हाथ फेरने लगे ।

कुछ देर के बाद वसन्तराय बोले, ख़ाँ साहब, तुम कुछ गाओ । कोई एक गीत गाओ, ज़रूर गाओ ।

देखते ही देखते वसन्तराय मस्त हो उठे— बैठे न रह सके। उठ कर खड़े हुए, ख़ाँ साहब के साथ मिल कर गाने लगे और ताल पर ताल देने लगे, गाते गाते सूर्यास्त हो गया, अँधेरा हो आया, चरवाहे सब गीत गाते हुए अपने अपने घर आने लगे । इसी समय सीताराम ने आकर –"महाराज की जय हो" कह कर वसन्तराय को प्रणाम किया। वसन्तराय ने एक दम चकित होकर तुरंत गान बन्द किया और झट उसके पास जाकर कहा— "कहो सीताराम, अच्छे तो हो ? उदयादित्य कैसे हैं ? विभा कहाँ है ? सब लोग कुशल से तो हैं ?"

खाँ साहब चले गये। सीताराम ने कहा—"महाराज, मैं एक एक कर सब वृत्तान्त कह सुनाता हूँ।" सब बात कहते कहते युवराज के .कैद होने की बात कही। सीताराम की आदत है कि आदि से अन्त तक सब बातें सच सच नहीं बोलता। जिस कारण उदयादित्य .कैद किये गये वह कारण उसने साफ़ साफ़ नहीं कहा।

बसन्तराय के माथे पर मानो दुःख का आकाश टूट पड़ा। उन्होंने सीताराम का हाथ .खूब .जोर से पकड़ा। उन की भौंहें ऊपर तन आईं। आँखों का विस्तार कुछ बढ़ गया। होंठ खुल गये—वे स्थिर दृष्टि से सीताराम के मुँह की ओर देख कर बोले—"अयँ?"

सीताराम ने कहा—"हाँ महाराज!" कुछ देर तक चुप रह कर बसन्तराय ने कहा—"सीताराम!"

सीताराम—"महाराज।"

बसन्तराय—".कैद किये जाने पर उदयादित्य अभी कहाँ हैं?"

सीताराम—"जी, वे अभी कारागार में हैं।"

बसन्तराय अपने माथे पर हाथ फेरने लगे। उदयादित्य .कैदखाने में हैं यह बात उनके जी में अच्छी तरह नहीं धसती। कुछ कल्पना करते भी नहीं बनता। कुछ देर के बाद फिर सीताराम का हाथ पकड़ कर कहा—"सीताराम!"

सीताराम—"हाँ महाराज!"

बसन्तराय—".कैद होने पर उदयादित्य क्या करते हैं?"

सीताराम—"और क्या करेंगे! वे कारागार में ही हैं।"

बसन्तराय—"क्या उनको सब ने बन्द कर रक्खा है?"

सीताराम—"जी हाँ।"

वसन्तराय—"क्या उन्हें कोई एक बार भी बाहर होने नहीं देता ?"

सीताराम —"जी नहीं ।"

वसन्तराय—"वे अकेले ही .कैदखाने में बैठे रहते हैं ?"

वसन्तराय ये सब बातें किसी व्यक्ति विशेष से नहीं पूछ रहे थे, आप ही आप अचम्भे में आकर बोल रहे थे । सीताराम यह न समझ कर, फिर उसने कहा—"हाँ महाराज ।"

वसन्तराय ने कहा—"भाई तुम मेरे पास आकर बैठो, तुम को शायद किसी ने पहचाना नहीं ।"

---

## अट्ठाईसवाँ परिच्छेद ।

वसन्तराय उसके दूसरे ही दिन यशोहर रवाना हुए। किसी के रोके न रुके। यशोहर पहुँच कर वे अन्तःपुर में गये। विभा एकाएक दादा जी को देख कर बड़े अचम्भे में आई। उसकी अजब हालत हो गई। कुछ देर तक वह सोचती ही रह गई, वह क्या करेगी यह कुछ उसकी समझ में नहीं आया। वह हक्का बक्का सी हो गई। केवल उसकी आँखों में आश्चर्य और होठों में प्रसन्नता का चिह्न था। उसके मुँह में वाक्य का संचार नहीं और शरीर ज़रा भी हिलता डोलता नहीं—वह यों ही कुछ देर तक खड़ी रही—तिसके बाद उसने झुक कर पैर छू कर प्रणाम किया और उनके चरणों की धूल माथे में लगाई। विभा जब उठ कर खड़ी हुई तब वसन्तराय ने एक बार स्थिर दृष्टि से विभा के मुँह की ओर देख कर पूछा—"विभा!" वे और कुछ न बोले, केवल "विभा!" इतना ही पूछ कर रह गये। मानो उनके मन में कुछ कुछ आशा लगी थी कि सीताराम ने जो कहा है वह कदाचित् सत्य न भी हो। सब बात स्पष्ट रूप से पूछने उन्हें भय हो रहा है, विभा भी कहीं उस का वैसा ही उत्तर न दे डाले। वे नहीं चाहते कि विभा तुरंत उनके इस प्रश्न का उत्तर दे। इसी से वे बहुत डरते डरते केवल "विभा!" इतना ही बोल कर चुप हो गये। इसी से उन्हों ने बड़े गौर से विभा के मुँह की ओर एक बार देखा। विभा उनके मनका भाव समझ गई। पर कुछ बोली नहीं। उसके प्रथम आनन्द का उफान मिट गया।

दादाजी के आने पर जो आनन्दोत्सव पहले होता था, वह विभा को अभी स्मरण हो आया है। हाय ! वे सब उत्सव के दिन चले गये। दादाजी के आते ही अन्तःपुर में आनन्द की धूम मच जाती थी। सुरमा प्रसन्न मन से भाँति भाँति के कुतूहल किया करती थी। विभा हँस कर चुप रह जाती थी, पर खुले तौर से परिहास करना नहीं जानती थी। उदयादित्य बड़ी ख़ुशी से दादाजी का गान सुनते थे। आज दादाजी आये हैं। पर कोई उनके पास न आया। इस अन्धकारमय संसार में केवल एक मात्र विभा—सुखसमाज की बची हुई एक अल्पतम अंश यह विभा—दादाजी के पास चित्रवत् खड़ी है। दादाजी के आने पर जिस घर में विनोद का बाजा बजता था, वह घर आज ऐसा शून्य क्यों? वह आज ऐसा भयानक क्यों? मानो वह अँधेरा घर दादाजी को देख कर रो रहा है। वसन्तराय उस घर के सामने आ कर न मालूम क्यों ठिठक रहे। उन्हों ने द्वार के पास खड़े हो कर घर के भीतर झाँक कर चारों ओर देखा। उन्हों ने घर में किसी को न देख कर करुण-स्वर में पूछा—"विभा, क्या घर में कोई नहीं है?"

विभा अभी बोलने ही को थी, तब तक मानो वह सूना घर हाहाकार करके बोल उठा—'जो थे उनमें अब कोई नहीं।"

वसन्तराय बड़ी देर तक चुपचाप खड़े रहे, आख़िर विभा का हाथ पकड़ कर धीरे से गा उठे।

वसन्तराय ने प्रतापादित्य के पास जाकर विनयपूर्वक कहा—"प्रताप, उदय को इतना कष्ट क्यों देते हो? उसने तुम्हारा क्या अपराध किया है? अगर उस पर तुम्हारा प्रेम नहीं है, और वह यदि पग पग में तुम्हारा अपराध करता है तो उसे इस बूढ़े के सिपुर्द कर दो। मैं उसे अपने यहाँ ले

जाता हूँ। मैं उसे ऐसी जगह में रक्खूँगा कि फिर तुम कभी उसे न देखोगे। वह बराबर मेरे ही पास रहेगा।"

प्रतापादित्य बड़ी देर तक धीरज धर कर चुपचाप वसन्तराय की बात सुनते रहे, आख़िर बोले—"चचाजी, मैंने जो कुछ किया है बहुत सोच समझ कर किया है। इस विषय में आप मेरी अपेक्षा ज़रूर ही कम जानते हैं। उस पर आप हुकूमत चलाने आये हैं। आपकी ये सब वाहियात बातें मैं ग्राह्य नहीं कर सकता।"

तब वसन्तराय धीरे धीरे प्रतापादित्य के पास आ कर बैठे और उनका हाथ पकड़ कर कहा—"प्रताप, क्या तुम अब उन सब बातों को भूल गये? तुमको जो मैंने बचपन में गोद खिलाया, तुमको जो पालपोस कर बड़ा किया, क्या वह सब बात अब याद नहीं आती? गोलोकवासी भाईजी जिस दिन तुम्हें मेरे हाथ में सौंप गये, उस दिन से क्या मैंने कोई कष्ट तुमको होने दिया? जब तुम बिलकुल असहाय अवस्था में मेरे पास थे, क्या एक दिन भी तुमने अपने को पितृहीन समझा? प्रताप, कहो तो, मैंने तुम्हारा क्या क़सूर किया है जिससे मेरे इस बुढ़ापे में तुमने मुझे इतना कष्ट दिया है? मैं यह नहीं कहता हूँ कि मैंने तुम्हारा पालन किया था इससे तुम मेरे पास ऋणी हो—तुम को पाल कर और बड़ा करके मैंने अपने भाई के स्नेह ऋण का परिशोध किया। अतएव, मैं अपने को फलभागी क़ायम करके तुमसे कुछ लेना नहीं चाहता, और कभी कुछ लिया भी नहीं मैं तुम्हारे हाथ से सिर्फ़ भीख चाहता हूँ, क्या वह भी न दोगे?"

वसन्तराय की आँखों से आँसू गिरने लगे। प्रतापादित्य पाषाणमूर्ति की तरह बैठे रहे।

वसन्तराय ने फिर कहा—"क्या तुम मेरी बात पर कुछ विचार न करोगे? क्या मेरी भिक्षा की लाज न रक्खोगे? प्रताप, क्या मेरी बात का कुछ जवाब भी न दोगे? उन्हों ने लम्बी सांस लेकर कहा—अच्छा मेरी और एक छोटी सी प्रार्थना है—"मैं उदय को एक बार देखना चाहता हूँ। मुझको उस कारागार में प्रवेश करने कोई रोके नहीं— यही आज्ञा दो।" प्रतापादित्य ने यह आज्ञा भी न दी। उनके विरुद्ध उदयादित्य के ऊपर इतना अधिक स्नेह प्रकट करने से प्रतापादित्य मन ही मन बहुत चिढ़ उठे। लोग उनको अपराधी समझते हैं यह बात जितना ही उनके मन में उदित होती है उतना ही वे और अधिक क्रोध का भाव धारण करते हैं।"

वसन्तराय बड़े ही उदासी के साथ लौट कर हवेली गये। उनका वैसा मुँह देख कर विभा को बड़ा दुःख हुआ। विभा ने वसन्तराय का हाथ पकड़ कर कहा—"दादा जी, मेरे घर चलिए।" वसन्तराय ने चुपचाप विभा के साथ विभा के घर में प्रवेश किया। विभा ने उन्हें बड़े आदर से हाथीदाँत की चौकी पर बैठाया और उनके आगे पान, इलायची और इतर लाकर रक्खा। आप उनके पास से ज़रा हट कर नीचे बैठी। वसन्तराय ने कहा अब तुम्हारे हाथ का पान खाने को मेरा मुँह कहाँ! जिस दिन पान खाने योग्य मेरा मुँह था उस दिन तुम पान लगा कर देने योग्य न थीं। इस पोपले मुँह में अब पान की शोभा ही क्या? इस दन्तरहित मुँह में रख इन्हें क्यों बेइज़्ज़त करूँ।

वसन्तराय ने देखा—"विभा का मुँह म्लानसा हो गया है। उसकी आँखों में आँसू भर आया है। वसन्तराय ने तुरंत कहा—"क्यों विभा, थोड़े देर के लिए तुम अपने दाँत मुझे

उधार दो, उन दाँतों से पान चाब कर फिर तुम्हें वापस कर दूँगा ।" यह कह कर उन्होंने दो बीड़ा पान मुँह में डाला ।

विभा हँस उठी, बोली तुम्हारे बाल भी बिलकुल पक गये। दादाजी, थोड़े दिन के लिए क्यों, तुम हमेशा के लिए मेरे दाँत और सिरके बाल ले लो ।

वसन्तराय को उसकी अवस्था पर खेद हो आया ।

इतने में एक लौंडो ने आकर वसन्तराय से कहा—"रानी आपको एक बार प्रणाम करना चाहती हैं ।

वसन्तराय रानी के घर गये और विभा उदयादित्य के पास क़ैदख़ाने में गई ।

रानी ने वसन्तराय को प्रणाम किया। वसन्तराय ने आशीर्वाद दिया—"चिरंजीविनी हो ।"

रानी ने कहा—"चचाजी, ऐसा आशीर्वाद न दें । अब मेरी मृत्यु होने ही में कुशल है ।"

वसन्तराय ने व्यग्र होकर कहा—"राम, राम ! यह बात भी कोई मुँह में लाता है ?"

रानी—"चचाजी, अब और क्या करूँगी । मेरे घर पर मानो सनीचर की दृष्टि पड़ी है ।"

वसन्तराय बहुत बेचैन हो पड़े ।

रानी—"विभा का मुँह देख कर मुझे अब खाना पीना कुछ नहीं सुहाता । पूछने पर वह कुछ बोलती नहीं; केवल दिन दिन उसका शरीर सूखा जाता है । उसका मैं कौन उपाय करूँ, यह कुछ मेरी समझ में नहीं आता ।"

वसन्तराय बड़े ही व्याकुल हुए। "यह देखिए एक सत्यानाशी चिट्ठी आई है।" यह कह कर रानी ने एक चिट्ठी वसन्तराय के हाथ में दी।

वसन्तराय चिट्ठी पढ़ने लगे। इधर रानी रो रो कर कहने लगी— मेरे भाग्य में कौन सुख है? मेरा बच्चा उदय कुछ नहीं जानता। मानो वह राजकुमार हुई नहीं, किन्तु मैंने तो उसे गर्भ में धारण किया था, वह तो मेरी सन्तान है। मैं नहीं जानती, मेरा बच्चा वहाँ कैसे रहता है? वे उसका मुँह एक बार देखने भी तो नहीं देते।"

रानी आज कल किसी तरह की बातें क्यों न करें पर उन बातों में किसी न किसी जगह उदयादित्य का ज़िक्र निकल ही पड़ता है। मानो यह कष्ट उनके जी में दिन रात लगा रहता है।"

चिट्ठी पढ़ कर वसन्तराय एक दम अवाक् हो गये। वे दम साध कर माथे पर हाथ फेरने लगे। कुछ देर के बाद वसन्तराय ने रानी से पूछा—"यह पत्र और किसी को तो नहीं देखने दिया है?"

रानी—"महाराज, इस चिट्ठी की बात सुनने पर क्या किसी को सुख होता? विभा भी यह जान कर क्या जीना पसन्द करेगी?"

वसन्तराय बहुत अच्छा काम किया बहूजी, यह चिट्ठी और किसी दूसरे को न दिखलाओ। तुम विभा को जल्द ससुराल भेज दो। मान अपमान की बात न सोचो। रानी, "मैंने भी यही सोचा है। मैं मानमहत्व लेकर क्या करूँगी। मेरी विभा जिसमें सुख से रहे वही मेरे लिए सब कुछ मानमर्य्यादा है। केवल भय इसी बात का है कि कहीं पीछे वे लोग विभा को दुःख न दें।

वसन्तराय—हाँ, वे लोग "विभा को दुःख देंगे। विभा क्या दुःख की पात्र है? विभा जहाँ जायगी वहीं उसका आदर होगा। ऐसी लक्ष्मी—ऐसी भव्य मूर्ति—और कहीं देखने में नहीं आती। रामचन्द्रराय ने तुम लोगों के ऊपर रोष कर के ही यह चिट्ठी लिखी है। विभा को भेज देने ही से उनका क्रोध ठन्डा पड़ जायगा। वसन्तराय ने अपने सरल हृदय में ऐसा ही समझा। रानी ने भी यही समझा।

वसन्तराय—"राजभवन में इस बात का प्रचार कर दो कि विभा को चन्द्रद्वीप भेज देने के हेतु रामचन्द्रराय ने अनुरोध पूर्वक एक पत्र लिखा है। इस कारण अब विभा वहाँ जाने में किसी तरह की आपत्ति न करेगी।"

# उनतीसवाँ परिच्छेद ।

सन्ध्या का समय है । वसन्तराय अकेले राजभवन के बाहर बैठे हैं । ऐसे समय में सीताराम ने आकर उनको प्रणाम किया ।

वसन्तराय ने पूछा—"कहो सीताराम, क्या हाल है ?"

सीताराम—"यह पीछे कहूँगा; अभी आप मेरे साथ चलें ।"

वसन्तराय ने कहा—"क्यों, सीताराम कहाँ ?"

सीताराम ने चुपके से उनके कानों में कुछ कहा । वसन्तराय ने अचम्भे के साथ कहा—"क्या सच कहते हो ?"

सीताराम—"जी हाँ ।"

वसन्तराय—"एक बार विभा से भेंट कर आऊँ ?"

सीताराम—"जी नहीं, समय नहीं है ।"

वसन्तराय—"कहाँ जाना होगा ?"

सीताराम—"मेरे साथ आइए, मैं ले चलता हूँ !"

वसन्तराय उठ कर खड़े हुए और बोले—"एक बार विभा को देख आता हूँ ?"

सीताराम—"नहीं, महाराज ! देरी होने से सब बनी बनाई बात विगड़ जायगी ।"

वसन्तराय ने बड़ी जल्दी में कहा—"तो विभा से मिलने का प्रयोजन नहीं; दोनों चलें ।

फिर कुछ दूर जाकर वसन्तराय ने कहा,—"ज़रा देरी होने से क्या काम न बनेगा ?"

सीताराम—"नहीं महाराज, देरी होने से हम लोग विपद् में पड़ेंगे ।"

"जय माँ दुर्गे" कह कर वसन्तराय राजभवन से बाहर हुए ।

वसन्तराय के आने का हाल उदयादित्य को मालूम न हुआ । विभा ने उनके आने की बात उनसे नहीं कही । क्योंकि उन दोनों में जब भेट होने की कोई सम्भावना न थी, तब उन के मन में इस संवाद के सुनने से कष्ट ही होता । साँझ हो जाने पर विभा उदयादित्य से आज्ञा ले कर कारागार से चली गई । उदयादित्य चिराग़ की रोशनी में संस्कृत की कोई पुस्तक पढ़ रहे हैं । खिड़की की राह से घर के भीतर हवा आ रही है, हवा लगने से दिये की लौ काँप रही है, अक्षर साफ़ दिखाई नहीं देते । छोटे छोटे जीव आकर दिये के ऊपर गिर रहे हैं । किसी मरतबा इस से दिया बुझने पर हो जाता है । एक बार ख़ूब ज़ोर से हवा आई, चिराग़ बुझ गया । उदयादित्य पुस्तक समेट कर अपनी चारपाई पर जा बैठे । एक एक कर न मालूम कितनी ही चिन्तायें उनके सामने आ खड़ी हुईं । विभा का स्मरण हो आया । विभा आज कुछ देरी करके आई थी और अन्य दिन की अपेक्षा आज कुछ सवेरे ही चली गई । आज विभा को उन्होंने कुछ अधिक उदास देखा था । उसी का तर्क वितर्क मन में करने लगे । मानो इस संसार में उनके और कोई नहीं । सारा दिन विभा के सिवा और किसी को देखने नहीं पाते । विभा ही एक मात्र उनके दृष्टिपथ का विश्रामस्थान हो रही है । विभा की सरलता

विभा की मीठी बात उनके हृदय में एक एक कर सब याद होती जाती हैं । प्यासे मनुष्य के लिए जैसे चुल्लू भर पानी भी सन्तोष का कारण होता है वैसे ही विभा के स्नेह का अत्यन्त साधारण भाव उनके लिए विशेष सन्तोष का कारण हो रहा था । अतएव आज वे इस छोटी सी जनशून्य कोठरी के भीतर अकेले चारपाई पर लेटे स्नेह की मूर्ति विभा के मलिन मुँह को सोच रहे हैं । उस अन्धकार में सोचते सोचते एक बार उनके मन में यह भावना हो गई कि—"क्या विभा धीरे धीरे मुझसे विरक्त तो नहीं हो रही है ? इस आनन्दशून्य कारागार के भीतर एक अभागी मलिन-मूर्ति की सेवा करना क्या उसे अब पसन्द नहीं ? क्या वह अब मुझे अपने सुख का कण्टक तो नहीं समझ रही है ? आज देर करके आई है । कल शायद और भी देरी करके आवेगी । फिर तो मुझे शायद सारा दिन बैठ कर विभा के आने की प्रतीक्षा करनी होगी । विभा कब आवेगी, यही चिन्ता करते करते सुबह से दोपहर होगा—साँझ होगी—रात होगी, विभा न आवेगी !—तिस के बाद प्रायः विभा कभी यहाँ आवेहीगी नहीं ।" उदयादित्य के मन में जितना ही इन सब बातों का सोच होने लगा उतनाही वे अधीर होने लगे । वे अपनी कल्पना के राज्य में चारों ओर भयानक दृश्य देखने लगे । हा ! एक दिन ऐसा आवेगा कि विभा स्नेह-शून्य आँखों से उन्हें अपने सुख के काँटे की तरह देखेगी । इस दूरातिदूर कल्पना के आभास-मात्र से उनका हृदय एकदम व्याकुल हो उठा । फिर सोचते हैं—"क्या मैं स्वार्थ-परायण नहीं हूँ ? क्या मैं अपने सुख के लिए विभा के सुख में बाधा नहीं दे रहा हूँ ? विभा का प्यार करके ही मैं उसके साथ भयानक शत्रुता कर रहा हूँ जो दूसरा कोई प्रायः

ऐसा नहीं कर सकता ।" उदयादित्य बार बार अपने मन में प्रतिज्ञा करने लगे कि अब वे अपने को विभा के ऊपर निर्भर न करेंगे । किन्तु जब वे सोचते हैं कि विभा को उन्होंने अपने हृदय से हटा दिया है तब उनके मन में धैर्य नहीं रहता । तब वे अधीर होकर अपार शोकसमुद्र में मग्न हो जाते और डूबते हुए म्रियमाण व्यक्ति की तरह विभा की काल्पनिकमूर्ति से बड़ी व्याकुलता से ख़ूब ज़ोर से लिपट जाते हैं ।

इसी समय बाहर एकाएक "आग लगी, आग लगी" कह कर लोग चिल्लाने लगे । भारी हल्ला मच गया । उदयादित्य का हृदय काँप उठा । बाहर सैकड़ों ही मनुष्य एक स्वर से पुकारने लगे । कोठे की छत पर सैकड़ों लोगों के दौड़ने का शब्द सुनाई देने लगा । उदयादित्य ने समझा, ड्योढ़ी के आस पास कहीं आग लगी है । बड़ी देर तक शोर-गुल होते रहने के कारण उनका मन घबरा उठा । इतने में एकाएक बड़ी शीघ्रता से उनके कारागार का द्वार खुल गया । साथही एक आदमी भीतर घुसा—उन्होंने चौंक कर पूछा—कौन है ?"

उसने कहा—"मैं सीताराम हूँ, आप बाहर चलें ।"

उदयादित्य ने कहा—"क्यों ?"

सीताराम—"युवराज साहब, कारागार में आग लगी है, जल्द यहाँ से भाग चलें ।" सीताराम उनका हाथ खींच कर बड़े वेग से क़ैदखाने के बाहर ले गया ।

कितने दिनों के बाद उदयादित्य आज खुली जगह में आये हैं । उन्होंने माथे के ऊपर एकाएक वृहत् आकाश-मण्डल देखा । मानों ठण्डी हवा अपनी छाती पसार कर उनका आलिङ्गन करने लगी । चारों तरफ़ से जो उनकी दृष्टि का अवरोध

था सो खुल गया। उस अँधेरी रात में, आकाशवर्ती असंख्य तारात्रों के नीचे, लम्बे चौड़े मैदान में मुलायम घासों के ऊपर खड़े होकर उन्होंने अपने मन में एक असीम अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव किया। वे उस आनन्द में कुछ देर निमग्न रहे, तदनन्तर उन्होंने सीताराम से पूछा—"कहो सीताराम, अब क्या करना होगा, कहाँ जाना होगा?" वे बहुत दिनों से एक छोटी सी जगह में बन्द थे, इसी से उन्होंने इस बड़े मैदान में आकर सीताराम से पूछा कि "कहाँ जाना होगा।" सीताराम ने कहा—"मेरे साथ सीधे आइए।"

इधर आग ख़ूब धधक रही थी। आज दिन के पिछले पहर कितने ही प्रजा प्रधान कर्मचारी के पास कुछ निवेदन करने आये थे। वे सब के सब फाटक के पास बैठे थे। पहले उन्हीं लोगों ने आग लगने का शोर मचाया। पहरेदारों के रहने के लिए क़ैदख़ाने के पास एक बहुत बड़ी श्रेणीबद्ध कई कोठरियाँ थीं। उसी जगह उन लोगों की चारपाई, बर्तन और कपड़े आदि सभी चीज़ें थीं। आग लगने की ख़बर पाकर जितने प्यादे थे सभी दौड़ कर गये, जो वहाँ तक नहीं जा सके थे मारे अफ़सोस के हाथ मलने लगे। उदयादित्य जिस घर में क़ैद थे उसके द्वार पर भी दो एक पहरेदार थे, किन्तु वहाँ कड़ा पहरा देने की कोई ज़रूरत न थी। पहरा देने की ताकीद थी, इसी से वे लोग हुक्म के पाबन्द होकर मामूली तरह से पहरा देते थे। कारण यह कि उदयादित्य ऐसे शान्तभाव से घर के भीतर बैठे रहते थे, जिससे मालूम होता था कि वे कभी भागने की चेष्टा न करेंगे और न उन्हें भागने की इच्छा ही है। इसी से उनके कारागार के पहरेदार सबके पहले ही वहाँ दौड़ कर

गये थे । क्रमशः रात बीतने लगी, आग किसी तरह नहीं बुझती। कोई घर की चीज़ें निकालने लगा, कोई पानी ढालने लगा, और कोई कुछ काम न करके सिर्फ़ हल्ला करते हुए इधर से उधर घूमने लगा; आग बुझने पर इन्हीं लोगों ने सब की अपेक्षा अधिक वाहवाही पाई थी । इसी तरह आग बुझाने में सभी लोग लगे हैं। इसी समय एक औरत उन लोगों के पास दौड़ी हुई आई, वह कुछ कहना चाहती थी, पर इस हल्ले में उसकी बात कौन सुनता है ? किसी ने उसे गाली दी, किसी ने उसे ढकेल दिया । गरज़ यह कि किसी ने उसकी बात न सुनी । जिसने सुना उसने कहा—"युवराज भाग गये इसमें मेरा क्या बिगड़ा या तेराही क्या नुक़सान हुआ ? जाने दयालसिंह और दयालसिंह का काम ! मैं घर छोड़ कर अभी कहीं नहीं जा सकता!" यह कह कर वह आदमी भीड़ में घुस पड़ा ।

इसी तरह बार बार लोगों से धुतकारी जाने पर वह स्त्री मारे क्रोध के पागल हो उठी । आख़िर उसने एक व्यक्ति को सामने आते देख कर ख़ूब ज़ोर से उसे पकड़ कर कहा— "तुम लोगों की आँखों में क्या पत्थर पड़े हैं ? राजा की नौकरी करना क्या भूल गया ? कल राजा से कह कर तुम लोगों को बिना फाँसी दिलाये न छोड़ूँगी । युवराज भाग गये, इसकी ख़बर ही नहीं ।"

"बहुत अच्छा हुआ । तेरे बाप का इसमें क्या ?" यह कह कर उसने उसे ख़ूब पीटा । जिन लोगों ने घर में आग लगाई थी, यह उन्हीं में का एक व्यक्ति था । मार खाकर उस स्त्री की प्रचण्डमूर्ति और भी भयानक हो उठी । रिसाई हुई बाघिन की तरह उसकी दोनों आँखें बलने लगीं । वह दाँतों पर दाँत

पीसने लगी। उसका क्रोधाग्नि से प्रज्वलित मुँह पिशाचिनी का सा दिखाई देने लगा। सामने एक काठ का टुकड़ा जल रहा था, उसने उसे उठा लिया, हाथ जल गया तथापि उसने उसे फेंका नहीं, वह उस जलते हुए काठ को लेकर उस (मारनेवाले) के पीछे पीछे दौड़ी। जब किसी तरह उसे पकड़ न सकी तब उसने दूर ही से वह उसके ऊपर फेंक कर मारा।



# तीसवाँ परिच्छेद ।

सीताराम युवराज को अपने साथ नहर के पास ले गया। वहाँ एक नाव बँधी थी। उसी नाव के सामने जाकर दोनों खड़े हुए। उन दोनों को देखकर नाव में से झट एक व्यक्ति बाहर आ कर बोल उठा—"मेरे उदय आ गये ?" उदयादित्य एकदम चौंक उठे। यह तो वही परिचित स्वर है, संसार में जितने सुख हैं, जितने आनन्द हैं यह स्वर उन्हीं के साथ मिला हुआ है। कभी कभी वे कैदखाने में गहरी रात में जब उनकी आँखें लग जाती थीं तब स्वप्नावस्था में वंशीध्वनि के सदृश जो मधुरस्वर सुनकर चौंक उठते थे, यह वही स्वर है! उनका आश्चर्य दूर होने न होने वसन्तराय ने आकर उन्हें गले लगाया। दोनों की आँखों में आँसू उमड़ आये। दोनों उसी जगह दूब पर बैठ गये। बड़ी देर के बाद उदयादित्य ने कहा—"दादाजी!" वसन्तराय ने कहा—"हाँ बच्चा!" और कोई बात न हुई। फिर बहुत देर के बाद उदयादित्य ने चारों तरफ़ देख कर, आकाश की ओर देख कर और वसन्तराय के मुँह की ओर देख कर गद्गद स्वर में कहा—"दादाजी, आज मैंने स्वाधीनता पाई है, मुझे अब और क्या चाहिए? न मालूम यह सुख की घड़ी कब तक रहेगी?"

कुछ देर के बाद सीताराम ने हाथ जोड़ कर कहा—"युवराज, नाव पर सवार हों।"

युवराज ने चकित होकर कहा—"क्यों, नाव पर क्यों ?"

सीताराम—"नहीं तो कुछ देर में पहरेदार लोग यहाँ आ पहुँचेंगे।"

उदयादित्य ने अचम्भे के साथ वसन्तराय से पूछा—"दादाजी, क्या हम लोग भागे जा रहे हैं ?"

वसन्तराय ने उदयादित्य का हाथ पकड़ कर कहा—"हाँ, भाई, मैं तुम्हें चुराये लिए जा रहा हूँ ! यह पाषाणहृदय का देश है। यहाँ के लोग तुम पर प्रेम नहीं रखते ! हिरन के बच्चे की तरह तुम इस व्याघ्र के राज्य में वास करते हो। मैं तुमको अपने हृदय के भीतर छिपा रक्खूँगा। वहाँ तुम सुख से रहोगे।" यह कह कर उन्होंने उदयादित्य को अपनी छाती के पास खींच लिया। मानो वे उन्हें कठोर संसार से निकाल कर कोमल स्नेह के राज्य में छिपा रखना चाहते हैं।

उदयादित्य ने बड़ी देर तक सोच कर कहा—"नहीं, दादाजी, मैं भाग कर न जाऊँगा।"

वसन्तराय ने कहा—"क्यों, क्या इस वृद्ध को अब भूल गये ?"

उदयादित्य—"मैं जाता हूँ। एक बार पिता के पैरों पर गिर कर रोऊँगा और उनसे प्रार्थना करके कहूँगा। शायद वे रायगढ़ जाने की आज्ञा दे दें।"

वसन्तराय घबरा उठे और बोले—"सुनो, सुनो, वहाँ मत जाओ. जाने से कुछ फल न होगा।"

उदयादित्य ने ठंडी साँस लेकर कहा—"तब मैं फिर कारागार ही में लौट जाता हूँ।"

वसन्तराय ने उनका हाथ ज़ोर से पकड़ कर कहा —"कैसे जाते हो, जाओ तो देखूँ । मैं नहीं जाने दूँगा।"

उदयादित्य ने कहा—"दादाजी, इस अभागे को लेकर तुम क्यों अपने ऊपर आफ़त बुला रहे हो। मैं जहाँ रहता हूँ वहाँ क्या तिलमात्र भी शान्ति की सम्भावना रहती है ?"

वसन्तराय—"भाई, तुम्हारे कारण विभा भी तो एक प्रकार कारागार का दुःख झेल रही है। वह अपनी इस नई उम्र में क्या अपने जीवन के सारे सुखों को त्याग करके ही रहेगी ? वह अपनी उम्र को क्या आँसी बिना डालेगी ?" वसन्तराय की आँखों से आँसू गिरने लगे ।

उदयादित्य—"हाँ, तब चल चलो दादाजी, सीताराम की ओर देख कर उन्होंने कहा —"सीताराम, मैं तीन पत्र राजभवन को भेजना चाहता हूँ ।"

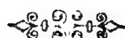
सीताराम ने कहा—"जहाज़ में काग़ज़ क़लम सब मौजूद है, मैं अभी ले आता हूँ । जो कुछ लिखना हो जल्दी लिखिए, अब समय नहीं है।"

उदयादित्य ने पिता के निकट क्षमा माँगी। माँ को लिखा माँ, मुझे गर्भ में धारण करके केवल तुमने दुःख ही दुःख उठाया, मैं कभी कोई सुख तुम्हें न दे सका। तुम कुछ सोच न करो, मैं दादाजी के पास जा रहा हूँ । वहाँ मैं सुख से रहूँगा । तुम मेरे लिए कोई चिन्ता न करो।"

विभा को लिखा—"सौभाग्यवती विभा, तुमको अधिक क्या लिखूँ । तुम जन्म जन्म सुख पाओ । अपने स्वामी के घर जाकर सुख का संसार बसाओ और सब सोच दुःख मन से भुला दो।" लिखते लिखते उदयादित्य की आँखों में आँसू भर

आये। सीताराम ने उन तीनों चिट्ठियों को किसी एक मल्लाह की मारफ़त भिजवा दिया। सब नाव पर सवार हो रहे हैं। ऐसे समय में देखा कि एक आदमी उन लोगों के पास दौड़ा आ रहा है। सीताराम चौंक कर बोल उठा—"अरे! यह तो वही डाकिनी आ रही है।" इतने ही में रुक्मिणी उन लोगों के समीप आ पहुँची। उसके बाल खुले हैं। उसके अञ्चल का वस्त्र छाती से अलग हो पड़ा है। उसकी प्रज्वलित अङ्गारे की तरह दोनों आँखें आग उगल रही हैं। वह बार बार सताई जाने और पूरे तौर से बदला न ले सकने की यन्त्रणा से व्याकुल होकर जिसे अपने सामने पाती है मानो उसी को टुकड़े टुकड़े करके काट खाना चाहती है और इसी से अपने क्रोधाग्नि को ठंडा करना चाहती है! जिस जगह प्यादे लोग आग बुझा रहे थे, उस जगह बार बार धक्का खानेसे मारे .गुस्से के अधीर हो कर वह पागल की तरह बरबराती हुई राजभवन के अन्दर घुसी। उसने एक दम प्रतापादित्य के घर में प्रवेश करने के हेतु बार बार चेष्टा की, वह चेष्टा उसकी विफल हुई, पहरेदारों ने उसको पागल समझ कर और उसे मार पीट कर वहाँ से निकाल दिया। इन सब यन्त्रणाओं से विकल हो कर वह राजभवन से बराबर दौड़ी चली आ रही है। उसने बाघिन की तरह उछल कर उदयादित्य पर आक्रमण करना चाहा। सीताराम बीच में आकर खड़ा हो गया। तब वह चिल्ला कर सीताराम के ऊपर कूद पड़ी और दोनों हाथों से .खूब ज़ोर से उसे पकड़ कर दबाया। सीताराम एकाएक चिल्ला उठा, नाव पर जितने माँझी थे सब दौड़ आये और उन लोगों ने बल-पूर्वक रुक्मिणी को छुड़ा कर अलग किया। आत्मघाती बिच्छू जैसे अपने सर्वाङ्ग में आप ही डंक मारता है वैसे ही वह हतज्ञान

हो कर अपने नखों से अपनी छाती और सिर के बाल नोच कर और .खूब ज़ोर से चिल्ला कर बोली—"कुछ न हुआ, कुछ न हुआ।" यहाँ मैं मरी, इस स्त्रीहत्या का पाप तुम लोगों को होगा।" उस अँधेरी रात में यह अभिशाप दूर तक चारों ओर ध्वनित हो उठा। उसी समय रुक्मिणी बड़े वेग से पानी में कूद पड़ी। बरसात के सबब नहर में पानी .खूब बढ़ा था। वह उस पानी में कहाँ चली गई इसका पता न रहा। सीताराम के कन्धे से .खून गिर रहा था, उसने चादर भिगो कर कन्धे पर पट्टी बाँधी। पीछे उसने उदयादित्य के पास जा कर देखा, उनके माथे पर पसीने की बून्दें छाई हैं, और वे प्रायः अचेत हो पड़े हैं। वसन्तराय भी दिग्भ्रान्त की तरह हक्का बक्का सा हो रहा है। मल्लाह उन दोनों को नाव पर सवार कर तुरंत नाव खोल दी। सीताराम ने डर कर कहा—"यात्रा के समय यह अशुभ कहाँ से आ खड़ा हुआ!"



# इकतीसवाँ परिच्छेद।

जब उदयादित्य की नाव नहर से निकल कर नदी में जा पहुँची। तब सीताराम नाव से उतर कर शहर में लौट आया। वह लौटते समय युवराज के हाथ की तलवार लेता आया।

सीताराम ने युवराज की तीनों चिट्ठियाँ देकर पहले ही एक आदमी को ड्योढ़ी रवाना कर दिया था किन्तु चिट्ठी लेजानेवाले को एकान्त में अच्छी तरह समझा दिया था कि चिट्ठी किसी को न दे। सीताराम ने ड्योढ़ी पहुँच कर उस आदमी से वे सब पत्र ले लिये। रानी और विभा की चिट्ठी रख छोड़ी और जो बची उसे फाड़ कर आग में जला दिया।

उस समय आग और भी भयङ्कररूप से चारों ओर फैली जा रही थी। कितने ही लोग केवल अग्निलीला का तमाशा देखने ही के लिए आये थे। इसी से आग बुझने में विलम्ब हो रहा था।

यह अग्निलीला सीताराम के ही हाथ से हुई थी, यह कहना बाहुल्यमात्र है। युवराज उदयादित्य के अनुरोध से उपर्युक्त कई एक प्रजाओं की और राजभवन के कई एक नौकरों की सहायता से उसने यह कीर्ति की है। सन्ध्या समय एक ही बार पाँच छः घरों में विना कारण आग धधक उठी, यह दैवी घटना नहीं है। इस समय जो इतनी चेष्टा करने पर भी आग बुझाये नहीं बुझती, उसका भी कारण है। जो लोग आग

बुझानेवाले हैं, उनमें कितने ही सीताराम के सहायक हैं। जहाँ आग नहीं है वे लोग वहीं पानी डालते हैं, पानी लाने जाकर वहीं बैठ रहते हैं, युक्ति से घड़ा फोड़ डालते हैं और हल्ला करके इधर उधर घूमते फिरते हैं। ऐसी हालत में आग कैसे बुझ सकती है।

इधर इस तरह का हल्ला हो ही रहा था, इतने में सीताराम के पक्षवाले लोगों ने उदयादित्य के सूने कारागार में आग लगा दी। आग ने एक एक कर खिड़की, दरवाज़ा, चौकट, किवाड़, कड़ी और बरंगे आदि को भस्म कर दिया। उस कारागार में भी किसी तरह आग पहुँच सकती है यह किसी को स्वप्न में भी विश्वास न था इसी से उस तरफ़ किसी का ध्यान भी न था। सीताराम ने घूम फिर कर देखा, आग अच्छी तरह कारागार को जलाने लगी है। सीताराम ने मुरदे की खोपड़ी और कुछ हड्डियाँ और उदयादित्य की तलवार किसी तरह उनके कारागार में फेंक दी।

दूसरी ओर जो लोग आग बुझा रहे थे, उन लोगों ने कारागार की ओर से एकाएक लोगों के चिल्लाने की आवाज़ सुनी। सब चकित हो एक स्वर से बोल उठे—"अरे यह क्या हुआ।" एक आदमी दौड़ता हुआ आकर बोला, "अरे दादा, युवराज के घर में आग धधक रही है!" पहरेदारों के होश उड़ गये, चीरो तो बदन में ख़ून नहीं। दयालसिंह के सिर में चक्कर आने लगा। उसके हाथ से घड़ा गिर गया। वह अपनी सब चीज़ें धरती में फेंक कर उस तरफ़ दौड़ा। इसी समय एक दूसरे आदमी ने आकर कहा—"क़ैदख़ाने के भीतर युवराज चिल्ला रहे हैं!" उसकी बात ख़तम होते न होते सीताराम ने आकर कहा—"अरे, तुम लोग जल्दी चलो, युवराज के

घर की छत टूट कर नीचे गिर पड़ी है, अब तो उनकी कुछ आहट भी नहीं पाई जाती।" सब युवराज के कारागार की तरफ़ दौड़े। वहाँ जाकर देखा घर की छत टूट कर नीचे गिर पड़ी है। चारों तरफ़ आग धधक रही है। घर में किसी तरफ़ से घुसने का रास्ता नहीं। तब वे लोग वहाँ खड़े होकर आपस में एक दूसरे पर दोषारोपण करने लगे। किसकी गफ़लत से यह दुर्घटना हुई, सब लोग इसी का निश्चय करने लगे। बात ही बात में झगड़ा उठ खड़ा हुआ। आपस में सब झगड़ने लगे, एक दूसरे को गाली गुफ़्ता देने लगे। यहाँ तक कि मारपीट होने की नौबत आगई।

सीताराम ने सोचा, घर में आग लगने से युवराज जलकर मर गये हैं, यह ख़बर फैला कर मैं अभी कुछ दिन यहाँ निश्चिन्त होकर रह सकूँगा। जब उसने देखा, घर में चारों तरफ़ ख़ूब अच्छी तरह आग पसर गई है, तब वह माथे में चादर लपेट कर प्रसन्न मन से अपने घर की ओर चला। ड्योढ़ी से बहुत दूर निकल आया। तब रात बहुत बीत चुकी थी, रास्ते में कोई आदमी नहीं, चारों तरफ़ सन्नाटा है। कभी कभी हवा लगने से बाँस के पत्ते खड़खड़ा उठते हैं। सीताराम का रसिक हृदय उल्लसित हो उठा है, वह उमङ्ग में आकर गीत गाने लगता है। उस जनशून्य निश्शब्द मार्ग से वह अकेला पथिक मन की उमङ्ग से मस्त होकर गीत गाता हुआ चला। कुछ दूर और आगे जाने पर उसके मन में एक बात सूझी। उसने सोचा, यशोहर से तो परिवार-सहित भागना ही होगा। अभी बिना परिश्रम के कुछ रुपये हाथ लगते हैं उन्हें क्यों छोड़ें? उन्हें ले ही लेना चाहिए। मङ्गला राक्षसी तो डूब कर मर ही चुकी है, भारी आफ़त सिर से टली है।

एक बार उसके घर होता जाऊँ, ढेर रुपये उस के पास थे। इस संसार में उसके कोई नहीं है; यह रुपया अगर मैं न लेता हूँ तो ज़रूर कोई दूसरा लेगा, दूसरा क्यों लेगा? एक बार कोशिश करके देखता हूँ। इस तरह सोच विचार कर सीताराम रुक्मिणी के घर की ओर चला। प्रसन्न चित्त से फिर तान उड़ाने लगा। कुछ दूर आगे जाकर उसने रास्ते में एक अभिसारिका स्त्री को जाते देखा। सीताराम की दृष्टि से ये सब बचन थोड़े ही छिपते थे। उससे दो ही एक बात बोलने के लिए उसके मन में एक अभिलाषा हुई। किन्तु अवसर न देख कर वह उस आवेग को रोक कर आगे बढ़ा।

सीताराम ने रुक्मिणी के घर के पास पहुँच कर देखा, द्वार खुला है। प्रसन्नचित्त से घर के भीतर प्रवेश करके उसने एक बार चारों ओर आँख फेर कर देखा। घर बिल्कुल अन्धकार से भरा था। कहीं कुछ दिखाई नहीं देता था। एक बार वह चारों तरफ़ टटोल कर देखने लगा। एक एक सन्दूक़ से ठोकर खाकर गिर पड़ा। दो एक बार उसके माथे में चौखट की ठोकर लगी। सीताराम का साहस छूटने लगा। उसके मन में हुआ, जैसे कोई रो रहा है। मालूम होता है जैसे कोई साँस ले रहा है। उसने धीरे धीरे डरते डरते चाले दूसरे घर में जाकर देखा, रुक्मिणी के सोने के घर से कुछ कुछ रोशनी आ रही थी। चिराग़ अभी तक जल रहा है, यह समझ कर सीताराम के मन में बड़ी ख़ुशी हुई। वह लपक कर उस घर की ओर गया। "अरे यह कौन है, घर में कौन बैठा है?" एक स्त्री चुपचाप बैठी है और थर थर काँप रही है। उसके पहनने का कपड़ा बिल्कुल भीगा है जो कमर से नीचे शरीर में लिपटा है। उसके खुले हुए बालों से बूँद बूँद पानी टपक रहा है।

घर में सिर्फ़ एक चिराग़ जल रहा है। उस चिराग़ की धुँधली रोशनी उसके उतरे हुए चेहरे पर पड़ रही है। पीछे से उस स्त्री की एक लम्बी छाया दीवार पर पड़ी है। घर में और कुछ नहीं है। केवल वही मलिनमुखी, उसी की लम्बी छाया और एक भयङ्कर निस्तब्धता। इस घर में प्रवेश करने के साथ सीताराम का शरीर सर्द हो गया। रूखा, सूखे बाल, उदास मुँह, मोटा कपड़ा बदन में लपेटे वहीं अकेली बैठी है! पागलों की तरह देख कर एकाएक सीताराम के मन में हो आया कि वह प्रेतलोक से यहाँ आकर बैठी है। न उसे अब आगे बढ़ने का साहस होता था, न पीछे ही लौटने का। सीताराम एक दम उन्मत्त न था। कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा, आख़िर कुछ निडर बनके रुक्मिणी के पास हो बोला—"अरी, तुम कहाँ से लौट आईं? क्या तुम्हारा मरना न हुआ?" रुक्मिणी कुछ देर भयानक क्रोध से सीताराम के मुँह की ओर देखती रही। तब सीताराम का कलेजा मारे डर के बाँसों उछलने लगा।

आख़िर रुक्मिणी एकाएक बोल उठी "तुम लोगों का अभी तक सर्वनाश हुआ ही नहीं, मैं कैसे मरूँगी?" वह उठ कर खड़ी हुई और हाथ चमका कर बोली, "मैं यमपुरी से लौट आई हूँ। पहले तुमको और युवराज को चूल्हे में जलाऊँगी, चूल्हे में से दो मुट्ठी राख लेकर देह में मल कर देह ठंडी करूँगी। तिस के बाद रामका मनोरथ पूरा करूँगी। जब तक मैं अपना काम पूरा न करूँगी तब तक मेरे लिए यमपुरी में जगह नहीं।"

रुक्मिणी का कण्ठ पहचान कर सीताराम को अत्यन्त

साहस हुआ। वह एकाएक अधिक अनुराग दिखा कर रुक्मिणी के साथ फिर मेल करने की चेष्टा करने लगा। वह उसके पास जाकर उसकी देह से एकदम सटकर खड़ा हुआ, और कोमल स्वर में कहने लगा—"प्राण-प्रिये, तुम इतने ही के लिए कोपमूर्ति बन बैठी हो? तुम्हारे मन में कब क्या हो जाता है सो कुछ समझ में नहीं आता! अच्छा, कहो तो मङ्गला, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? अपने दास के ऊपर इतनी नाराज़ क्यों हो? मालूम होता है मान कर रही हो? अच्छा, वह गीत गाकर तुम्हें सुनाऊँ?"

सीताराम जितनाही झूठा अनुराग दिखलाने लगा, रुक्मिणी उतनीही क्रोधातुर होने लगी। उसके सिर से पैर तक सारा अङ्ग क्रोध से जलने लगा। सीताराम अगर उसके माथे का बाल होता तो वह दोनों हाथों से नोचकर उसे तुरंत फेंक डालती, सीताराम अगर उसकी आँख होता तो वह तुरन्त नखों से उसे निकाल कर पैरों के नीचे दबा कर, फोड़कर फेंक डालती। उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर देखा, कोई चीज़ उसके हाथ के पास न पड़ी। तब वह दाँत पीस कर बोली, "ज़रा ठहरो, मैं अभी तुम्हारा सिर फोड़ती हूँ" यह कह कर थर थर काँपती हुई पत्थर का बटखड़ा ढूँढकर लाने के लिए दूसरे घर में गई। इसके कुछ ही देर पहले सीताराम गले में चादर लपेट कर मरने का प्रस्ताव उठाना चाहता था, किन्तु रुक्मिणी का भयङ्कर भाव देख कर उसको कुछ कहने का हियाव न पड़ा और चेत हो आया कि असली बट-खड़े की चोट से वह अब भी मरने के लिए प्रस्तुत नहीं हो सकता। इस कारण मौक़ा पाकर वह तुरंत उसके घर से बाहर निकल भागा। रुक्मिणी जब बाट हाथ में लिये उस घर में

आई तब सीताराम को न देख कर सीताराम के नाम पर बार बार पत्थर का बाट ज़मीन पर पटकने लगी।

रुक्मिणी मरी नहीं है। युवराज के रायगढ़ जाने से उसकी दुराशा एकदम दूर हो गई है। उसके सारे उपाय और सारे उद्देश्य एकदम धूल में मिल गये हैं। रुक्मिणी का पहले का सा अब वह उत्कट हास्य नहीं, बिजली को भी मात करनेवाला वह चञ्चल कटाक्ष नहीं, नदी के बाढ़ की तरह अब वह गर्व का उफान नहीं। राजदरबार के जो नौकर चाकर उसके पास आते थे उन लोगों के साथ झगड़ा करके और उन्हें गाली देकर चिढ़ा दिया है। दीवानजी का ज्येष्ठ पुत्र उस दिन पान खाते और अठलाते उसके साथ दिल्लगी करने आया था। रुक्मिणी ने झिड़क कर उसे अपने पास बैठने तक न दिया। अब कोई उसके पास जाने का साहस नहीं करता। महल्ले के सभी लोग उससे डरते हैं।

सीताराम ने मङ्गला के घर से बाहर आकर मन में सोचा। "मङ्गला को युवराज के भागने का सारा हाल मालूम हो चुका है। अतएव यह सबको बिना बँधवाये न छोड़ेगी। मैं उस हत्यारिन का गला घोंट कर उसको मार क्यों न आया? जो हो, यशोहर में अब एक घड़ी के लिए भी रहना मेरे लिए अच्छा नहीं। मैं अभी भाग जाऊँ इसीमें बेहतरी है। सीताराम उसी रात को अपने बालबच्चों को साथ ले यशोहर का परित्याग करके रायगढ़ भग गया।

उसी रात के पिछले पहर घटा घिर आई और मूसलधार पानी बरसने लगा। आग भी धीरे धीरे बुझ गई। युवराज का अनिश्चित मृत्युसंवाद प्रतापादित्य के कानों में पड़ा।

प्रतापादित्य तुरंत हवेली से बाहर होकर अपने न्यायालय में आकर बैठे। उन्होंने पहरेदारों को बुला भेजा। पहले मन्त्री आये, पीछे से एक सभासद भी। एक व्यक्ति ने कहा—"जब आग खूब ज़ोर से धधक रही थी तब खिड़की से झाँक कर मैंने युवराज को देखा था।" और कितने ही लोगों ने कहा—"उन लोगों ने युवराज के चिल्लाने की आवाज़ सुनी थी।" एक आदमी ने उस घर से युवराज के हाथ की जली हुई तलवार लाकर महाराज के आगे रख दी। प्रतापादित्य ने पूछा—"चचा कहाँ हैं? राजभवन में खोज होने पर कहीं उनका पता न लगा। किसी ने कहा—"जिस घर में आग लगी थी उस घर में वे भी कारागार में थे।" दूसरा बोल उठा। "नहीं, रात में तो जब उन्होंने सुना कि कैदखाने में भी आग लगी है तब वे इसी में रह गये तभी वे तुरंत वहाँ से चल दिये।" प्रतापादित्य जब सभा में बैठे हुए इस तरह लोगों का इज़हार सुन रहे थे, उसी समय कचहरी के द्वार पर मामूली तौर से कुछ कोलाहल हो उठा। एक औरत कचहरी के अंदर प्रवेश करना चाहती है किन्तु दरबान उसे रोकता है। प्रतापादित्य ने यह सुन कर उसे घर के भीतर ले आने की आज्ञा दी। एक प्यादा रुक्मिणी को साथ ले आया। राजा ने उससे पूछा—"तुम क्या चाहती हो?" वह हाथ चमकाकर खूब ज़ोर से बोली—"मैं कुछ नहीं चाहती। तुम्हारे जो ये पहरेदार लोग हैं, इन सबों को छः छः महीने जेलखाने में अच्छी तरह सड़ा पचाकर कुत्तों से नुचवाकर इन लोगों की जान ली जाय—यही मैं देखना चाहती हूँ। ये लोग क्या तुम्हें कुछ समझते हैं, तुम्हारा क्या ये लोग कुछ डर मानते हैं।" यह सुन कर पहरेदार लोग चारों ओर से शोर-गुल मचाने लगे। रुक्मिणी ने पीछे की ओर देख कर,

आखें टेढ़ी करके ख़ूब डपट कर प्यादों से कहा—"चुप रहो, नमकहराम कहीं के, तुम लोगों का युवराज जब तुम्हारे राय-गढ़ के बूढ़े महाराज के साथ भागा जा रहा था तब तो तुम लोगों ने मेरी एक न सुनी। राजा के घर में नौकरी करते हो, तुम लोगों के मन में इसका बड़ा घमण्ड है, मालूम होता है तुम लोगों ने कुछ पाया है। मरने के वक्त चींटियों के पर जमते हैं।"

प्रतापादित्य—"जो जो घटनायें हुई हैं सो सब कहो।"

रुक्मिणी—"और क्या कहूँगी। तुम्हारे युवराज कल रात बूढ़े राजा के साथ भाग गये हैं।

प्रतापादित्य—"घर में आग किसने लगाई है सो जानती हो?"

रुक्मिणी—"मैं ही न जानूँगी। वही जो तुम्हारा सीता-राम है। तुम्हारे युवराज के साथ उसको बड़ी प्रीति है। मानो उनके और कोई हई नहीं, जो कुछ है सो सब सीताराम ही है। यह सब उसी सीताराम का काम है। बूढ़ा राजा, सीता-राम और तुम्हारा युवराज येही तीनों आदमी मिल कर यह काम कर गये हैं। यह साफ़ साफ़ मैंने कह दिया।"

प्रतापादित्य बड़ी देर तक चुप रहे। पीछे पूछा, तुमने ये सब बातें कैसे जानीं? रुक्मिणी ने कहा—"यह पूछने का काम क्या? मेरे साथ आदमी कर दो, मैं ख़ुद जाकर उन सबों को खोज निकालूँगी। तुम्हारे दरबार के नौकर बिल्कुल भेड़ हैं। उन लोगों से यह काम न हो सकेगा।"

प्रतापादित्य ने रुक्मिणी के साथ आदमी कर देने की आज्ञा दी और पहरेदारों के लिए जो मुनासिब सज़ा समझी, दी। कचहरी से एक एक कर सब लोग चले गये। न्यायालय शून्य

हो गया। सिर्फ़ मन्त्री और महाराज बैठे रहे। मन्त्री ने समझा, 'महाराज मुझसे कुछ ज़रूर कहेंगे।' किन्तु प्रतापादित्य ने कुछ न कहा। मन्त्री ने उनके कुछ बोलने के अभिप्राय से गम्भीर स्वर में कहा—"महाराज!" महाराज ने इसका कोई जवाब न दिया। मन्त्री धीरे धीरे उठ कर वहाँ से चले गये।

उसी दिन साँझ होने के कुछ पहले प्रतापादित्य ने एक मल्लाह की ज़बानी उदयादित्य के भागने की सच्ची ख़बर पाई। उसने नाव पर सवार उदयादित्य को नदी की राह से जाते हुए देखा था। क्रमशः अन्यान्य लोगों के मुँह से भी उन्होंने उदयादित्य के भागने की ख़बर सुनी। रुक्मिणी के साथ जो लोग गये थे वे एक सप्ताह के बाद लौट आये और महाराज के निकट जाकर अर्ज़ किया। युवराज को रायगढ़ में उन लोगों ने देखा। राजा ने पूँछा, वह औरत कहाँ है? उन लोगों ने कहा—"वह वहाँ से लौट कर न आई, वहीं रह गई।"

तब प्रतापादित्य ने मुख़ारख़ाँ नामक अपने एक पठान सेनाध्यक्ष को बुला कर न मालूम चुप ही चुप उसे क्या आज्ञा दी। वह सलाम करके चला गया।

---

# बत्तीसवाँ परिच्छेद।

रानी और विभा को उदयादित्य के भागने का वृत्तान्त प्रतापादित्य के जानने के पहले ही ज्ञात हो चुका था। दोनों भय से व्याकुल हो कर सोच रही थीं कि महाराज को जब यह हाल ज़ाहिर होगा तब न मालूम वे क्या करेंगे? प्रतापादित्य ज्यों ज्यों उदयादित्य के भागने की ख़बर पाने लगे त्यों त्यों उन दोनों के जी में भाँति भाँति की भयानक चिन्तायें होने लगीं। इसी तरह एक सप्ताह बीत गया। आख़िर महाराज ने पक्की ख़बर पाई और उसपर उन्होंने विश्वास किया। किन्तु इसका उन्होंने कुछ भी प्रतिविधान न किया। क्रोध का आभास तक भी उन्होंने व्यक्त न होने दिया। रानी सन्देह के मारे घबरा कर एक बार प्रतापादित्य के पास गईं। बड़ी देर तक तो उन्हें उदयादित्य के सम्बन्ध में कुछ पूछने का साहस न हुआ। महाराज ने भी उस विषय में कुछ ज़िक्र न किया। आख़िर रानी से न रहा गया। वे बोलीं—"महाराज, मैं हाथ जोड़ कर आप से इतना भीख माँगती हूँ, इसबार उदय का अपराध क्षमा करें, मेरे बच्चे को अब कष्ट देंगे तो मैं विष खाकर मर जाऊँगी।"

प्रतापादित्य ने ज़रा रुखाई लिये कहा—"तुम पहले ही से रोने बैठी हो। मैं तो कुछ करता नहीं।"

प्रतापादित्य पीछे फिर कहीं एकाएक बिगड़ न बैठें, इसी कारण रानी ने उस विषय में फिर कुछ बोलने का साहस न

किया । डर कर धीरे धीरे वहाँ से चली गई । योंहीं कई दिन गुज़र गये, महाराज का कोई विषय भाव व्यञ्जित न हुआ । यह देख कर रानी और विभा के चित्त स्थिर हुए । उन दोनों ने समझा, 'उदयादित्य को दूसरी जगह जाने से जान पड़ता है महाराज मन ही मन प्रसन्न हैं ।' अब कुछ दिन के लिए रानी एक प्रकार से निश्चिन्त हो गईं ।

इसके पहले ही रानी विभा से कह चुकी थीं और उसने हवेली भर में यह बात ज़ाहिर कर दी थी कि रामचन्द्रराय ने विभा को भेज देने के हेतु अनुरोध-बोधक एक पत्र लिखा है । विभा के मन में हर्ष की सीमा न रही । जबसे उसने रामभोहन को कोरे हाथ बिदा कर दिया था तबसे उसके मन में घड़ी भर के लिए भी सुख-चैन न था । जभी वह अवसर पाती तभी इस प्रकार सोचने लगती, "क्या वे मेरा भाव समझते होंगे ? क्या वे मेरी अवस्था को ठीक ठीक जानते होंगे ? शायद उन्होंने मुझपर क्रोध किया है । यदि मैं अपना हाल समझाकर कहूँगी तो क्या वे मेरे अपराध क्षमा न करेंगे? हा, जगदीश्वर ! ऐसा समय कब आवेगा कि उनसे सब बात समझा कर कहूँगी । कब उनके दर्शन होंगे?" विभा क्रमशः घूम फिर कर इन्हीं बातों को सोचा करती थी । दिन रात उसके मन में यही आशङ्का लगी रहती थी । रानी की बात सुनकर विभा को बेहद ख़ुशी हुई । उसके मन से एक बड़ा भारी बोझ उतर गया । वह लाज संकोच दूर करके हँसती हुई अपनी माँ की छाती में मुँह छिपा कर कितनी ही देर तक चुपचाप पड़ी रही । उसकी माँ रोने लगी । विभा ने जब समझा, उसके स्वामी उसकी कोई भूल नहीं समझते, उसके मन की बात उन्होंने ठीक ठीक जान ली है, तब उसकी आँखों में सारा संसार नन्दनवन

सा दीखने लगा। अपने स्वामी के हृदय को उसने बहुत उदार समझा। उसे अपने स्वामी के स्नेह पर कितना ही विश्वास और भक्ति उत्पन्न हुई। उसने समझा, उसके स्वामी का प्रेम इस संसार में उसके लिए एक अटल अवलम्ब है। वह एक बलिष्ठ महापुरुष के विशाल कन्धे को अपनी छोटी सी दोनों सुकुमार भुज-लताओं से आवेष्ठित करके अपने को निर्भयता और पूर्ण विश्वास के ऊपर निर्भर कर रही है। उस निर्भयता से वह किसी तरह अलग न होगी। विभा मारे ख़ुशी के फूल उठी। उसका हृदय शरदृऋतु के निर्मेघ आकाश की तरह निर्मल हो गया। वह अब अपने भाई समरादित्य के साथ छोटे बच्चे की तरह कितने ही खेल खेलती है। छोटी सी दुलारी लड़की की तरह अपनी माँ के पास कितना ही लाड-प्यार दिखलाती है। अपनी माँ के काम-धन्धों में सहायता करती है। पहले जो उस का चेष्टारहित मलिन छाया की तरह एक विचित्र तरह का भाव बना रहता था, वह अब नहीं है। अब उसके हृदय की मुरझाई हुई आशालता फिर लहलहा उठी है। उसके चेहरे पर अब वह उदासी नहीं है। पहले की तरह वह संकोच, वह विषाद, वह ग्लानि और वह मौन भाव अब नहीं है। वह अब उमङ्ग में आकर माँ के साथ इतनी बातें करती है जो इसके पहले कभी नहीं करती थी। बेटी का यह आनन्द देख कर माँ का स्नेह उस पर एक दम उमँड उठा। मनही मन उन्हें चिन्ता कुछ ज़रूर हो रही थी। किन्तु विभा के निकट उस चिन्ता का आभास मात्र भी वह प्रकट होने नहीं देती। माँ हो कर फिर किस हृदय से वह विभा के उस विमल उल्लासमय हास्य को मलिन करेगी। इसी कारण लड़की प्रतिदिन आँखों के सामने

हँसी ख़ुशी से खेलती फिरती है, और माँ प्रसन्न मन और अतृप्त नयनों से उसे देखती है ।

रानी के मन में कुछ भय और सन्देह बना था। इसी कारण वह आज कल करके टाल मटोल कर रही थी। विभा को ससुराल भेजने का साहस नहीं होता था । दो एक सप्ताह बीत चले। उदयादित्य के विषय में सब लोग एक प्रकार से निश्चिन्त हो गये हैं। केवल विभा के विषय में क्या करना होगा, रानी अब तक इसका कुछ निश्चय न कर सकीं। यों ही और भी कुछ दिन बीते। जितना हो विलम्ब हो रहा है उतना ही विभा की अधीरता बढ़ रही है। विभा सोचती है—"जितना ही विलम्ब हो रहा है उतना ही अधिक वह अपने स्वामी के निकट अपराधिनी हो रही है। जब उन्होंने बुला भेजा है, तब इतना विलम्ब क्यों हो रहा है ? एक बार उन्होंने क्षमा की है, अब—।" बहुत दिनों तक इस विषय में विभा कुछ नहीं बोली। आख़िर एक दिन उससे न रहा गया; माँ के पास जाकर माँ के गले से लिपट कर और माँ की मुँह की ओर ताक कर बोली, "माँ ।" विभा के इसी एक सम्बोधन मात्र से उसकी माँ सब समझ गई। विभा को अपनी छाती से लगा कर उसने कहा—"क्या बच्चा !" विभा कुछ देर चुप रह कर बोली—"माँ, तू मुझे कब भेजेगी।" इतना कह कर वह मारे लज्जा के सिमट गई। उसका मुँह लाल हो गया। माँ ने मुसकुरा कर पूछा—"कहाँ भेजूँगी ।" विभा ने विनय के स्वर में रुकती ज़बान से कहा—"जहाँ कहीं भेजोगी, सो तुम जानो।" रानी ने कहा—"बेटी, कुछ दिन और धीरज धर। अब शीघ्र ही भेजूँगी।" इतना कहते कहते उनकी आँखों में आँसू भर आये ।

---

# तैंतीसवाँ परिच्छेद ।

उदयादित्य मुद्दत के बाद रायगढ़ आये हैं; किन्तु उन्होंने पहले की तरह इस बार आनन्द न पाया। चिन्ता चित्त को दबाये हुई थी। इसीसे उनका जी कहीं नहीं लगता था। वे सोच रहे थे, दादाजी ने जो काम किया है उसका परिणाम अच्छा न होगा। पिताजी उन्हें योंही छोड़ देंगे—यह तो सम्भव नहीं। मेरा जन्म न मालूम कैसे कुलग्न में हुआ था। उन्होंने वसन्तराय के पास जाकर कहा; "दादाजी, मैं जाता हूँ, यशोहर लौट जाता हूँ।" वसन्तराय ने गीत गाकर इस बात को हँसी में उड़ा दिया।

आख़िर जब उदयादित्य ने यही एक बात बार बार उनसे कही, तब वसन्तराय के मन में बड़ी चोट लगी, उन्होंने गाना बन्द करके उदासी से कहा—क्यों उदय, मेरे पास रहते तुम्हें क्या तकलीफ़ होती है?" उदयादित्य इस पर कुछ न बोले।

उदयादित्य को चिन्तित देख कर वसन्तराय उन्हें सुखी रखने के लिए दिनरात जी जान से यत्न करते थे। सितार बजाकर सुनाते थे, उदयादित्य को साथ लेकर इधर उधर टहलते थे। उदयादित्य के पीछे प्रायः उनका राजकाज बन्द सा हो गया। वसन्तराय उदयादित्य को अपनी आँखों के सामने से अलग नहीं होने देते, उनके जी में भय बना रहता था कि उदयादित्य फिर कहीं यशोहर न चले जायँ। दिन रात उन्हें अपनी आँखों की पुतली बनाये रहते थे और उनसे कहते थे

"भाई, तुम्हें अब उस पाषाणहृदय की नगरी में नहीं जाने दूँगा।"

उदयादित्य के मन में अब उतनी चिन्ता नहीं है जितनी पहले थी। वे बहुत दिनों के बाद छोटे से प्रस्तरनिर्म्मित कारागार से मुक्त होकर वसन्तराय के प्रेमपरिपूर्ण कोमल हृदय के भीतर विराज रहे हैं। बहुत दिनों के बाद वे चारों ओर भाँति भाँति के वृक्ष और संपूर्ण आकाशमण्डल देख रहे हैं। चारों ओर में फैला हुआ उषाकाल का प्रकाश देख रहे हैं। पक्षियों का कलरव सुन रहे हैं, बेरोक हवा उनके सारे शरीर में लगती है, रात में आकाशस्थित तारे देखने में आते हैं, वे चाँदनी की चटकीली छटा में मानो डूब जाते हैं। जहाँ जाना चाहते हैं वहाँ जाते हैं। जो जी में आता है करते हैं। यहाँ उन्हें किसी तरह की रुकावट नहीं है। जो सब प्रजायें उदयादित्य को बचपन से ही जानती थीं, वे सब दूर दूर से उदयादित्य को देखने आती हैं। गङ्गाधर आया, फटिकचन्द आया, हरिदास और करीमउल्ला आये। मथुरा अपने तीनों बेटों को साथ लेकर आया। रामधन और प्राणधन दोनों भाई आये, शीतल सरदार खेल दिखलाने के लिए पाँच पटेबाज़ों को अपने साथ लेता आया। योंही रोज़ रोज़ न मालूम कितनी ही प्रजायें युवराज के पास आने लगीं। युवराज ने उन लोगों से प्रेमपूर्वक मिलकर कितनी ही बातें पूछीं।" उदयादित्य अब भी उन लोगों को भूले नहीं हैं, यह देख कर प्रजाओं को बड़ाही आनन्द और अचम्भा हुआ। मथुरा ने कहा—"महाराज, पहले पहल आप जिस महीने में रायगढ़ आये थे उसी महीने में मेरे इस छोटे लड़के का जन्म हुआ था जिसे आप देखही आये थे, उसके बाद आपके आशीर्वाद से मेरे और भी दो सन्तानें हुईं। यह कह कर वह तीनों

लड़कों को युवराज के पास बुला कर ले आया और उन्हें प्रणाम करने कहा—"तीनों लड़कों ने धरती में माथा टेक कर युवराज को प्रणाम किया।"

प्राणधन ने आकर कहा—"यशोहर जाने के समय यहाँ से हज़ूर जिस नाव पर सवार हुए थे मैं उस नाव का माँझी था। शीतल सरदार ने आकर कहा—"महाराज, आप जब रायगढ़ में थे तब आपने मेरे लाठी भाँजने का तमाशा देखकर इनाम दिया था। आज मेरी लालसा है एक बार अपने लड़कों का खेल हुज़ूर को दिखलाऊँ। आओ तो ज्ञानचन्द, तुम सब भाई आओ।" उसने अपने लड़कों को बुलाया। इसी तरह प्रतिदिन सवेरे ही से उदयादित्य के पास झुण्ड के झुण्ड प्रजागण आते और सब एकत्र होकर अपने अपने मनकी बातें कहते।

इस प्रकार हँसी खेल में, इधर उधर स्वतन्त्र होकर घूमने फिरने में और गाने बजाने में दिल बहला कर उदयादित्य ने अपने मन की बहुत कुछ चिन्तायें दूर कर दीं। उन्होंने मनही मन समझा, "पिता को शायद मेरे भागने का क्रोध न हुआ। मालूम होता है वे अब मुझ पर सन्तुष्ट हैं, नहीं तो इतने दिन क्या वे योंही बैठे रहते ?"

किन्तु इस प्रकार अन्धाधुन्ध विश्वास में वे अपने मनको अधिक दिन भुलाकर नहीं रख सके। दादाजी के लिए उनके मन में एक तरह का भय होने लगा। यशोहर लौट जाने की बात दादाजी को कहना वृथा है। उन्हें फिर कारागार याद हो आया। कहाँ इस स्वाधीनता का आनन्द, और कहाँ उस छोटे से संकीर्ण कारागार में रह कर जीवन बिताना। कारागार की एक एक घड़ी उन्हें एक एक वर्ष के बराबर याद

होने लगी। वह प्रकाशरहित, निर्जन, और निर्वातगृह उन्हें कल्पना की सृष्टि में साफ़ साफ़ दिखाई देने लगा। उनका शरीर काँप उठा। उन्होंने निश्चय किया, यहाँ से एक न एक दिन उस कारागार में फिर जाना ही होगा। आज न सही, किसी दूसरे ही दिन। यों मन में सोच कर एक तरह वे निश्चिन्त हो बैठे।

आज वृहस्पतिवार है, दिनान्त वा रात्र्यन्त में वार-वेला ( अवपहरा ) होगा, आज यात्रा करना ठीक नहीं, कल प्रस्थान करूँगा। आज का दिन बड़ा ही खराब दीखता है। सवेरे से मेघ का आडम्बर है। जो हो, आज साँझ को रायगढ़ छोड़ कर जाना ही होगा, उदयादित्य ने यह स्थिर कर रक्खा है। सवेरे जब वसन्तराय ने उदयादित्य को देखा, तब वसन्तराय ने उनका हाथ पकड़ कर कहा—"कल रात में मैंने एक बड़ा बुरा सपना देखा है। सपना क्या देखा वह तो अच्छी तरह याद नहीं आता, केवल इतना याद है, मानो हमारे और तुम्हारे बीच में हमेशा के लिए जुदाई हो गई है।

उदयादित्य ने वसन्तराय का पैर पकड़ कर कहा—"नहीं दादाजी, जुदाई अगर होगी भी, तो हमेशा के लिए क्यों होगी?"

वसन्तराय ने दूसरी ओर देख कर चिन्तितचित्त से कहा, अब हमेशा के ही लिए समझिए। वृद्ध हो ही गया हूँ। कहो, अब और कितने दिन जीऊँगा?"

गत रात्रि के दुःस्वप्न की कुछ कुछ ध्वनि अब भी वसन्तराय के हृदयरूपी गुफा में प्रतिध्वनित हो रही थी, इसी से वे अन्य-मनस्क होकर कुछ सोच रहे थे।

उदयादित्य कुछ देर चुप रह कर बोले—"दादाजी, अगर हम लोगों में जुदाई हो ही जाय तो क्या होगा!"

वसन्तराय ने उदयादित्य को गले लगा कर कहा—"क्यों बच्चा, जुदाई क्यों होगी ? तुम मुझे छोड़ कर मत जाओ, इस वृद्ध अवस्था में मुझे तिरस्कृत कर भाग न जाओ।"

उदयादित्य की आँखों में आँसू भर आये। वे बहुत अचंभे में आगये। उनके मनका अभिप्राय वसन्तराय ने कैसे समझा। लम्बी साँस लेकर युवराज ने कहा—"दादाजी, आपके पास मेरे रहने से आपके ऊपर आफ़त आयेगी।"

वसन्तराय ने हँस कर कहा—"कैसी आफ़त ! इस उम्र में विपद् का भय मैं थोड़े ही करता हूँ। मृत्यु से बढ़ कर तो कोई आफ़त नहीं। मृत्यु मेरे पड़ोस में आचुकी है, वह रोज़ रोज़ मेरी खोज ख़बर ले रही है। मैं अब उससे नहीं डरता। जो व्यक्ति जीवन के सारे झंझटों को झेल करके बुढ़ापे तक जीता बच रहा हूँ, किनारे लग कर उसकी नाव डूब ही गई तो क्या ?"

उदयादित्य आज दिन भर वसन्तराय के साथ रहे। दिन भर पानी बरसता रहा। कुछ दिन बच रहा तब पानी बरसना बन्द हुआ। उदयादित्य उठ कर खड़े हुए। वसन्तराय ने कहा—"कहाँ जाते हो ?"

उदयादित्य—"ज़रा घूम आता हूँ।"
वसन्तराय—"आज घूमने न जाओ।"
उदयादित्य—"क्यों, दादाजी !"

वसन्तराय उदयादित्य से लिपट गये और बोले—"आज तुम घर से बाहर न हो, आज तुम मेरे पास रहो।"

उदयादित्य—"दादाजी, मैं अधिक दूर न जाऊँगा, अभी लौट आता हूँ" यह कह कर वे घर के बाहर हो गये।

उन्हें ड्योढ़ी से अकेले बाहर जाते देख कर एक प्यादे ने कहा —महाराज, मैं आपके साथ चलता हूँ।

युवराज—"नहीं. कोई जरूरत नहीं।"

प्यादे ने कहा—"महाराज के हाथ में कोई अस्त्र नहीं है।"

युवराज—"अस्त्र का प्रयोजन क्या ?"

ड्योढ़ी से कुछ दूर एक बहुत लम्बा चौड़ा मैदान है, उदयादित्य उसी मैदान में जा पड़े। उस मैदान में अकेले घूमने लगे। क्रमशः सूर्य का प्रकाश मन्द होने लगा। उनके मन में न मालूम क्या क्या चिन्तायें उदित हुईं। युवराज अपने इस अवलंबहीन और उद्देश्यहीन जीवन की बात सोचने लगे। सोच कर देखा, कुछ भी स्थिर देखने में न आया। क्षण ही भर के बाद क्या होगा उसका कुछ ठिकाना नहीं। उम्र अभी कुछ ही बीती है, जीवन का अधिक भाग पड़ा ही है। एक ठिकाने की जगह न मिलने से इतना बड़ा भविष्य समय कैसे कटेगा ? इसके बाद विभा का स्मरण हो आया। विभा अब कहाँ है ? इतने दिन में ही उसके सुख का प्रकाश रोके बैठा था। क्या अब वह सुख से समय न बिताती होगी ? विभा को मनही मन उन्होंने बहुत आशीर्वाद दिया।

चरवाहों को धूप के वक्त विश्राम करने के लिए उस मैदान में एक जगह पीपल, बड़, खजूर और सुपारी आदि पेड़ों का एक छोटा सा जङ्गल है। युवराज उस जङ्गल के अन्दर घुसे तब साँझ हो चुकी थी, कुछ कुछ अँधेरा सा हो गया था। युवराज का विचार आज भागने का था। उसी संकल्प को लेकर वे मनही मन सोच रहे थे। वसन्तराय जब सुनेंगे, उदयादित्य भाग गये हैं तब उनकी क्या दशा होगी। तब वे

हृदय में चोट खाकर करुणा भरे स्वर से बोलेंगे—"अयँ" उदय मेरे पास से भाग गया ! उनको उस काल्पनिक आकृति को मानो उन्होंने स्पष्ट देख पाया ।

इसी समय एक औरत कठोर स्वर में बोल उठी—"यह देखो, इसी जगह तुम लोगों के युवराज हैं—इसी जगह ।"

दो सैनिक सिपाही हाथ में मसाल लिये युवराज के पास आ खड़े हुए । देखते देखते और भी कितनी ही पल्टनें उन्हें घेर कर खड़ी हुईं । तब उस औरत ने उनके पास आकर कहा, "मुझे पहचानते हो ! एक बार इस तरफ़ ध्यान से देखो ! एक बार इधर नज़र करो ।" युवराज ने मसाल की रोशनी में देखा, रुक्मिणी है । सेनाओं ने रुक्मिणी का व्यवहार देख कर झिड़क कर कहा—"दूर हो यहाँ से ।" वह उस पर ज़रा भी ध्यान न देकर कहने लगी "यह सब किसने किया है ? मैंने ही किया है । मैंने ही यह सब किया है । यहाँ इन सब सेनाओं को कौन लाया है ? मैं लाई हूँ । मैंने तुम्हारे हेतु इतना किया, और तुम—घृणा करके रुक्मिणी की ओर से मुँह फेर कर खड़े हुए हो !" सैनिकों ने रुक्मिणी को खींच कर ज़बरदस्ती वहाँ से अलग कर दिया । तब मुख़ारख़ाँ सामने आकर युवराज को सलाम करके खड़े हुए । युवराज ने विस्मित होकर कहा—"मुख़ारख़ाँ, क्या हाल है ?"

मुख़ारख़ाँ ने विनयपूर्वक कहा—"हुज़ूर महाराज की आज्ञा के अनुसार हम लोग यहाँ आये हैं ।

युवराज ने पूछा—"उनकी क्या आज्ञा है !"

मुख़ारख़ाँ ने प्रतापादित्य की दस्तख़ती चिट्ठी निकाल कर युवराज के हाथ में दी ।"

युवराज ने पढ़ कर कहा,—“इसके लिए इतनी सेना की क्या ज़रूरत थी ? मुझे एक आज्ञापत्र लिख कर भेज देते मैं उनके पास हाज़िर हो जाता। मैं तो आपही जा रहा था, जाने की सब बात स्थिर कर चुका हूँ। तब देर करने का प्रयोजन क्या ? अभी सजो। अभी यशोहर लौट चलता हूँ।”

मुख़ारख़ाँ ने हाथ जोड़ कर कहा—“अभी तो हम लोग न जा सकेंगे।”

युवराज ने डर कर कहा—“क्यों” मुख़ारख़ाँ ने कहा—“महाराज का एक और हुक्म है, उसको बिना पूरा किये कैसे जा सकूँगा।”

युवराज ने भीत स्वर में कहा—“क्या हुक्म है !”

मुख़ारख़ाँ ने कहा—“महाराज ने रायगढ़ के राजा को मार डालने का हुक्म दिया है।”

युवराज चौंक कर बोले—“नहीं, नहीं, ऐसा हुक्म उन्होंने नहीं दिया है। तुम झूँठ कहते हो।

मुख़ारख़ाँ ने कहा—“युवराज साहब, मैं आपसे झूँठ नहीं कहता हूँ। मेरे पास महाराज की दस्तख़ती चिट्ठी है।”

युवराज ने सेनापति का हाथ पकड़ कर बड़ी व्यग्रता से कहा—“मुख़ारख़ाँ, तुमने उस चिट्ठी का मतलब नहीं समझा, महाराज ने यह आज्ञा दी है कि अगर उदयादित्य को वे हाज़िर न कर सकें तो उनको ——जब मैं ख़ुद हाज़िर हूँ तब उन्हें क्यों——मुझे अभी ले चलो, मैं चलने को तैय्यार हूँ। मुझे बाँध कर ले चलो। ज़रा भी देर न करो।”

मुख़ारख़ाँ ने कहा—“मैं उस चिट्ठी का मतलब बख़ूबी समझता हूँ। महाराज ने बड़ी ताकीद के साथ आज्ञा दी है।”

युवराज ने अधीर होकर कहा—"तुम ज़रूर भूलते हो। उनकी ऐसी आज्ञा नहीं है। अभी यशोहर चलो। मैं महाराज को तुम लोगों के विषय में समझा दूँगा। वे यदि दूसरी बार आज्ञा देंगे तो जो तुम्हारे जी में आवे सो करना!"

मुख़ारख़ाँ ने हाथ जोड़ कर कहा—"युवराज साहब, माफ़ कीजिए, मैं महाराज की आज्ञा नहीं टाल सकता।"

युवराज ने अत्यन्त अधीर होकर कहा—"मुख़ार, समझ रक्खो, किसी समय यशोहर के सिंहासन का अधिकार मुझी को मिलेगा। मेरी बात मानो, और मुझे ख़ुश करो।"

मुख़ार कुछ जवाब न देकर चुप खड़ा रहा।

युवराज का चेहरा उदास पड़ गया। उनका सारा शरीर पसीना पसीना हो गया। उन्होंने सेनापति का हाथ ख़ूब ज़ोर से पकड़ कर कहा। मुख़ारख़ाँ, वृद्ध, निर्दोष, धर्मात्मा, वसन्तराय का ख़ून करोगे तो नरक में भी तुम्हें ठहरने की जगह न मिलेगी।"

मुख़ारख़ाँ ने कहा—"मालिक की आज्ञा पालन करने में पाप नहीं होता।"

उदयादित्य ने कड़क कर कहा—"झूँठ, कौन कहता है कि पाप नहीं होता, जिस धर्मशास्त्र में ऐसी बात लिखी है वह धर्मशास्त्र नहीं। मुख़ार, तुम सच मानो, पाप की आज्ञा पालन करने में ज़रूर पाप होता है।

मुख़ार कुछ न बोला।

उदयादित्य चारों ओर देख कर बोले. अच्छा, मुझे छोड़ दो, मैं लौट जाता हूँ। तुम अपनी सेनाओं को लेकर वहाँ

आओ, मैं तुम्हें युद्ध करने कहता हूँ । वहाँ रणभूमि में विजय प्राप्त करके तब आज्ञा पालन करना ।

मुख़ार कुछ न बोला । उसके साथ की सेना युवराज के बहुत पास आकर चारों ओर से उन्हें घेर कर खड़ी हो गई । युवराज ने जब कोई उपाय न देखा तब उस अन्धकार में ख़ूब ज़ोर से चिल्ला उठे, "दादाजी, सावधान !" इस शब्द से सारा वन काँप उठा । मैदान की सीमा तक जाते जाते वह आवाज़ ख़तम हो गई । सेना ने उदयादित्य को पकड़ रक्खा । उदयादित्य फिर ज़ोर से चिल्ला उठे—"दादाजी सावधान !" एक मुसाफ़िर मैदान की राह से जा रहा था । शब्द सुन कर वह आदमी वहाँ गया और पूछा, "क्या है ?" उदयादित्य ने फ़ौरन कहा । जाओ, जाओ, जल्दी दौड़ कर जाओ, महाराज को सावधान कर दो ।" सेनाओं ने उस मुसाफ़िर को भी तुरन्त गिरफ़्तार कर लिया । उस मैदान से और जो कोई जा रहे थे उन्हें भी सेनाओं ने घेर रक्खा ।

कुछ सेना उदयादित्य को घेरे रही और सेनाओं को मुख़ार-ख़ाँ साथ लेकर भेष बदल कर और अस्त्र शस्त्र को छिपा कर मामूली लिबास में गढ़ की ओर चला । गढ़ में जाने के कई रास्ते थे, उन लोगों ने अलग अलग होकर भिन्न भिन्न रास्तों से गढ़ के भीतर प्रवेश किया ।

उस समय वसन्तराय बैठ कर सायंकाल का नित्य कृत्य कर रहे थे । उधर देव मन्दिर में सन्ध्या आरती के शंख, घड़ी, घन्टे बज रहे हैं । बड़े विशाल राजभवन में कहीं किसी तरह का कोलाहल नहीं । चारों ओर शान्ति छाई है । वसन्तराय के नियमानुसार अधिकांश नौकरों ने सन्ध्या समय कुछ देर के लिए छुट्टी पाई है ।"

सन्ध्यावन्दन अभी कर ही रहे हैं, इतने में वसन्तराय ने एकाएक देखा, उनके घर में मुख़ारख़ाँ घुस आया। वसन्तराय बहुत व्यग्र होकर बोल उठे--"ख़ाँ साहब, इस घर में न आओ, मैं अभी पूजा करके आता हूँ।"

मुख़ारख़ाँ घर से बाहर होकर द्वार पर खड़ा हो रहा। वसन्तराय ने सन्ध्या पूजा समाप्त करके झटपट बाहर आकर मुख़ारख़ाँ के कन्धे पर हाथ रख कर पूछा—"ख़ाँ साहब, अच्छे तो हो?"

मुख़ारख़ाँ ने सलाम करके मुख़तसर में कहा—"हाँ महाराज!"

वसन्तराय ने कहा—"कुछ खाना पीना हुआ है?

मुख़ारख़ाँ—"जी हाँ।"

वसन्तराय—"तो आज, तुम्हारे यहाँ रहने का बन्दोबस्त कर देता हूँ।"

मुख़ारख़ाँ ने कहा—"जी नहीं, कोई ज़रूरत नहीं। काम करके अभी जाना होगा।"

वसन्तराय—"नहीं, सो न होगा, आज तुम्हें न जाने दूँगा। आज तुमको यहाँ रहना होगा।"

मुख़ारख़ाँ—"नहीं, महाराज, बहुत जल्द यशोहर जाना होगा।"

वसन्तराय ने पूछा—"क्यों, ऐसा कौन ज़रूरी काम है? कहो, प्रताप तो अच्छी तरह हैं?"

मुख़ारख़ाँ—"हाँ, वे अच्छी तरह हैं।"

वसन्तराय—"तब तुम्हारा वह कौनसा ज़रूरी काम है? फ़ौरन कह सुनाओ, जी में उद्वेग हो रहा है। प्रताप के ऊपर कुछ सङ्कट तो न आ पड़ा है?"

मुबारखाँ—"जी नहीं, उनके ऊपर कोई संकट नहीं आया है। महाराज की एक आज्ञा पालन करने आया हूँ।"

वसन्तराय ने पूछा—"क्या आज्ञा, कह सुनाओ?"

मुबारखाँ ने एक आज्ञापत्र निकाल कर वसन्तराय के हाथ में दिया। वसन्तराय चिराग़ की रोशनी में जाकर पढ़ने लगे। इतने ही में एक एक कर सारी सेनाओं ने दरवाज़े के पास आकर उन्हें घेर लिया। जब पत्र पढ़ चुके तब वसन्तराय ने धीरे धीरे मुबारखाँ के निकट आकर पूछा—"यह क्या प्रताप ही का लिखा है?"

मुबारखाँ—"हाँ।"

वसन्तराय ने फिर पूछा—"ख़ाँ साहब, क्या यह प्रताप का, अपने हाथ का, लिखा है?"

मुबारखाँ—"हाँ महाराज!"

तब वसन्तराय रोकर बोल उठे—"ख़ाँ साहब, प्रतापको मैंने अपने हाथ से पाल पोस कर बड़ा किया है।"

कुछ देर तक चुप रह कर फिर बोले—"प्रताप जब बिल्कुल बच्चा था मैं उसे दिन रात गोदी लिये रहता था। वह मुझे छोड़ कर एक घड़ी भी अलग रहना नहीं चाहता था। वह प्रताप जब बड़ा हुआ, उसका ब्याह कराया, उसे प्रतापगढ़ के सिंहासन पर बैठाया। उसके सन्तानों को गोद खेलाया। ख़ाँ साहब, उसी प्रताप ने आज अपने हाथ से ऐसी बात लिखी?"

मुबारखाँ की आँखें डबडबा आईं, वह सिर नीचा करके चुपचाप खड़ा रहा।

वसन्तराय ने पूछा—"बच्चा कहाँ है ? उदय, उदय कहाँ है ?"

मुबारखाँ ने कहा—"वे गिरफ़ार हुए हैं। महाराज के निकट उनका विचार होगा।

वसन्तराय बोल उठे—"उदय गिरफ़ार हुआ है ? सच कहो, खाँ साहब ? क्या मैं उसे एक बार देखने न पाऊँगा ?"

मुबारखाँ ने हाथ जोड़ कर कहा—"जी नहीं, महाराज का ऐसा हुक्म नहीं।"

वसन्तराय ने आँखों में आँसू भर कर मुबारखाँ का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—"खाँ साहब, एक बार मुझे उदय से मिलने न दोगे ?"

मुबारखाँ ने कहा—"मैं महाराज के हुक्म का पाबन्द हूँ।"

वसन्तराय ने दीर्घनिश्वास लेकर कहा—"इस संसार में किसी को दया धर्म नहीं है। आओ साहब, अपने महाराज की आज्ञा पालन करो।"

तब मुबारखाँ ने झुक कर सलाम किया और हाथ जोड़ कर कहा—"महाराज, मुझ तावेदार को माफ़ करेंगे। मैं सिर्फ़ मालिक का हुक्म तामील करता हूँ। मेरा कोई क़सूर नहीं।"

वसन्तराय ने कहा—"नहीं साहब, तुम्हारा क़सूर क्या ? तुम्हारा कोई क़सूर नहीं। तुम्हें क्या माफ़ करूँ ? यह कह कर मुबारखाँ के गले लग कर कहा—"प्रताप से जाकर कहना कि मैं उसे आशीर्वाद देकर मरा। और देखो ख़ाँ साहब, मरने के वक़्त मैं उदय का भार तुम्हारे हाथ दिये जाता हूँ। वह बेक़सूर है वह अनुचित विचार से कष्ट न पावे।"

वसन्तराय आँख मूँद कर इष्ट देवता के निकट धरती पर बैठ गये। दहने हाथ से माला फेरने लगे। और बोले, साहब बस, अब देर न करो!"

मुख़्तारख़ाँ ने अबदुल्ला को पुकारा। अबदुल्ला नंगी तलवार हाथ में लिये आया। मुख़्तारख़ाँ वहाँ से हट गया। घड़ी बीतते न बीतते लोहू से भरी हुई तलवार हाथ में लिये अबदुल्ला घर से बाहर निकल आया। घर में लोहू की धार बहने लगी।

---

# चौंतीसवाँ परिच्छेद ।

मुख़ारख़ाँ अधिकांश सेना रायगढ़ में रख कर उदयादित्य को साथ ले तुरंत यशोहर को रवाना हुआ । रास्ते में दो दिन तक उदयादित्य ने अन्न-स्पर्श न किया । किसी के साथ कुछ बात न की । केवल चुपचाप सोचते रहे । वे पाषाणमूर्ति की तरह स्थिर बैठे हैं, आँखों में नींद नहीं, आँसू भी दिखाई नहीं देता, सिर्फ़ सोच रहे हैं । नाव पर चढ़े हुए पानी की ओर देख रहे हैं । नाव वेग से जा रही है, तरङ्गें लहरा रहीं हैं, जल-प्रवाह का कलकल शब्द उनके कानों में पहुँच रहा है; तब भी उन्होंने न कुछ देखा और न कुछ सुना, केवल सोचते ही रहे । रात हुई, आकाश में तारे निकल आये, मल्लाहों ने नाव को बाँध दिया, नाव के सभी लोग सोये हैं, केवल जल-प्रवाह का शब्द सुन पड़ता है और छोटी छोटी तरङ्गें अपने आघात से नाव को आन्दोलित कर रही हैं । युवराज स्थिर दृष्टि से सामने की ओर दूर तक प्रसारित स्वच्छ बालुओं के ढेर की तरफ़ देख कर सिर्फ़ सोचने लगे । कुछ रात रहते मल्लाह जाग उठे । नाव खोल दी । उषाकाल की ठंढी ठंढी हवा बहने लगी । पूर्व दिशा लाल हो उठी । युवराज सोचने लगे । तीसरे दिन युवराज की दोनों आँखों से आँसू की धारा बह चली । माथे पर हाथ रख कर कभी पानी की ओर निहारते कभी आकाश की ओर देखते । नाव बराबर चली जा रही है । उदयादित्य की आँखों के आँसू रोके भी नहीं रुकते । मौक़ा पाकर मुँह उदास किये मुख़ारख़ाँ

युवराज के पास आकर बैठा और आरज़ू के साथ पूछा। "युवराज साहब, आप क्या सोच रहे हैं?" युवराज चौंक उठे। बड़ी देर तक चुपचाप मुख़ारख़ाँ के मुख की ओर देखते रहे। मुख़ारख़ाँ के मुँह पर कुछ ममता का भाव देख कर युवराज एकाएक अपने हृदय का कपाट खोल कर बोल उठे—"यही सोच रहा हूँ कि संसार में जन्म लेकर मैंने क्या किया! क्या मेरे ही कारण वंशनाश हुआ! हे ईश्वर, दुर्बलों को इस संसार में क्यों उत्पन्न करते हो? जो अपने सामर्थ्य से संसार में खड़ा नहीं हो सकता, जो पगपग में दूसरे का सहारा ढूँढ़ता है उससे संसार का क्या उपकार हो सकता है? वह जिसको लिपट कर पकड़ता है उसीको डुबोता है, वह संसार के सभी कामों में विघ्न डालता है, उसको खड़े होने की कहीं जगह नहीं। वह अपने भार से सभी को आक्रान्त किये रहता है। मैं एक दुर्बल और भीरु स्वभाव का मनुष्य हूँ। ईश्वर ने मुझी को बचा रक्खा और जो संसार के आनन्दस्वरूप थे, जो संसार के अवलम्ब स्वरूप थे, मेरे कारण उन्हीं का नाश किया! सच पूछो तो अब इस संसार से अलग हो जाने ही में कुशल है।"

उदयादित्य बँधुवे की तरह प्रतापादित्य के सामने लाये गये। प्रतापादित्य ने उनको हवेली के अन्दर एक कोठरी के भीतर बन्द कर रक्खा। कुछ देर के बाद प्रतापादित्य को पास आते देख कर मानो उदयादित्य का सारा शरीर काँप उठा, घृणा के मारे मानो उनके सारे शरीर का चमड़ा सिकुड़ गया। वे अपने पिता का मुँह नहीं देख सके।

प्रतापादित्य ने गम्भीर स्वर में कहा—"तुम्हारे लिए कौन सी सज़ा तजवीज़ की जाय?

उदयादित्य ने धीरता के साथ कहा—"आप जो मुनासिब समझें।"

प्रतापादित्य ने कहा—"तुम मेरे इस राज्य के अधिकारी होने योग्य नहीं।"

उदयादित्य—"हाँ, आप ठीक कहते हैं, मैं कदापि योग्य नहीं हूँ। मैं आपका राज्य नहीं चाहता। आप अपने सिंहासन से मुझे आज़ादगी दें, यही मेरी प्रार्थना है।"

प्रतापादित्य भी यही चाहते थे, उन्होंने कहा, "तुम जो कह रहे हो, यह सच्चे दिल से कह रहे हो, इसकी प्रतीति मुझे कैसे होगी?

उदयादित्य ने कहा—"मैंने भाग्यहीन होकर जन्म ज़रूर लिया है, पर आजतक मैं स्वार्थवश कभी झूठ नहीं बोला। आपको यदि मेरा विश्वास इस तरह न हो तो मैं भगवती का चरण छूकर शपथ करूँगा। आपके राज्य की सुई के अग्रभाग के बराबर भी ज़मीन मैं न लूँगा। समरादित्य ही आपके राज्य का उत्तराधिकारी होगा।

प्रतापादित्य ने प्रसन्न होकर कहा—"अच्छा, तब तुम क्या चाहते हो?"

उदयादित्य ने कहा—"महाराज, मैं और कुछ नहीं चाहता, आप मुझे पिंजरे में बन्द पशु की तरह घेर कर न रक्खें। मुझे आप छोड़ दें, मैं अभी काशी चला जाऊँगा। एक और प्रार्थना यह है कि मुझे आप कुछ द्रव्य दीजिए। मैं वहाँ दादाजी के नाम से एक अतिथिशाला और एक मन्दिर स्थापित करूँगा।"

प्रतापादित्य ने कहा—"अच्छा, इसे मैं स्वीकार करता हूँ।"

उसी दिन उदयादित्य ने मन्दिर में जाकर प्रतापादित्य के सामने शपथ की—माँ कालिके, मैं तुम्हारा पाँव छूकर शपथ करता हूँ—जितने दिन मैं जीवित रहूँगा, यशोहराधीश महाराज के राज्य की तिल मात्र भी भूमि मैं अपनी कह कर कभी ग्रहण न करूँगा, यशोहर के सिंहासन पर न बैठूँगा और यशोहर के राजदण्ड का कभी नाम न लूँगा। यदि ऐसा कभी करूँ तो दादाजी के मारने का बिल्कुल पाप मुझी को हो।" इतना कह कर उदयादित्य काँप उठे।

महारानी ने जब सुना, उदयादित्य काशी जा रहे हैं, तब उन्होंने उदयादित्य के पास आकर कहा—"बच्चा उदय, मुझे भी अपने साथ लेते चलो।"

उदयादित्य ने कहा—"क्यों माँ, तुम्हारे समरादित्य है, तुम्हारे और सब लोग यहीं रहेंगे, तुम अगर यहाँ से जाओगी तो यशोहर में राजलक्ष्मी न रहेगी।"

रानी ने रोकर कहा—"बच्चा, तुम इसी उम्र में सुख-सम्पत्ति छोड़ कर चले जा रहे हो; मैं किस ज़िन्दगी से यहाँ रहूँगी, यह राज्यपाट लेकर मैं क्या करूँगी? तुम सब संसारी सुख छोड़ कर संन्यासी होकर रहोगे। वहाँ तुम्हारी रक्षा कौन करेगा? तुम्हारे बाप का हृदय पत्थर का है, मैं तुम्हें न छोड़ सकूँगी!" रानी अपनी सब सन्तानों में उदयादित्य को अधिक प्यार करती थी। वह उदयादित्य के लिए मुक्तकण्ठ से रोने लगी।

उदयादित्य ने माँ का हाथ पकड़ कर आँसू भरी हुई आँखों से कहा—"माँ, तुम तो जानती ही हो, मेरे यहाँ रहने से पग

पग में सन्देह का कारण बना रहेगा । तुम निश्चिन्त हो, मैं विश्वनाथ की शरण में जाकर निर्विघ्नपूर्वक सुख से रहूँगा ।"

उदयादित्य ने विभा के पास जाकर कहा—"विभा, मेरी प्यारी बहन, मैं काशी जाने के पहले तुम्हारी ससुराल तुमको अपने साथ ले जाऊँगा । मेरा यही एक मात्र मनोरथ है ।

विभा ने उदयादित्य से पूछा—"दादाजी कैसे हैं ?"

"दादाजी अच्छी तरह हैं ।" यह कह कर उदयादित्य झटपट वहाँ से चले गये ।



# पैंतीसवाँ परिच्छेद।

उदयादित्य विभा को साथ लेकर चन्द्रद्वीप जाने का उद्योग करने लगे। विभा अपनी माँ के गले से लिपट कर ख़ूब रोई। हवेली में जितनी बूढ़ी औरतें थीं, सब विभा को अनेक प्रकार की शिक्षायें देने लगीं।

रानी ने उदयादित्य को बुला कर कहा, "विभा को तो ले जा रहे हो, अगर वे लोग इसकी अवहेला करें तो ?"

उदयादित्य ने चौंक कर कहा—"क्यों माँ, वे लोग इसकी अवहेला क्यों करेंगे ?"

रानी ने कहा—"कौन जाने, अगर वे विभा के ऊपर नाराज़ हों ?"

उदयादित्य—"नहीं माँ, विभा एक भोलीभाली लड़की है। उसके ऊपर क्या वे कभी नाराज़ हो सकते हैं ?"

रानी ने रोकर कहा—"बच्चा, विभा को बड़ी सावधानी से ससुराल पहुँचा आओ। यदि वे उसका अपमान करेंगे तो वह अपनी हत्या कर डालेगी।"

उदयादित्य के मन में कुछ सन्देह उत्पन्न हुआ। शायद विभा का ससुराल में कोई आदर न करे, यह बात पहले उनके मन में न आई थी। उदयादित्य ने समझा था कि उनका बुरा दिन अब बीत गया किन्तु उन्होंने देखा कि अब भी वह निःशेष

नहीं हुआ। विभा को वे अपने साथ ले चले हैं, न मालूम विभा की तक़दीर में क्या बदा है।

बिदा होने के समय उदयादित्य और विभा ने माँ को प्रणाम किया। यात्रा में किसी प्रकार का अशुभ न हो यह सोच कर रानी उस समय न रोईं। उन दोनों के वहाँ से जाते ही वे धरती पर लोट लोट कर रोने लगीं। इसके बाद उदयादित्य और विभा दोनों पिता को प्रणाम कर आये राजभवन में जितने श्रेष्ठ सम्बन्धी थे उन्होंने सबको प्रणाम किया। उदयादित्य ने समरादित्य को गोद में उठा कर उसका मुँह चूमा और आशीर्वाद दिया। राजभवन के नौकर उदयादित्य को जीजान से मानते थे। वे सब आकर उदयादित्य को प्रणाम करके रोने लगे। आख़िर उदयादित्य और विभा दोनों ने मन्दिर में जाकर देवता को प्रणाम करके यात्रा की।

उदयादित्य जब यशोहर की सीमाको पार कर गये तब एक ठंढी साँस ली। वे शोक, विपत्ति और अत्याचार की नाट्यशाला से निकल आये। उदयादित्य ने निश्चय किया कि अपनी ज़िन्दगी में वे लौट कर फिर कभी यहाँ न आवेंगे। एक बार उन्होंने पीछे फिर कर देखा। अत्याचार से भरा हुआ अत्यन्त कठोर यशोहर का कोठा आकाश में सिर उठाये राक्षस की तरह खड़ा है। उनकी चिन्ता के समस्त कारण (षड्यन्त्र, यथेच्छाचारिता, अत्याचार, दुर्बलपीड़न इत्यादि) पीछे जा छिपे और सामने प्रकृति की अपार शोभा लिये स्वाधीनता आ खड़ी हुई। स्वाभाविक स्नेह और ममता ने उनके हृदय को अपनी ओर आकर्षित किया।

पूर्व की ओर आसमान में सफ़ेदी छा गई है। देखते ही

देखते सफ़ेदी की जगह अरुणिमा छा गई। थोड़ी ही देर में नदी के पूर्व किनारे के जङ्गलों के भीतर से सुनहरी लकीरें निकलती हुई दिखाई देने लगीं। पेड़ों के ऊपरी भाग पर उन लकीरों की आभा पड़ने से एक अपूर्व शोभा प्रकट होने लगी। मल्लाहों ने ख़ुशी का गीत गाते हुए पाल तान कर नाव खोल दी। प्रकृति की इस प्रभातकालिक शोभा को देख कर उदयादित्य का चित्त पक्षियों के साथ स्वाधीनता का गीत गाने लगा। उदयादित्य ने अपने मन में कहा—हे ईश्वर, जन्म जन्म में मैं इसी तरह निर्द्वन्द्व होकर प्रकृति की रमणीय भूमि में स्वाधीनतापूर्वक विचरण कर सकूँ और सुहृदय सज्जनों के साथ रह कर सुख से समय बिता सकूँ।"

माझियों का गान और जलप्रवाह का कलकल शब्द सुनते हुए दोनों आगे बढ़े। विभा के हृदय में आनन्द की तरङ्गें लहरा रही थीं। हृदय का भाव उसके मुँह और आँखों से प्रकट हो रहा था। मानो इतने दिनों के बाद उसने दुःस्वप्न से जाग कर सुख का संसार देखा है। दुःस्वप्न का भय मानो उसके हृदय से निकल गया है और वह स्वस्थ हो बैठी है। विभा जा रही है। किस के पास जा रही है? इतने दिनों से जिसका वह ध्यान कर रही थी जो उसके प्रेम का एक मात्र विश्रामस्थान है उसीके पास जा रही है। मारे उमङ्ग से उसका सारा शरीर पुलकित हो रहा है। वह चारों ओर आज स्नेह का समुद्र देख रही है, मानो उस स्नेहसमुद्र में डूबी हुई है। उदयादित्य विभा को अपने पास बुला कर उसे कोमल कण्ठ-स्वर में कितने प्रकार की कथा—कहानी सुनाने लगे। विभा ने जो सुना, वही उसे अच्छा लगा।

रामचन्द्रराय के राज्य में नाव आ पहुँची। चारों ओर देख कर विभा के मन में उस आनन्द का उदय हुआ जो इसके पहले कभी न हुआ था। चारों ओर की अपूर्व शोभा देख कर उसका चित्त विकसित हो उठा। विभा के जी में होने लगा, एक बार प्रजागणों को अपने पास बुला कर उनके राजा का वृत्तान्त पूछें। प्रजागणों को देख कर उसके मन में एक अपूर्व स्नेह का उदय हुआ। उसकी दृष्टि में सभी अच्छे जान पड़े। कहीं कहीं दो एक दरिद्र देख पड़ा, विभा ने मन ही मन कहा—"हाय इसकी ऐसी दशा क्यों?" मैं महल के भीतर जाकर इसे बुलवा भेजूँगी और जिसमें इसका दुःख दूर होगा सो करूँगी।" वह सभी को अपना समझने लगी। इस राज्य में जो लोग दुखी हैं सो उसे सह्य न हुआ। विभा के जी में यह होने लगा कि प्रजागण उसके पास एक बार आकर उसे माँ कह कर पुकारें और उसके पास अपना दुःख दारिद्र्य निवेदन करें और वह उसका दुःख दूर करें।

राजधानी के समीप एक गाँव में उदयादित्य ने नाव लगाई। उन्होंने स्थिर किया कि अपने आने का हाल राजभवन में कहला भेजेंगे और वे लोग आकर सम्मानपूर्वक इन्हें ले जायँगे। जब नाव लगाई गई, तब दिन थोड़ा बच रहा था। उदयादित्य ने सोचा कि कल सबेरे आदमी भेजना अच्छा होगा। विभा की इच्छा थी, आज ही उनके पास खबर भेजी जाय।



# छत्तीसवाँ परिच्छेद ।

आज चन्द्रद्वीप के सब लोग व्यग्र हो रहे हैं। चारों ओर बाजे बज रहे हैं। मानो गाँव में कोई विशेष उत्सव हो रहा है। एक तो अपने हृदय के भविष्य आनन्द से विभा आप ही अधीर हो रही है उस पर बाजों का मधुर शब्द सुनकर उसके हृदय में आनन्द की तरङ्ग लहराने लगी। पीछे कहीं यह मात्राधिक आनन्द उदयादित्य के सामने प्रकट न हो जाय, इस कारण वह बड़े कष्ट से अपने प्रफुल्ल मुँह का भाव और हृदय की उमङ्ग को छिपाये हुए है। उदयादित्य नदी के किनारे कुछ उत्सव का लक्षण देख कर 'कैसा उत्सव हो रहा है,' यह जानने के लिए "गाँव में घूमने गये।"

कुछ देर के बाद एक आदमी ने नाव के निकट किनारे पर आकर पूछा—"यह नाव किसकी लगी है?" नाव पर से दो एक नौकर बोल उठे—"अरे कौन? राममोहन? आओ, आओ!" राममोहन तुरंत नाव पर आया। विभा अकेली नाव में बैठी है। विभा राममोहन को देख कर मारे ख़ुशी के अधीर होकर बोली—"मोहन।"

राममोहन—"हाँ।"

राममोहन ने विभा को आनन्द से परिपूर्ण प्रसन्न मुख देख कर उदासी लिये कहा—"माँ, तुम इतने दिनों के बाद आज यहाँ आई?"

विभा—"हाँ, मोहन, महाराज को क्या मेरे आने की ख़बर मिल गई है ? क्या तुम मुझे यहाँ से ले चलने के लिए आये हो ?"

राममोहन—"नहीं, इतनी जल्दी क्या है ? आज यहीं रहो, दूसरे दिन तुम्हें ले जाऊँगा ।"

राममोहन का भाव देख कर विभा एकदम मलिन हो गई, बोली—क्यों मोहन, आज क्यों न जाऊँगी ।"

राममोहन—"आज साँझ हो गई, आज ठहरो ।"

विभा ने बहुत डर कर कहा—"मोहन, सच सच कहो, क्या माजरा है ?"

राममोहन से न रहा गया । किसी बात को हृदय में छिपा रखने का उसे अभ्यास नहीं था । वह उसी जगह बैठ गया और रो रो कर कहने लगा—"माँ, आज तुम्हारे इस राज्य में तुम्हारे लिए जगह नहीं । तुम्हारे इतने बड़े राजभवन में तुम्हारे लिए अब एक घर नहीं । आज महाराज दूसरा ब्याह कर रहे हैं ।"

विभा का मुँह एक दम पीला पड़ गया । मानो उसके माथे पर बिजली गिरी । राममोहन कहने लगा—माँ, जब तुम्हारा यह अधम दास तुमको बुलाने गया, तब तुम नहीं आईं । तब तुमने निठुराई के साथ मुझे लौटा दिया, महाराज के सामने कुछ बोलने का मेरा मुँह न रहा । मेरी छाती फट गई तब भी मैं कुछ बोल न सका ।"

यह सुन कर विभा की आँखों के सामने अँधेरा छा गया । उसका सिर घूमने लगा, वह उसी जगह मूर्छिता हो कर गिर पड़ी । राममोहन ने तुरंत विभा के मुँह और आँखों पर पानी

छींटा । कुछ देर के बाद विभा को होश हुआ और वह उठ बैठी । विभा की आँखों में सारा संसार सूना सा दिखाई देने लगा । स्वामी के राज्य में आकर, राजधानी के पास पहुँच कर, और राजभवन के द्वार तक पहुँच कर पतिसुख की प्यासी विभा हताश हो गई, उसके सारे सुख की आशा मृगतृष्णा सी हो गई ।

विभा ने बड़ी व्याकुलता से कहा—"मोहन, उन्होंने मुझे बुला भेजा था, मेरे आने में बहुत विलम्ब हुआ? क्या इसी से ?"

मोहन—"हाँ, विलम्ब होने ही से ।"

विभा ने अधीर हो कर कहा—"क्या अब वे क्षमा न करेंगे ?"

मोहन—"अब वे क्या क्षमा करेंगे ?"

विभा—"मोहन, मैं सिर्फ़ एक बार उन्हें देखूँगी" यह कह कर विभा ज़ोर से रो उठी ।

राममोहन ने अपनी आँखों का आँसू पोछ कर कहा—"माँ, आज ठहर जाओ ।"

विभा ने कहा—"नहीं, नहीं, मैं आज ही उन्हें एक बार देख आऊँगी ।"

राममोहन—"अच्छा, युवराज को उधर से लौट आने दो।"

विभा—"नहीं, मैं अभी चलूँगी ।"

विभा को यह ख़याल हुआ कि उदयादित्य यह वृत्तान्त सुन कर शायद पीछे अपमान के भय से मुझे न जाने दें ।"

राममोहन—"अच्छा तो एक पालकी ले आता हूँ ।"

विभा—"पालकी क्या होगी ? मैं क्या रानी हूँ जो मेरे लिए पालकी और पर्दा चाहिए। मैं एक साधारण प्रजा की तरह, एक भिखारिन की तरह जाऊँगी। मुझे पालकी से क्या प्रयोजन ?"

राममोहन—"मैं अपने जीते जी यह कैसे देख सकूँगा ?"

विभा अधीर हो कर बोली—"मोहन, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। मेरे जाने में विघ्न न करो। विलम्ब हो रहा है।"

राममोहन ने दुखी हो कर कहा—"अच्छा, चलो।"

विभा साधारण स्त्री की तरह चली। नाव पर जो नौकर लोग थे उन लोगों ने आकर कहा—"यह क्या! विभा, तुम इस तरह साधारण भेस में कहाँ जा रही हो।"

राममोहन—"यह तो इन्हीं का राज्य है, जहाँ इनके जाने की इच्छा होगी जा सकती हैं।"

नौकर लोग विभा के जाने में विघ्न करने लगे। राममोहन ने उन लोगों को डपट कर रोक दिया।

---

# सैंतीसवाँ परिच्छेद ।

चारों ओर लोगों की अपार भीड़ लगी है। अगर पहले विभा इस तरह भीड़ में आती तो वह लाज से मर जाती, किन्तु आज माना वह आँख की अन्धी बन गई है। वह जो कुछ आँखों से देख रही है और कानों से सुन रही है उसे वह स्वप्न-वत् समझ रही है, उस पर उसका ज़रा भी ध्यान नहीं है। माना ये सब उसके लिए कुछ नहीं के बराबर हैं।

जब विभा भीड़ से निकल कर राजभवन के सदर फाटक के पास आई तब एक दरबान ने उसे भीतर न जाने दिया, उस का हाथ पकड़ कर रोक दिया। तब विभा के पैरों के नीचे से माना धरती निकल गई। वह चारों ओर लोगों को देख कर मारे लज्जा और ग्लानि के मर गई। उसका हृदय व्याकुल हो उठा। उसका घूँघट खुल पड़ा। कुछ देर में जब उसे चैतन्य हुआ तब तुरंत उसने मुँह पर घूँघट डाला। राममोहन आगे आगे जा रहा था, पीछे की ओर घूम कर देखा कि विभा द्वार पर खड़ी है, दरबान उसे आने नहीं देता, राममोहन ने दरबान को ख़ूब ज़ोर से ललकारा। पास ही फ़र्नान्डिज़ था, उसने आकर दरबान की अच्छी तरह ख़बर ली। विभा महल के अन्दर गई। पर किसी ने उसका कुछ आदर न किया।

घर में केवल राजा और रमाई बैठे थे। विभा घर में प्रवेश करके राजा के मुँह की ओर देख कर उनके पैर के पास ज़मीन

पर बैठ रही। राजा ने चकित हो कर पूछा—"तू कौन है? क्या चाहती है? राममोहन, इसे दीवानख़ाने में ले जाकर कुछ दिला दो।"

विभा आँसू भरी आँखों से राजा के मुँह की ओर देख कर बोली—"महाराज, मैं कुछ लेने नहीं आई हूँ। मैं आपको अपना सर्वस्व देने आई हूँ। मैं आपको दूसरे के हाथ में सौंप कर आपसे विदा होने आई हूँ।"

राममोहन से न रहा गया, पास आकर कहा—"महाराज, यह आपकी रानी, यशोहर की राजकुमारी हैं।"

रामचन्द्रराय एकाएक चौंक उठे। किन्तु रमाई ने तुरंत राजा की ओर कुटिल दृष्टि से देख कर कर्कश स्वर में कहा—"क्यों अब भैया से मन फिर गया क्या?"

रामचन्द्रराय के हृदय में दया उत्पन्न हो आई थी, तो भी रमाई की बात सुन कर वे हँस उठे। उन्होंने समझा, विभा के ऊपर अभी ममता दिखलाने से पीछे लोग मुझे हँसेंगे। विभा के माथे पर मानो एकही बार सैकड़ों बिजलियाँ टूट पड़ीं, वह शरम के मारे सिमट गई। आँख मूँद कर वह मन ही मन कहने लगी, हे वसुन्धरे, तुम दो खण्ड होकर फट पड़ो मैं उस में धँस मरूँ। उसने व्याकुल हो कर चारों ओर देखा, एकबार राममोहन के मुँह की ओर भी कातर दृष्टि से देखा।

राममोहन दौड़ कर आया, और ख़ूब ज़ोर से रमाई का गला पकड़ कर उसे घर से निकाल दिया।

राजा क्रुद्ध हो कर बोले—"राममोहन, तुम मेरे सामने बेअदबी करते हो।"

राममोहन ने क्रोध से काँपते काँपते कहा—"महाराज, मैंने बेअदबी की है। तुम्हारी रानी को, मेरी मालकिनी को, तुम्हारे ही सामने उस बदमाश ने गाली दी है। उसको अभी हुआ है क्या ! मैं उसका सिर मुड़वा कर और उसे गधे पर चढ़ा कर सारे शहर में घुमाऊँगा, तब मेरा नाम राममोहन जानना !"

राजा ने राममोहन को डाट कर कहा—"कौन मेरा रानी ? मैं इसे नहीं जानता !"

विभा का मुँह सूख गया, उसकी छाती धड़कने लगी, सारा शरीर काँपने लगा। आखिर वह मूर्छिता हो कर धरती पर गिर पड़ी।

तब राममोहन ने हाथ जोड़ कर कहा—"महाराज, मैं चार पुस्त से तुम्हारे यहाँ नौकरी करता हूँ। मैंने बचपन से ही तुम्हें गोद खिलाया है। आज तुमने मेरे सामने मेरी मालकिनी का निरादर किया, अपनी राज्यलक्ष्मी को तिरस्कृत कर दिया। आज मैं भी तुम्हारी नौकरी छोड़ कर चला। मैं मालकिनी की सेवा करके अपने जीवन का शेष समय बिता-ऊँगा। भीख माँग कर खाऊँगा, पर अब कभी इस राजभवन की छाया में पाँव न रक्खूँगा।" यह कह कर राममोहन ने राजा को प्रणाम किया और विभा से कहा—"चलो माँ, यहाँ से शीघ्र चलो, अब क्षण भर भी यहाँ न ठहरो।"

राममोहन ने मूर्छिता विभा को एक पालकी पर चढ़ा कर जहाँ नाव लगी थी ले आया। विभा उदयादित्य के साथ काशी चली गई। वह वहाँ दानपुण्य करके और देवताओं की आराधना करके अपने भाई की सेवा में रह कर जीवन बिताने लगी। राममोहन जब तक जीता रहा, उन्हीं लोगों के साथ

रहा। सीताराम भी अपने बाल-बच्चों को साथ ले काशी में उपस्थित हो कर उदयादित्य का आश्रित हुआ।

चन्द्रद्वीप में जिस हाट (पैंठ) के सामने विभा की नाव लगी थी, उसका नाम आज तक चला जा रहा है :—

"बहू जी की हाट।"

इति